भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा
संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में
उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयक
जैनसाहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद
आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारों की सूचियाँ शिलालेख
संग्रह विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी
जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)
प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य जैन-प्राचीनन्यायतीर्थ, आदि
बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—पं० पृथ्वीनाथ भार्गव भार्गव भूषण प्रेस गायघाट काशी।

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्णा ९
वीर नि० सं० २४७०

विक्रम सं० २
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व. मूर्तिदेवी मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANA PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA
SANSKRIT GRANTHA No 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekartha nighantu and Ekakshari Kosha



EDITED WITH NOTES

By

Pt SHAMBHU NATHA TRIPATHI
Vyakaranacharya Sapta Tirtha

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

First Edition
1000 Copies

CHAITRA, VIR SAMVAT 2476
VIKRAMA SAMV 2007
APRIL 1950

Price
Rs 3/8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited Jain agamic Philosophical Pauranic literary historical and other original texts available in Prakrit Sanskrit Apabhramsha Hindi Kannada Tamil Etc will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras inscriptions studies of competent scholars and Jain literature of popular interest will also be published

---

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof MAHENDRA KUMAR JAIN

NYAYACHARYA JAIN PRACHINA NYAYATIRTHA Etc

Professor of Bauddha Darshana Sanskrit Mahavidyalaya

Banaras Hindu University

SANSKRIT GRANTHA No 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD BANARAS CITY

Founded
Falguna Kr 9
Vir Sam 2470

Vikram Samvat 2000
18th Feb 1944

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras founded by Shri. Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few worksinvarious languages such as Snskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhanamjaya. The first is called N A M A M A L A, a collection of synonyms, while the other is called A N E K A R T H A—N A M A M A L A, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksirasvamin in his famous commentry on AMARAKOSA The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhunath Tripathi, a Saptatirtha and also a Vyakaranacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi excels the Bhsyakara both in ingenuity and accuracy nay I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chaturvedi, Vyakaranacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar the General Editor in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949



P. L. V A I D Y A, M. A. D Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राक्कथन

(हिन्दी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मूर्तिदेवीजी की स्मृति के लिए साहु शान्तिप्रसाद जी जैन द्वारा संस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक महत्त्वपूर्ण योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशाल दृष्टि व कल्पना वाले सभी अंगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत ह तथा अब तक इस संस्था से संस्कृत प्राकृत पाली आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके ह। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् पं महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ से अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशन के लिए तैयार ह।

वर्तमान ग्रन्थ म प्रसिद्ध कोशकार धनंजय की दो कृतियाँ सम्मिलित ह। पहली नाममाला कहलाती ह जिसमें पर्यायवाची शब्दों का संग्रह ह और दूसरी अनेकार्थ नाममाला जिसम अनेक अर्थ बोधक शब्दों का संग्रह ह। पहली कृति में २ श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उससे काफी छोटी ह। प्रथम कृति के सम्बन्ध में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकीर्ति का भाष्य पहले पहल प्रकाश में आ रहा है। अमरकीर्ति ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया ह और अपनी दृष्टि म आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को सम्मिलित कर दिया है। उनके भाष्य की वही तरीका पद्धति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन ख्यातनामा पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ ने बड़ी सावधानी से तथा प्रमाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया ह। उनकी टिप्पणियों का अध्ययन करने से मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ ह कि पण्डित त्रिपाठी—पण्डित और सुधि दोनों में कहीं-कहीं भाष्यकार को भी मात कर गए हैं इतना ही नहीं उनके व्युत्पत्ति संबन्धी स्पष्टीकरण और भी अच्छे ह। मुझे विश्वास ह कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न की प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादित दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही ह परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकीर्ति के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची यौगिक शब्दों की सूची उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई है। यह सब पण्डित महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्यने किया है। सचमुच में ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया ह जितना मानवी शक्ति से सम्भव था। और इस सब के लिए म प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की सराहना करता हूँ जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वन्मण्डली को एकत्रित किया ह।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय
६ सितम्बर १९४९

पी एल० वैद्य
एम ए डी लिट
[illegible] प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष संस्कृत पाली विभाग।

प्रस्तावना

"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति"—ब्रह्मबिन्दु

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात की सूचना देता है कि साधक को पहिले शब्दशक्ति और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भावार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। वस्तुतः शब्द भावों के ढोने का एक लचरा वाहन है। जब तक संकेतग्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द संकेतभेद से भिन्न भिन्न अर्थों का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता की विवक्षा को सूचित करते हैं पदार्थ के वाचक नहीं हैं। 'घट' शब्द का संकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का द्योतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरविषाण भी शब्द है जिसका [illegible] वाच्य पदार्थ इस संसार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घड़ा मौजूद है। अतः शब्द के सम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेढ़ी खीर है। फिर भी शाब्दिकों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिग्रह या संकेतग्रहण। जिस अर्थ में जिस शब्द का संकेतग्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक हो जाता है। यह संकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कठिन है। ईश्वर को संकेत ग्रहण कराने के लिए घसीटना भद्दी सी वस्तु है। इसका इतना ही अर्थ है कि वृद्धपरम्परा से शब्द संकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया संकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसंकेत है। इस संकेतग्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं —

'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥'

अर्थात्—व्याकरण उपमान कोश आप्तवाक्य व्यवहार, वाक्यशेष विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से संकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा संकेत ग्रहण हो भी जाय पर रूढ़ और योगरूढ़ शब्दों का संकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अतएव कोश ही एक ऐसा उपाय बचता है जिससे सभी प्रकार के शब्दों का संकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भंडार। व्याकरण से सिद्ध या वृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध रूढ़ भी यौगिक रूढ़ या योगरूढ़ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ संग्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भंडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलियाँ थीं उच्चारण करना पाप घोषित किया था। फिर भी संस्कृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपसर्ग आदि के योग से शब्दनिर्माण शक्ति की

उसीके कारण यह जन्मजात होकर भी विद्वद्भोग्य अथवा बनी रही। संस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी बोली होने का सौभाग्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्माश्रित विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सीमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। वे लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और फिर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाश्रित धर्मप्रमुख से संस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा महाभाष्य के पस्पशा आह्निक में लिखा है कि—'तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः'। अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश का ही। अपशब्द म्लेच्छ है। अपशब्द का विवरण भी वहीं यह दिया है—'यदि तावच्छब्दोपदेशः क्रियते गौरित्येतस्मिन्नुपदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽपशब्दा इति'। अर्थात्—गौ शब्द है और गावी गैया आदि अपशब्द हैं।

यद्यपि भाषा को संस्कृत रखने के लिए व्याकरण का संस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है परन्तु उसके उच्चारण में किसी जाति विशेष का या वर्ण विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रुक ही जाती है। नाटकों में स्त्री शूद्रों तथा दासों से प्राकृत भाषा का बुलवाया जाना उक्त रूढ़ि का ही साक्षी है।

इतना ही नहीं धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह सहज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रमुख के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे आर्थिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध में मौलिक क्रान्ति महाश्रमण महावीर और बुद्ध ने की। उनने भाषा के इस कल्पित बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पामर से पामर व्यक्तियों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इनने स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिंगानुशासन से मुक्त हों। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्पित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर ईसा की तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं को गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं। शातवाहन प्राकृत भाषा में पनपते रहे हैं। पुनः संस्कृत युग में इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग में जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना संस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से संस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। दार्शनिक क्षेत्र में उभय पुंगव तो नागार्जुन दिग्नाग समन्तभद्र सिद्धसेन अकलंक आदि के ग्रन्थों से ही भरी। तात्पर्य यह कि श्रमण परम्परा ने मध्यकाल में संस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महाकवि धनञ्जय ने २ श्लोकों में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम 'वृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर वानर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकीर्ति विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्देश पूर्वक बताई गई है। उणादि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निर्व्युत्पत्ति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महापुराण, पद्मनन्दि शास्त्र यशस्तिलक चम्पू नीतिवाक्यामृत, द्विसन्धानकाव्य, बृहत्प्रतिक्रमण भाष्य महाभारत सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी अमरसिंह भाष्य आशाधर महाभिषेक, नीतिसार, शाश्वत हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यशःकीर्ति, अमरसिंह, आशाधर, इन्द्रनन्दि क्षीरस्वामी, पद्मनन्दि, भोज हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तियां तो अमरकीर्ति की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

"म्रियन्ते सूक्ष्मजन्तवोऽस्य स्पर्शनेति मरुत्' अर्थात् जिसके स्पर्श से सूक्ष्म जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

'न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा' जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननांदा—ननद है।

यज्ञानां पशुमारणलक्षणानामरिः यज्ञारिः अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव है। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है —"इति महाकविधनञ्जयकृतौ निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णे अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीय परिच्छेद"। इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति पं॰ जुगलकिशोरजी मुख्तार अधिष्ठाता वीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञातकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भी वीर सेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण—

अमरकीर्तिकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन झालरापाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन पं॰ शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब पं॰ महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तैयार किये हैं। टिप्पणियां पं॰ शंभुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिश्रम से लिखी हैं। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणों में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्ता महाकवि धनञ्जय हैं। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम श्लोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ख्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पाया जानेवाला यह श्लोक स्वयं इसका साक्षी है :—

'प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥'

अर्थात्—अकलङ्कदेव का प्रमाण शास्त्र पूज्यपाद का लक्षण—व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह श्लोक नाममाला के भाष्यकार अमरकीर्ति के सामने था उनने इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। ठीक भी है क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथ चरित के प्रारंभ में द्विसन्धान काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है :—

"अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।
बाणा धनञ्जयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम्।

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों को ही प्रिय कैसे लगते जब कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्ष्यों के भेदक मर्मभेदी बाण कर्ण को प्रिय नहीं लगते ?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धारा-धीश भोजराज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ ४ ०२) में किया है।

जल्हण (१३वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्य उद्धृत है —

'द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनञ्जयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः॥

इस श्लोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमुग्धकर सरणि से उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषापहार स्तोत्र भी बनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते [illegible] यह स्तोत्र [illegible] अपने सर्पदष्ट पुत्र का विष उतारने के लिए बनाया था।

समयविचार—

इनके समय [illegible] के लिए निम्न [illegible]

(१) प्रमेय [illegible] आदि [illegible] ([illegible]) में इनके
काव्य [illegible] है [illegible] नहीं

(२) इसी तरह वादिराज सूरि (सन् १ ३५) ने पार्श्वनाथ चरित में धनञ्जय और द्विसन्धान का निर्देश किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं।

(३) जल्हण (१३वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्तिमुक्तावली में जो पद्य उद्धृत किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर है। इनका उल्लेख सोमदेव (ई ९९) के यशस्तिलक चम्पू में पाया जाता है अतः राजशेखर का समय ई १ वीं सदी सुनिश्चित है। राजशेखरके द्वारा प्रशंसित होने के कारण धनञ्जय का समय १ वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता।

(४) डॉ हीरालालजी ने षट्खण्डागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ ६२) में यह सूचित किया है कि जिनसेन के गुरु वीरसेन स्वामी ने धवला टीका (पृ ३८७) में अनेकार्थ नाममाला का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया है—

हेतावेवं प्रकाराद्यैः व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः॥

यह श्लोक अनेकार्थ नाममाला का है। धवलाटीका वि सं० ८७३ सन ८१६ में समाप्त हुई थी अतः धनञ्जय का समय ९वीं सदी के बाद नहीं हो सकता।

(५) धनञ्जय ने अकलंक देव का उल्लेख 'प्रमाणमकलङ्कस्य' श्लोक में किया है। अकलंक का समय ई ७वीं सदी निश्चित है अतः धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई १२वीं शतक का मध्य निर्धारित किया है। (पृ १७४) उनने अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ के बी पाठक महाशय का यह मत[1] भी उद्धृत किया है कि—"धनञ्जय ने द्विसन्धान महाकाव्य की रचना ई ११२३ और ११४ के मध्य में की है"। पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय ई ८वीं सदी का अन्त और ९वीं सदी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में जो ई १२वीं सदी की रचना है राजशेखर के नाम से उद्धृत 'द्विसन्धाने निपुणतां' श्लोक काव्यमीमांसाकार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्ता राजशेखर का। संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकद्वय यहाँ भ्रान्त कर बैठे हैं वे स्वयं जल्हण को १२वीं सदी का विद्वान् लिखकर भी उसमें उद्धृत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं!

अतः धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार से ई ८वीं का उत्तर भाग और ९वीं का पूर्व भाग प्रमाणित होता है।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुष्पिका वाक्य लिखा है — "इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां धनञ्जयनाममालायां प्रथमकाण्डं व्याख्यातम्" इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति 'त्रैविद्य' उपाधि से विभूषित थे और वे सेन्द्रवंश (सैतवंश) में उत्पन्न हुए थे।

इन्होंने अपने को 'शब्दवेधा' उपाधि से अलङ्कृत किया है।

मंगल श्लोकों में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्द और समन्तभद्र के साथ ही आप एक कल्याण

---

१ इसी के आधार से कन्नड़ कोष की प्रस्तावना (P XXXii) में भी रामानन्द शर्मा ने भी धनञ्जय का समय १ वीं सदी लिखा है।

कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने ग्रन्थ के बीच में जहाँ आवश्यकता भी नहीं है वहाँ भी अपना नाम देने में संकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोकों की उत्थानिका में भी "सम्प्रति धनञ्जयं आरभ्यते अमरकीर्तिना" (पृ. १३) आदि लिखा है। जो स्पष्टतः भ्रम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकांश की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—"वारिधिर्मथ्यतेऽमुना। अमुना इदानीं वारिधिर्मथ्यते कथ्यते। केन भाष्यकर्त्रा *श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहाँ 'केन'* का उत्तर 'धनञ्जयेन' होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है:—

(१) 'छक्कम्मोवएस' आदि ग्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति[1]। इन्होंने वि. सं. १२४७ भादों सुदी १४ के दिन छक्कम्मोवएस ग्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसवीय १२ वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये अमितगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुरु परम्परा यह है:—अमितगति शान्तिषेण अमरसेन श्रीषेण चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के गुरु अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इस प्रकार है[2]। जैनेन्द्र विशालकीर्ति शुभकीर्ति धर्मभूषण अमरकीर्ति धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२९५ वैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निषद्या बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५ के आसपास सिद्ध होता है। ये ईसवीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३ ७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन विद्यानन्द के पुत्र विशाल-कीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है:—

"जीयादमरकीर्त्यार्यभट्टारकशिरोमणिः।
विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविदः॥
अमरकीर्तिमुनिर्जिनशासनः कुसुमचापमदापकदम्यभृत्।
जिनमतापहृतारिसमाश्रयो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रयः॥"

अर्थात्—शास्त्रकोविद जिनशासन कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४ ३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है[3]। अतः उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करीब सन् १४५ अर्थात् ईसवीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४ ४ शक अर्थात् १४८२ ई. है।

---

१ देखो डा. हीरालाल का 'अमरकीर्तिगणि और उनका षट्कर्मोपदेश' लेख। जैन सि. भास्कर भाग २ अंक ३।

२ जैन शिलालेख संग्रह १११वाँ शिलालेख।

३ प्रशस्तिसंग्रह के सम्पादक पं. के. भुजबली शास्त्री ने 'शाके वह्निखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे' का अर्थ शक १४६३ किया है। और फिर दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक 'शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते' का अर्थ १४ ८ शक किया है। दोनों जगह ख का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४ ४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कैसे आ सकती है? ४ देखो प्रशस्तिसंग्रह पृ. १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कम्मोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि. १२४७ के आसपास है जब कि नाममाला के भाष्य (पृ. ६२) में आशाधर के महाभिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनगारधर्मामृत वि० १३   में समाप्त किया था। अतः प्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि. १३   अर्थात् ईसवीय १२४१ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं हैं। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्मनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२–१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोल्लेख पूर्वक अवतरण दिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति उनके पश्चात् तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्य मिलते हैं–

"शिष्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधिः ।
श्रीमानमरकीर्त्यार्यो देशिकाग्रेसरः शमी ॥
निजपक्षपुटकवाटं घटयित्वानल्पोपत्तो हृदये ।
अविचलितबोधदीपं तममरकीर्तिं भजे तमोहरणम् ॥"

अर्थात्–अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की [illegible] झलकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में 'शास्त्रकोविद' विशेषण उनके पाण्डित्य का निर्देश कर रहा है। अतः हमारे प्रस्तुत ग्रन्थकार दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५ के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ मिलता है।[1] उसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने चैत्र सुदी ५ शाक संवत् १३५ में जिनयज्ञफलोदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा स्मृत हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार–

इस ग्रन्थ के सम्पादक पं. शम्भुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गंभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनने जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे [illegible] शास्त्री निरहङ्कारी और विद्याव्यसनी विद्वान् विरल हैं। उनके तलस्पर्शी गंभीर पाण्डित्य का निदर्शक यह संस्करण है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ. पी. एल. वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। पं. हरगोविन्दजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निघण्टु का सम्पादन किया है। पं. महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ संशोधन में पूरा योग दिया है। पं. प्रसन्नकुमारजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम. ए.

---

१ देखो प्रशस्ति संग्रह पृ. ११।

महाकविधनञ्जयप्रणीता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता



श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तवीर्यं विद्यादिनन्दिनमिनं च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममलं प्रणिपत्य वीरं भाष्यं करोमि परमं बुधबुद्धिसिद्ध्यै ॥ १ ॥

सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।
भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां धीविवृद्धये ॥ २ ॥
यद्यपि धनञ्जयी (येनी) सूक्तौ भावो वक्तुं न शक्यते ।
तथाप्यहं प्रवक्ष्यामि बालेभ्यश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥
पूर्वाचार्यकृता प्रायो व्युत्पत्तिरुपदिश्यते ।
क्वापि क्वापि स्वबुद्ध्याऽपि क्षम्यतामत्र मे बुधैः ॥ ४ ॥

शिष्टाम्नाचार (ष्टाचार) परिपालनार्थं नमस्कारस्मृतिगतधर्मोद्धारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं च धनञ्जयसुधीः शास्त्रादिकृतेष्टदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।
उन्मूलयत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः[1]—

"णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥" इत्यभिधम् । नमामि नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनश्च[2] चित्तं वाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अतीन्द्रियत्वात् । तथा चोक्तं शब्दभेदे—

"नमस्तु[3] नमसा सार्धं मनस्तं मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपस्तु तपसा सह ॥"

तथा च पद्मनन्दिशास्त्रे—

"[4]स्वानुभूत्यै भवेद् गम्यं रम्यं यद्यात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥"

---

१ पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारात्मकम् अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुस्वरूपम ज्योतिः । २ नभं तु नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधुः । ३ साम्प्रतं निर्णयसागरयन्त्रालयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलभ्यते । तद्यथा—

कुमुदं कुमुदा चापि चीविरस्याद् चीविका सह । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥१४॥

अत्र कारकप्रयोगेष्वपि मनसशब्दः प्रयुक्तस्तथापि तत्कालीनतन्मूलपुस्तके तथैवासीदिति ध्रुवम् ।
४ प प २२।१।

ने प्राक्कथन का हिन्दी अनुवाद किया है। पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्थनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। पं. श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुगृहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्षा सौ. रमा रानी जी की संस्कृतिनिष्ठा उदार दृष्टि ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन हैं। अपनी स्व. पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोपकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यदृष्टि सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मैं इन सब का आभार मानता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी
पौष शुक्ल १५
वीर सं. २४७६
३।१।५

—महेन्द्र कुमार जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४)	कागज २ रीम २२×२९/३२ पौण्ड	९८५।।।)	कार्यालय व्यवस्था प्रूफ संशोधन आदि
१७५)	छपाई पृष्ठ १९६ दर ५) प्रति फार्म	४२१≈)	सम्पादन
२)	जिल्द बंधाई	५)	भेंट आलोचना विज्ञापन आदि
६)	कवर छपाई	७८०।।)	कमीशन
४)	कवर कागज		

कुल लागत १९१३।≈)

१ प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।≈)

मूल्य ३।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टु एकाक्षरी कोशश्च

महाकविधनञ्जयप्रणीता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तवीर्यं विद्यादिनन्दिनमिनं च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममलं प्रणिपत्य वीरं भाष्यं करोमि परमं बुधबुद्धिसिद्ध्यै ॥ १ ॥

सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।
भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां बोधसिद्धये ॥ २ ॥

यद्यपि धनञ्जयो (येनो) क्तो भावो वक्तुं न शक्यते ।
तथाऽप्यहं प्रवक्ष्यामि वाग्देव्याश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यकृतो भावो व्युत्पत्तिपरिरिष्यते ।
क्वापि क्वापि स्खलितपाठोऽपि क्षन्तव्यश्च मे बुधैः ॥ ४ ॥

शिष्टसमाचार (ष्टाचार) परिपालनार्थं नमस्कारगुणगणधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं च धनञ्जयकुधः इष्टाभिमतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।
उन्मूलयत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः—

"णमो[1] अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥" इदमित्थम् । नमामि नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनश्च[2] चित्तं वाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अनन्तस्वरूपत्वात् । तथा चोक्तं शब्दभेदे—

'नभस्तु[3] नभसा सार्धं मनसं मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपस्तु तपसा सह ॥'

तथा च पद्मनन्दिशास्त्रे—

"[4]स्वानुभूत्यैव गम्यं यत् स्वरूपं परमात्मनः । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥"

---

१ पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुस्वरूपमेव ज्योतिः । २ मनं तु नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनःशब्दः साधुः । ३ साम्प्रतं निर्णयसागरमुद्रणालयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलभ्यम् । तदित्थम्—

कुसुमं कुसुमा चापि बोधिरप्याद् बोधिता तथा । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥१४॥

अत्र प्रकृतप्रकरणोपयोगि मनःशब्दः प्रमाणस्तथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तदेवासीदिति ध्रुवम् ।

४ प प २२।११

यत् अविद्यां पापविद्याम्, धातुवादसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मादिसूत्रम्, नाट्यसूत्रम्, गन्धर्वसूत्रम्, पद्यसूत्रम्, आयुर्वेदसूत्रम्, मौक्तसूत्रम्, मद्यसूत्रम्, द्यूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रञ्च। गजतुरगपुरुषस्त्रीवृषगोधनरत्नप्रासादानां [च विद्या पापविद्या] कथ्यते ताम् उन्मूलयति मूलादुच्छेदयति। यत् विद्यामपि उन्मीलयति स्यात्पदलीरूपं।

द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम्।
युग्मं द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

द्वय युग्मे। द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वयम्। "द्वित्रिभ्यामयड् वा[१]।" द्वितयम् द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वितयम्। उभयम् उभौ अवयवौ यस्य "द्वित्रिभ्यामयट्" इत्यनुवर्तमाने "उभाभ्यां नित्यम्[३]" इत्ययट् न तु तयट्। यमलं यम लातीति यमलम्। युगलं युगं लातीति युगलम्। युगम् युगलं च। युगं युज्यते घञर्थत्वात् युगम्[४]। समासान्तत्वात् युगम्। युग्मम् युनक्ति द्वितीयेन युज्यते स्निह्यते युग्मम्। 'युजिरुचितिजां क्वश्च[५]'। द्वन्द्वम् द्वौ द्वावित्यर्थः द्वन्द्वम्। यच्छत्युपरमत्येकत्वात् यमम्। द्वाभ्यामितं द्वीतम् द्वीतमेव द्वैतम्। पातु रक्षतु।

ऋषिर्यतिर्मुनिर्भिक्षुस्तापसः संशितो व्रती।
तपस्वी संयमी योगी वर्णी साधुश्च पातु वः ॥३॥

इत्यष्ट मुनौ। ऋषति कालत्रयं जानातीति ऋषिः। "इगुपधात् कित्[६]"। तथा च यशस्तिलके[७]—

'रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।'

यतिः यो हि समाश्रमः सम्यग्विधानोत्साहेन तृष्णादिरिपुजयाय योगाय शुक्लध्यानवर्ष्मानाय यतते स यतिः। तथा च यशस्तिलके[८]—

"यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत्।"

मुनिः, तपःप्रभावात् सर्वैर्मन्यते मुनिः। "मन्यतेः किच्च उच्च[९]"। तथा च—

"[१०]मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः।"

भिक्षुः भिक्षते इत्येवंशीलो भिक्षुः। 'सन्भिक्षाशंसिभ्यामुः[११]।" तापसः तपो विद्यते यस्य स तापसः। "अण्[१२]" च। तपःसहस्राभ्यां न अण्प्रत्ययमस्त्यर्थे विनीनी अण् च इति। संशितः संशायते स्म संशितः। "[१३] स्यतेरिति नित्यम्। अनपेक्षितविभाषया शो तकारके इत्यस्य अर्थेऽर्थे नित्यमिकारो भवति, विकल्पो नास्ति। व्रती 'हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[१४]।" तद् विद्यतेऽस्य व्रती। तपस्वी "अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः[१५]।" 'प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।'[१६] तपश्च विद्यते यस्येति तपस्वी। संयमी उपरमणं संयमः इन्द्रियनिग्रहाद्यवस्था। संयमो विद्यते यस्येति संयमी। योगी * युजिर्[१८]

---

१ यत् इत्यस्य पूर्वम् 'तथा' इति पदं योज्यम्। २ है श ७।११४१। ३ एतत्सूत्रं हैश नोपलभ्यम्। परन्तु द्वित्रिभ्यामयड्वा इत्यनुवर्तमाने उभाभ्यां नित्यमिति टीकोपलब्धवचनात्सूत्रमेवैतत्सूत्रमिति निश्चीयते। ४ कालवाचकयुगपरत्वेयं व्युत्पत्तिः, प्रकृतार्थे तु युगं लातीत्येव। ५ का उ १।५७ इति प्यक् प्रत्ययः कुत्वं च। ६ गुणाभ्युपधात्कित् का उ ४।१२५ इति किप्। ७ यशस्ति आ ८ क ४४। ८ यती प्रकरणे। ९ सर्वधातुभ्य इन् का उ ४।११४ इन्। १० यशस्ति आ ८ कल्प ४४। ११ का उ ४।१ इति किप्। मनु प्रमणीयाने। ११ यशस्ति आ ८ कल्प ४४। १२ पा सू ४।४।९१। १३ पा सू ५।२।१। १४ स्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति पातञ्जलमहाभाष्यम् ७।४।४१। १५ त सू ७।१। १६ त सू । १७ त सू । १८ एवम्भिर्वाहृतांशस्थाने युजिर् योगे इत्यादौ पररस्मैपदो युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवम्पाठः सुगमः।

योगे युज समाधौ पर युज् समाधौ वा ि । आत्म युज् समाधौ । पर युज समाधौ वा दि । आत्म ॰ युनक्ति युज्यते वा इत्येवंशीलः योगी । युजभजेत्यादिना[1] घिनिण् । यर्मी वर्मो मसचर्मकस्य वर्मी । साधुः शिष्याणां दीक्षादिविनाध्यापनपराङ्मुखः स्वकर्मोन्मूलनक्षमो मोक्षमार्गोऽनुष्ठानपरो वः स साधुः । सिद्धिं साधयति साधयिष्यति वा साधुः ।

"स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।
कर्मोन्मूलनशक्तो [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः ॥"

"[2]कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्" । यो युष्मान् पातु रक्षतु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारः शिष्ये । [दीक्षितम्] दीक्षा संजाताऽस्येति । [3]तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । मौण्ड्यम् मुण्डे मस्तके भवं यस्मादिदं मौण्ड्यम्[4] । शिष्यम् शिष्यते अनुशास्यते गुरुणा शिष्यः । "[5]वृदृदुहीणज्गुहशासुभ्यः क्यप्" ।" गुरोरन्ते वसत्यन्तेवासी तम् । विदुः कथयन्ति ।

कृतान्ताऽऽगमसिद्धान्ता[6]

त्रयः सिद्धान्ते । लोकानां सन्देहस्य कृतः अन्तो विनाशो येन सः कृतान्तः । आगम्यन्तेऽर्थाः आगमः आगमनमागमो वा । सिद्धान्तो [सिद्धोऽन्तो] निश्चयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुंसि ।

ग्रन्थ शास्त्रमत[7] परम् ॥ ४ ॥

ग्रन्थाति[8] रचयतीति ग्रन्थः । शास्ति शास्त्रम् ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही ।
धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥
वसुधा धरणी क्षोणी क्ष्मा धरित्री क्षितिश्च कुः ।
कुम्भिनीलोर्वरा चोर्वी जगती गौर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिर्भूमौ । भवति सर्वमत्र भूमिः । "क्तिभूमिरसञ्ज्ञा[9] ।" भवत्यस्मात्सर्वं भूः । ऐकान्त्याम्यधम् । प्रथते पृथिवी पृथ्वी च । गुहतीति गह्वरी । गहरीति पाठः । स्यात्र मेधति स्निह्यति मधुकैटभमेदोयोगाद् वा मेदिनी । महते मही । मह पूजायाम् । धरत्यगान् धरा । वसवस्सन्त्यस्या वसुमती । दधाति उपकाति मेयवार्थ वैधो वामिति धात्री । "कर्मणि चेन्न ष्ट्रन् ।" केचिद्धातेरपीच्छन्ति । क्षमते क्षमा । "पाक्षुध्यभिधादिभ्यस्त्वात्[10] ।" विश्वं बिभर्ति विश्वम्भरा । 'नाम्नि तृभृवृजिधारि तपिदमिसहां संज्ञायाम्[11] ।' अमत्यपाः । भूतानवति अवनिः । स्त्रियामीः । [12]'अवतृस्तृ भूमध्यरणिधृति-मतिभ्योऽनिः । अनिः प्रत्ययः । वसु दधातीति वसुधा । धरति पर्वतानिति धरणिः । "धृञोऽनिः ४।" क्षौति क्षुपम् क्षोणिः । स्त्रियामीः । क्षोणी । 'क्षु क्षु स कु शब्दे' । क्षमते भारं क्ष्मा क्षमा च । धरति सर्वं धरित्री । क्षयति धर्मं प्राप्नोति प्रलयकाले क्षितिः । कायति कूयते वा कुः । कुम्भो रत्नोत्पत्तिराशी अस्त्यस्याः कुम्भिनी । इति जन इमाम् इला । "इलामुपकभिसिविरपिवर्णमनसाला ।" [13]चतुर्दशम—

१ युजभजदुषदिषद्दुहदुहाद्सभिवचाभुजषाऽभ्यमाङ्माऽऽज्यवस्नाऽभ्याज हुनी च इति पूर्वं का सू ४।४।२२। २ का उ १।१। ३ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् इति का क पू सू ५०८। ४ मौण्ड्यमस्यास्तीत्यपि विगृह्य निवेश्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । ५ का सू ४।२।२३। ६ ग्रन्थति रच्यते इति कर्मणि विग्रहो योग्यः । ७ का उ १।१२ इति अवतेर्मिञ कित्वं च । ८ गृह्णतीति गह्वरी गहरी इत्यपि पाठ इति युक्तम् । ९ का सू ४।४।१ इति षुन् । १० वसुलक्ष्म क्षमते इति क्षमा पचादित्वात् , अप् । ११ का सू ४।५।८१ । १२ का सू ४।३।४४ । १३ का उ २।४१ । १४ का उ २।४१ भवतुधाम इत्यादिसूत्रम् । १५ का उ २।१७ ।

शृङ्गीप्रभत्रबिप्रमत्रगौरमेरीराः एते रक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कर्वीशमुर्वति हिनस्ति फलेन उर्वरा । उर्वी । उर्वी पुर्वी थुर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसार्थाः । सर्वमूर्वति व्याप्नोति उर्विः । ङिवामीः उर्वी । राजान्तरं गच्छति जगतिः । ङिवामीः जगती । पूर्वा गच्छति गौः । डीनोः । गमेर्डोः । "गोरौ धुरि" इत्यौत्वम् । धृञ् धारणे । धृः । धरति धरते । इम् । अस्य वृद्धिः । धारि आत्म । वसु वसूनि वा धारयति वसुन्धरा । नाम्नि वृभ[1] खप्रत्ययः । कारितस्या[2] कारितलोपः । अभिधानात् ह्रस्वः । "ह्रस्वा[4]रुषोर्मोऽन्त्यः ।" "ङिवा[5]" मात्रा । भूतधात्री, रत्नगर्भा विपुला सागराम्बरा, रत्नवती, रसा अचला अनन्ता क्ष्माम्—काश्यपी, गोत्रा, स्थिरा सर्वसहा ।

तत्पर्यायधरः शैलस्तत्पर्यायपतिर्नृपः ।
तत्पर्यायरुहो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

योजयेत् यौजयेत् अन्यं शब्दं च । तत्पर्यायधरः शैलः । भूमिधरः, भूधरः पृथिवीधरः पृथ्वीधरः, गह्वरीधरः, मेदिनीधरः महीधरः, धराधरः वसुमतीधरः धात्रीधरः विश्वम्भराधरः, अवनीधरः वसुधाधरः धरणीधरः क्षोणीधरः क्ष्माधरः, धरित्रीधरः क्षितिधरः, कुधरः कुम्भिनीधरः इलाधरः उर्वराधरः उर्वीधरः जगतीधरः गोधरः, वसुन्धराधरः । षड्विंशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । तत्पर्यायपतिर्नृपः । भूमिपतिः, भूपतिः, पृथिवीपतिः, पृथ्वीपतिः गह्वरीपतिः मेदिनीपतिः महीपतिः धरापतिः वसुमतीपतिः, धात्रीपतिः क्ष्मापतिः विश्वम्भरापतिः, अवनीपतिः वसुधापतिः, धरणीपतिः क्षोणीपतिः क्ष्मापतिः, धरित्रीपतिः क्षितिपतिः कुपतिः कुम्भिनीपतिः, इलापतिः, उर्वरापतिः उर्वीपतिः, जगतीपतिः, गोपतिः, वसुन्धरापतिः । षड्विंशति नामानि नृपस्येति ज्ञातव्यानि । तत्पर्यायरुहो वृक्षः । भूमिरुहः भूरुहः, पृथिवीरुहः, पृथ्वीरुहः गह्वरीरुहः, मेदिनीरुहः, महीरुहः धरारुहः वसुमतीरुहः, धात्रीरुहः क्ष्मारुहः विश्वम्भरारुहः अवनीरुहः वसुधारुहः, धरणीरुहः क्षोणीरुहः, क्ष्मारुहः धरित्रीरुहः, क्षितिरुहः कुरुहः कुम्भिनीरुहः, इलारुहः, उर्वरारुहः, उर्वीरुहः, जगतीरुहः गोरुहः वसुन्धरारुहः । षड्विंशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति ज्ञातव्यानि ।

दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः सानुमान् गिरिः ।
नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिककुन्मरुत् ॥ ८ ॥

शास्त्र पर्वते । दरीं बिभर्तीति दरीभृत् । स्वस्थानात् न चलति अचलः । शृङ्गमस्यास्तीति शृङ्गी । पर्वाणि सन्त्यस्य पर्वतः । "[6]पर्वमरुद्भ्यां तः । सानुरस्त्यस्य सानुमान् । वर्णं गिरतीति गिरिः । गॄनाम्नुपधात्स्किः । न गच्छतीति नगः । डोऽन्यत्रापि । नाम्न्युपपदे गमेर्डो भवति । शिला उच्चीयन्तेऽत्र शिलोच्चयः । अम् आकाशम् अत्तीति अद्रिः । भूतविभ्य क्रिः । शिखरमस्त्यस्य शिखरी । त्रिषु भुवनेषु ककुभ्नाति विस्तारयतीति त्रिककुत् । वर्णविकारत्वात् भकारस्य [?] दकारः । स्तम्भु स्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुम्भ्वः स्तुम्भेति सकारप्रमनास्य धातोः प्रयोगः । म्रियन्ते मुमुक्षवोऽत्र स्पर्शेभेति मरुत् । "[?] मृग्रोरुतिः" । शैलः, क्षितिधरः गोत्रः आहार्यः, कुम्भः भाषा ।

अस्यं पार्श्वं तटं सानुर्मेखलोपत्यका सगी ।
नितम्बमन्तो दन्तस्य तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

---

१ का सू २।१।११ । २ नाम्नि वृक्षाभिधारितधिभिवहो संज्ञायाम् इति पूर्वं का सू ४।१।४४ । ३ कारितस्यानामिड्विकरणे इति पूर्वम् का०सू ३।६।४४ । ४ का०सू ४।१।२१ । ५ का सू २।४।५ । ६ पर्वमरुद्भ्यां ग प सू ४।१।७१ । ७ का उ ३।११ । ८ का सू ४।१।५० । ९ का उ ३।५ । १० वर्णविनाशेन भकारस्य लोपोऽपि बोध्य । ११ ग प ३।१। १ । भीषि ककुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहो उत्वम् । त्रिककुत्पर्वते ग सू ५ । ४।१४० इत्यकारलोपः । १२ का उ १।१ ।

पर्वतमेखलायां दश । प्रस्थीयते अनेनाम प्रस्थम् । [1]नाम्निस्थश्च' कः । उभयम् । पाति रक्षति वनम् पादम् । तरति उपक्षार्य गच्छति-तटम् । षिञु सिञ् पुं । सनोतीति सानुः । [2]कृवापा जिमीस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ।" "षणु दाने" अस्य धातो प्रयोग । मेहनस्य खं तस्य मा लातीति निरुक्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तानिति वा मेखला । उपत्यका उप समीपे भवा उपत्यका । "[3]उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः । तटमस्यास्ति तटी । क्रीडार्थं जनस्तम्यतीति[4] नितम्बः । कमतीम्यन्तः । "[5]मुगुणाकस्मिदमिलुम्पस्तः 'एभ्यस्तःप्रत्ययो भवति । दम्यतेऽ (भ) ष्वतेऽनेन दन्तः । "[6]मुगुणाकस्मिदमिलुम्पस्तः । तप्रत्ययः । तद्वानपि गिरिः स्मृतः । प्रस्थवान्, पार्श्ववान् तटवान् सानुमान् मेखलावान्, उपत्यकावान् तटीमान् नितम्बवान्, प्रान्तवान् दन्तवान् ।

राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः ।
ईश्वरो विभुरीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

चतुर्दश राज्ञि । न्यायमार्गेण राजते इति राजा । "[7]कृषितविराजिधन्विप्रदिविपुभ्यः कनिः ।" को यज्वद्भावार्थः । एभ्यः कनिः प्रत्ययो भवति । अधि ऐश्वर्यं पाति रक्षतीति अधिपः । तथा च उपसर्गवृत्तौ अधि षष्ठीकारणाधिष्ठानाध्ययनैश्वर्यस्मरणाधिक्येषु । पालयतीति पतिः । "[8]पातेर्डतिः । अस्माद् डतिप्रत्ययो भवति । "अमु गतौ" सुपूर्वं । शोभनममतीति स्वामी । "[9]स्वाम्येरिन् दीर्घश्च ।" सदुपपदे अमेर्धातोरिन् प्रत्ययो भवति । नाथयति रिपुं नाथः । मुहि वृहि वृद्धौ" । दो इद । अत एव वृ दः परिपूर्वात् परिवृ इति परिबृंहति स्म वा परिवृढः । "[10]अस्पर्शां इति कः । "[11]परिवृढदृढौ प्रभुबलवतो" एतौ प्रभुबलवतोरर्थयोर्यथासंख्यं निपात्येते । परिपूर्वस्य वृंहेरिडभावो नलोपश्च । वृद्धेः प्रकृत्यन्तर मीरपीच्छन्ति । ये तु प्रकृत्यन्तरयोरिच्छन्ति, तेषाम्मते दृह दृहि वृह वृहि दह वृद्धौ" इति पाठान्तरं वर्तते । तेन पाठान्तरेण दृहस्य वृहस्य वा "दृढः वृढ " इति निपातः । तत्र दृहति स्म वृहति स्म इति वाक्यं क्रियते । प्रभवतीति प्रभुः । [12]"भुवो डुर्विप्रेषु च" [13]"अनुबन्ध" ॥ डकारलोपः । "ईश ऐश्वर्ये" ईष्टे इत्येवंशील ईश्वरः । "[14]स्थेशभासपिसकसो वरच् ।" एभ्यो वरो भवति तच्छीलादिषु । विभवतीति विभुः । डुप्रत्ययः । ईष्टे शक्नोति सृष्टिस्थितिप्रलयान् कर्तुम् ईशानः । आश्रितजनान् बिभर्ति पोषयति भर्ता । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवतीति इन्द्रः । [15]"स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ।" एतीति इनः । "[16]इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् ।" ईष्टे ईशिता ।

अनोकहस्तरुः शाखी विटपी फलिनो नगः ।
द्रुमोऽङ्घ्रिपः फलेग्राही पादपोऽगो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्वादश वृक्षे । अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्तीति अनोकहः । [17]ओकसश्रयणेन वा अनोकहः । तरन्त्यनेनार्णवं तरुः । [18]भृमृशीतॄचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः । शाखाः सन्त्यस्य शाखी । विटपो विस्तारो

---

१ का सू ४।३।५। बहुलमसु नाम्नि स्वरपदे च स्थपश्च कर्तरि विधानाद्‌ च पदार्थे कर्तिपान मिति च । २ का उ १।१ । ३ पा सू ५।२। १४ इति स्वरात् प्रत्ययाय च । ४ क्रीडार्थं जनैस्त म्यते काङ्‌क्ष्यते इति कर्मणि विग्रहो न्याय्य । ५ का उ ३।२७ । ६ का उ २।१ । ७ उ सू ११ । ८ का उ १।५२ इति पातेर्डतिम दिलोपश्च । ९ का उ ६।५८। पाणिनीयेषु स्वामिन्नैश्वर्ये पा सू ५।२।१२६ इति स्वशब्दादामिन्प्रत्ययेन साधितः । स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः । १० अस्पर्शां ण्यन्तत्वाद् परीबृन्मासनवधनवदीर्घ अतिस्मृत्ये च इति पूर्वे का सू ४।६।४८ । ११ का सू ४।६।९५ । १२ का सू ४।४।५ । १३ अनुबन्धोऽनत्यस्यापरेलोप इति पूर्वे का सू २।६।४२ । १४ का सू ४।४।४७ । १५ का उ २।१४ । १६ का उ ३।५१ । १७ अन प्राणने । अनितीति रथानोऽपद्यार्ने गतीरिति । अन धातोरौणादिकप्रत्यये औणादिक इत्यदेशीलाः । १८ का उ १।५ ।

ऽवयवस्य विटपी। फलानि सन्त्यस्य फलिनः। [1] 'फलबर्हाभ्यामिनच्।' न गच्छतीति नगः। [2] "नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्" इति... संज्ञायामपि" । द्रवति इति गच्छति अथवा द्रु द्रु वैकल्येऽपि शाखीति द्रुमः। अङ्घ्रिभिश्चरतीति पिबति पाति वा अङ्घ्रिपः। अङ्घ्रिपस्य। फलानि गृह्णातीति फलेग्राही। अभिधानादीर्घः। [3] 'फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च' इति। पादैः पिबति पानीयं पादपः। न गच्छतीत्यगः। [4] "नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्" विकल्पेन नकारलोपः। वनस्य पतिः वनस्पतिः। [5] 'पारस्करादित्वात्सुट्'। महीरुह कुजः, शाखी पलाशी द्रुः वृक्षः कुजः विटपः[6] अगश्चापि।

तत्पर्य्यायचरो ज्ञेयो हरिर्वलिमुखः कपिः।
वानरः प्लवगश्चैव गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

एकोनविंशति नामानि हरौ। वनौकश्चरः तरुचरः शाखिचरः, विटपिचरः फलिनचरः, नगचरः, द्रुमचरः अङ्घ्रिपचरः फलेग्राहिचरः पादपचरः अगचरः, वनस्पतिचरः। इत्यादिद्वादशनामानि मर्कटस्य ज्ञेयानि। हरतीति हरिः। [7] 'हृ' सर्वधातुभ्यः। बलयो मुखेऽस्य बलिमुखः। कम्पते चाञ्चल्येन शरीरे कपिः। 'कम्पिवनिभ्यां नलोपश्च'। [8] 'वनिभ्यां कि' प्रत्ययो भवति नलोपश्च। वन वनति-सम्भजते वानरः नरोऽपि। प्लवेन उत्प्लवनेन गच्छति प्लवगः। 'डो अन्यत्रापि' च। गां भूमिं लाङ्गूलेन गोलाङ्गूलम् गोलाङ्गूलमस्यास्ति गोलाङ्गूलः उपादित्वात् 'लङ्गे दीर्घश्च'। मृङ् प्राणत्यागे। म्रियते मर्कटः। [9] 'मर्कटः' उणादित्वात्सो निपात्यते। वनौकाः। प्लवङ्गमः। कीशः। शाखामृगः।

विपिनं गहनं कक्षमरण्यं काननं वनम्।
कान्तारमटवी दुर्गम्

नव वने। वेप्यते कम्प्यते भयेनात्र विपिनम्। [10] "वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च" इतीनच्। उणादी उच्यते। [11] 'धृषिनादिविवेरिव विपिनद्रविणमलिनानि'। एतानि इनन्प्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते। [12] गाह्यते मृगादिभिर्गहनम्। उभयम्। कषति चर्षति कक्षम्। अर्यते गम्यते स्वापदैः अरण्यम्। प्रविशन्त्यवन्ति अत्र वा अरण्यम्। [13] 'अर्तेरन्यः' अरण्यमनेन व्युत्पत्त्या भवति। उभयम्। कन्यते गम्यतेऽस्मिन् काननम्[14]। वन्यते सेव्यते वनम्। कान्तम् अकान्तम् गच्छति इच्छति वा कान्तारम्। अटत्यस्यामटवि। अटवी। दुःखेन महता कष्टेन गम्यते दुर्गम्। नानाऽर्थे। वनम् कानम् शावम् अरण्यानी कक्षम् ([15] अकक्षम्)।

---

१ पाणि भाष्य ५।२।१२२। २ का उ ४।१।४७ इति गर्गेद्धः। ३ का उ ४।२।४७ अनेन महेरिन्। एवं सति ग्रहप्रभावात् फलेग्रहिरिति रूपं सम्भवति। यथाभिधानादीर्घ इति टीकाकारः। यथाभिधानमत्रानाभावात्कोशान्तरेषु फलेग्राहीति दीर्घदीर्घस्यैव दर्शनाच्च फलेग्राहीति रूपं चिन्त्यम्। ४ नेदयं किमपि सूत्रं कातन्त्रे। नगोऽप्राणिनि वा इति है श व ३।२।१२७। ५ पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् पा सू० ६।१।१५७। ६ अम र थि ४।१८ प्रमाणम्। तदुक्तम्—नदीकूलस्थितस्तरुः पादपोऽपि च शाखिनः सन्तापवित्रमिरीहिद्रुमो वीरुधो विटपी कुजः विपिनबिहरः अनस्कारी विष्टरः। अन्यामरकोशसिंहो उक्तम् पर्वतो पुष्पवानिषि वानानीश्चगम्भ्याश्पमगा ख्यागमी पुष्पदः॥ इति। ७ का उ ४।४ ८ का उ ४।१।४७। ९ नर्तिकम्पिवसिपिब्भ्यादिभ्य ऊर्णोतेः का उ ३।६ इत्यत्र उणादित्वात्स्तगे दीर्घश्चेति दुर्गवृत्तिः। १० का उ ३।५८। ११ पा उ २।५५। १२ का उ ३।२२। इतीनप्रत्ययः मयेर वारेकारदेश। १३ गाहू विलोडने। बहुलमन्यत्रापीति युच्। कृत्यल्युटो बहुलमिति निर्देशात्समासः। १४ का उ ३।२। १५ काननति दीप्यति स्मरादि। कनी दीप्तौ। युच्। कम् जलम् अननं जीवनमस्य वेति विग्रहोऽप्यूह्यः। १६ फलपुष्परहिते कक्ष-वचनेऽपि अकक्ष शब्दाः कल्पद्रुकोशे दृष्टाः। तदुक्तम्—
"अरण्यं त्वनन्तं वनमपरेऽप्यटवी कक्ष्य इत्यपि। फलपुष्पैर्विरहित एते कक्षादयश्चिरनु॥

शबर स्याद् वनेचरः ॥१३॥

चरशब्देन युक्ते शबरस्य नव नामानि । विपिनचरः गहनचरः कक्षचरः अरण्यचरः काननचरः वनचरः कान्तारचरः अटवीचरः, दुर्गचरः ।

पुलिन्द शबरो दस्युर्निषादो व्याधलुब्धकौ ।
भल्लुकोऽथ किरातश्च सोऽरण्यानीचरः स्मृतः ॥१४॥

पोलति भ्रमति महत्त्व याति गच्छति पुलिन्दः । पुलीन्दश्च । शवति[1] निर्दयत्वं गच्छतीति शवरः । तालव्यः । शवति अरण्यं शबरः । दस्यति अन्यमुपक्षिपतीति दस्युः । यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युः[2] ।" एभ्यो युः प्रत्ययो भवति । निषीदति पापकर्मणि निषादः । निषधश्च । का[3] व्यथादिशुनीशुभो यः । "व्यध ताडने" व्यध विध्यतीति व्याधः । "लिदि[4] शिखिदिशिलिखिविध्यतीधृपाभ्यो च ।" एभ्यो घो भवति । लुभ्यते लुब्धे मांसे लुब्धः । स्वार्थे कः लुब्धकः । भल्लुना[5] पुच्छ वर्तते इति भल्लुकः । किरति शरान्[6] किरातः । अरण्यस्य अरण्यानी (तत्र) चरतीति अरण्यानीचरः[7] । इन्द्र[8] वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ईरच । अरण्यानीति ।

वार्वारि कं पयोऽम्भोऽम्बु पाथोऽर्णः सलिलं जलम् ।
सरं वनं कुशं नीरं तोयं जीवनमम्विषम् ॥ १५ ॥

अष्टादश पानीये । वारयति तृषामिदम् वारि, वृणोति वा वारि । "वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनि मेरिम् ।" एभ्य इञ् प्रत्ययो भवति । वकार इत्वद्भावार्थ । रान्तम् वार् । क्लीबत्वे । काम्यते इष्यते कम्, कायतीति (वा) । "[9]कमतेर्डित्वमी" प्रत्ययो भवतः । पीयते पयते वा पयः । "पीङ् पाने ।" "[10]सर्वधातुभ्योऽसुन् । अमति गच्छति स्वादुत्वं सान्तम् अम्भस् ।" "अम गतौ । "अमे"[10] भ्मोऽन्तश्च । भकार उच्चारणार्थः । "अबि शब्दे" "अम्बु" इति डोभो वा "अभावाम ।" अम्यते तृष्णार्तैरित्यम्बु । "[11]ऋमिकमिभ्यामुः । आम्प्रामुः प्रत्ययो भवति । पीयते पाति वा पाथः । "[12]उमिकापिकुषिमाप्तुपरिषिपितृ विद्युम्यस्थक् ।" एभ्यस्थक् प्रत्ययो भवति । को थक् भावार्थः । ऋगतौत्पत्तौ । गम्यते स्नानपानार्थैः सान्तम् अर्णस् । सरति गच्छति सलिलम् । उणादौ "षल गतौ ।" "[13]सलिकलि वा ना ।" "सचते[14] इति सलिलम् । 'सलेर्निकरण वाल तुड्' । सलेर्लिल् प्रत्ययो भवति चल तुङ् च । जलति नीचं गच्छति जलम् । सर्व च । शृणाति हिनस्ति तृष्णाम् इति शरम् । वन्यते सेव्यते एतत् वनम् । कौशते कुशम् । नास्ति चेन्नो वृद्धि नरतीति नीरम् । नीयते हिनस्ति तृषां नीरम् च । तुदति तृषाम् तोयम् । "तु" तीव आवरणार्थो वा । जीव्यतेऽनेन जीवनम् । जीवनीयम् च । आप्नुवन्ति अमृतमित्यापः । आप्नोतेः क्विप् प्रत्ययो भवति । ह्रस्वश्च । अप् क्रिया व्यर्थः । स्त्रीलिङ्गैकरूपम् । बहुवचनम् । अम्भसो अमृतवचनात्स्य ।

1 शव गतौ भ्वादिः । बाहुलकादरः । 2. का उ ४।१। 3 का सू ४।२।१५ । 4 का सू ४।२।५८ । 5. भल्लुः अरण्यमस्येति व्युत्पत्तिर्युक्ता । अरण्यमित्यर्थ । 6 किरतीति किरः । कृ विक्षेपे । कर्मण्यण् । अततीत्यतः । अत सातत्यगमने । पचाद्यच् । किरश्चासावतश्चेति किरात इति पूर्वव्युत्पत्तिः । 7. महदरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । 8 इदं पाणिनीयं ४।१।४९ अत्र यमेत्यधिक पाठः । 9.का उ ४।५ । 10 का उ ५।५ । 11 का उ ४।५१ । 12 का उ ४।६६ । अमति स्वादुत्वं गच्छतीति शेषः । रामाश्रमस्तु अमिशब्दे इत्यतोऽम्बुम् प्रत्ययमाह । 13 का उ ५।१५ । 14 का उ २।१ । 15. अर्णति इत्यस्य पर्यायो गम्यते । पयोऽर्णस् शब्दो नपुंसकान्तः । ऋ गतौ । 16 का सू ३।८।२४ । 17 जलति गच्छति निम्नमिति विग्रहे जल् गतौ इत्यस्मात् पचाद्यच् इत्यादि १।२।४८ सूत्रेण वाचितोऽन्यत । 18 का उ ६।१९ ।

'अपत्य' " इति पुटि दीर्घः । आपः । अपुद्स्वरत्वात् शसादिर्न दीर्घः । अपः । "अपो² भेदः । इति विभक्तिमे परस्य दः । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । ³ वर्गादिः शषसेषु द्वितीयो वा । अफ्सु । अप्सु । आम अवा—ई आपः । वैषेणि देवं शैलेन व्याप्नोतीति विषम् । उभयम् । घनरसः पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, क्षीरम्, भुवनम् पयम्, कमलम्, कीलालम्, अमृतम्, कवन्धम् सर्वतोमुखम् आनर्दं इति नानार्थे ।

तत्पर्य्यायचरो मत्स्यस्तत्पर्य्यायप्रदो घनः ।
तत्पर्य्यायोद्भवं पद्मं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

तस्य पर्यायस्तत्पर्यायाः, तत्परं चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वार्चरः, वारिचरः, कन्चरः पयश्चरः, अम्भश्चरः अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः सलिलचरः जलचरः, शरचरः घनचरः, कुशचरः नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अप्चरः, विषचरः । प्रप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाभे घनस्य नामानि भवन्ति । वार्प्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रदः अम्भःप्रदः अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः अर्णःप्रदः,सलिलप्रदः जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रदः, नीरप्रदः तोयप्रदः जीवनप्रदः, अप्प्रदः, विषप्रदः । इत्यादीनि घनना मानि । तत्पर्यायोद्भवं पद्मम् । वारिपर्यायशब्दाभे उद्भवशब्दे उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वार्युद्भवम् वारिउद्भवम्, कमुद्भवम् पयउद्भवम्, अम्भउद्भवम्, अम्बूद्भवम् पाथउद्भवम्, अर्णउद्भवम् सलिलोद्भवम् जलोद्भवम्, शरोद्भवम्, घनोद्भवम् कुशोद्भवम्, नीरोद्भवम् तोयोद्भवम् जीवनोद्भवम् अप्युद्भवम् विषोद्भवम् । तत्पर्यायधिरम्बुधिः । धाः शब्दा (शब्दपर्याया) ये धिप्रयुक्ते धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि भवन्ति । वार्धिः, वारिधिः, कन्धिः पयोधिः अम्भोधिः, अम्बुधिः, पाथोधिः अर्णोधिः सलिलधिः, जलधिः शरधिः घनधिः कुशधिः नीरधिः तोयधिः जीवनधिः, अब्धिः विषधिः ।

पृथुरोमा षडक्षीणो यादो वैसारिणो झषः ।
विसारी शफरी मीनः पाठीनो (ऽ) निमिषस्तिमिः ॥१७॥

एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य पृथुरोमा । षट् अक्षीणि स्पर्शन-रसन-घ्राण चक्षु-श्रोत्र-मनांसि यस्य स षडक्षीणः । याति गच्छति जले यादः । विसरति 'प्रजोरेर्विन्' विसारी मत्स्य इति । स्वार्थेऽण् । वैसारिणः । झषति हन्ति हिनस्ति झषः । 'सृ गतौ' । सृ गृ सृ गतौ वा" । सृ विपूर्वः विसरति विसर्पति वा इत्येवंशीलः विसारी । विपरिभ्यामाङ् स्योर्घिन् प्रत्ययः । मत्स्यौ (स्व) वृद्धिः । विसारिन् इति जाते वि । ""इन्हन् [पूर्ववत्] (पूषार्यम्णां शौ च)" । शफति शफर । शफर (न) जातम्नि (याति) शफरस्याप्रत्यये शफरी । मीयते हिंस्यतेऽन्योऽन्यम् मीनः । पठतेर्बहु-त्वात् पाठयति भयत्वेन पाठयते वा पाठीनः । निमिषति परस्परं हिनस्ति इन्तीति वा "निमिषः । 'नाम्नुपध (वात्) पृथग्ज्ञा कः" । तिम्यति क्लेदात्रो भवति तिमिः । मत्स्यः, अण्डजः, शफरी विसारः, जलचर शफरी ।

घनाघनो घनो मेघो जीमूतोऽभ्रं बलाहकः ।
पर्जन्यो मिहिरो नभ्राट्

---

१ पा सू ४।२।१ । २ पा सू ७।१।४२ । ३ पा सू पृ सू २५७ । ४ पा सू ४।१।४ इति विन् प्र । ५. पा सू ३।१।७९ उणादिप्रत्यये सर्वेषामन्यानाम इति काशिकावृत्ति । ६ पा सू ३।२।१२ । ७ निमेषरहितत्वान्मीनानाम । कोशान्तरेषु तेषामनिमिषत्वमा कर्णनात्स्य समान्यनिमिष इत्येव धरी युक्त । न तु निमिष इति । तदुक्तम्—'विसारः शफरी शल्की ष र । अनिमिषस्तिमि [redacted] पि ४।११ । ८ पा सू ४।२।५१ ।

नद मेघे । हन हिंसागत्योः । हन्तीति घनाघनः । 'अच्' 'घनाघन' इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा "[2]चिक्लिदचक्नसचराचरचलाचलपतापतवदावदघनाघनपाटूपटा वा" इति नाममूला सज्ञा ज्ञेया । अभ्र क्लिदे " [3]नाम्युपधात्' कः । कनिवारिचलिपतिवदिहनिपातयतिभ्यो ऽप्प्रत्ययो द्विर्वचननिपातनं चेति । बाहुल्यात् क्लिदः क्नसः, चरः, चलः पतः वदः, घनः, पटः इत्यपि भवति । दम्यते वायुना दमः । [4]मूर्तो मनिदच । अस् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चति भूमिमिति मेघः । [5]अच्य चाम् (दिग्पथ) अच् । नामिनो गुणः । "[6]न्यङ्कु" इत्येवमादीनां चवर्गौ कगौ भवतः । हम (हस्व च) भी भवति । जीवनस्य जलस्य मूतः पुटबन्ध इति निरुक्त्या जीमूतः । जीवयत्यनेन भूतानि वा जीमूतः । जीव प्राणने । अभ्रम्यपो राति वा अभ्रम् । अभ्र गत्यर्थे । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आप्नोति सर्वा दिशो वा अभ्र क्लीबे । [7]बलाकाभिर्वाह्यते बलाहकः । वारिवाहको वा । प्रवर्तति वर्ष पर्जन्यः । उणादौ "पृषी सम्पर्के पृषत्के पृषाक्ति वा पर्जन्यः । [8]"पर्जन्यपुन्ये' इति अन्यप्रत्ययान्तो निपात्यते । मेहति सिञ्चति मिहिरः । मदिर मुदिरश्च । न भ्राजते न शोभते नभ्राट् । 'क्विप्भ्राजिधुर्विभासाम्' एवं क्विप् भवति । अम्बु, स्तनयित्नु, पयोधर, धाराधरः धूमयोनिः, तडित्वान्, वारिदः अम्बुभृत् मुदिरः जलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

षट् शम्पायाम् । शाम्यति शीघ्र शम्पा । शम्पा च । शम्पिनति वा शम्पा । सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामि (म) नी । [10]तेनैकदिगित्यण् । शोभनस्य दाम्नो बन्धनरज्जोरियं सदृशी सौदामि (म) नी । सौदाम्नी । सौदामिनी च । ताडयति तडित् । ताडयतेर्डिच्च । ताडयति मेघं ताडयतेऽनयेति वा तडित् । तान्तम । आकालमपि लोककाल रोचते वा आकालिकी । [11]आङ् मर्यादाऽभिविध्योः । क्षणे क्षणे रोचते शोभते क्षणरुचिः । विद्योतते विद्युत् । चपला अचिरा शतह्रदा, ह्रादिनी, अचिररोचिः, ऐरावती, चञ्चला चलुका विरवा ।

तत्पतिरम्बुद ।

विद्युन्नामधाने पतिशब्दे प्रयुज्यमाने अम्बुदनामानि भवन्ति । शम्पापतिः सौदामनीपतिः तडित्पतिः आकालिकीपतिः क्षणरुचिपतिः विद्युत्पतिः निपातपतिः, अशनिपतिः वज्रपतिः उल्कापतिः इत्यादिमेघनामानि स्युः ।

निपातमशनिर्वज्रमुल्काऽशम्बं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वज्रे । निर्यात्यतेऽनेनेति निर्घातम् । पर्वतादीनप्यशाति अशनिः । अश्नुभुजपम

१ इत्येवैकं च का वार्तिकम् । अच् घनघन इत्याकारकं वचनं न क्वचिदु पलभ्यम् । शा सू ७।१।५५ घनाघन पाटूपटम् इति । २ [illegible] नोपलभ्यम् । चरिच लिपतिवदीनां वा द्विरचनमचाक् अभ्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या वा । ३ का सू ४।२।५१ । ४ का सू ४।५।५ इति इत्यत्रसूत्र चनिरावेशश्च । ५ का सू ४।१।४८ । ६ न्यङ्क्वादीनाम् इति का सू ४।६।५७ इति इस्य च । ७ बलाकाभिर्धीयते । प्रोदराद् गता । कर्मणि क्वुन् । अथवा बलेन हीयते आदायते वा क्वुन् इति रामाश्रम । पृषोदरादित्वाद् वारिवाह कस्याम्बरस बलाहक इति निरुक्तश्च । ८ का उ १।८। ९ का सू ४।४।५७ । १ तेन प्रोक्तमित्यस्मिन्नेत्यधिकार "एकदिक्" इति शै सू ३।३।८१ । ११ वाम नकारालावापन्नी यस्याः इति विग्रहे आकालिकया धन्तवचने इति वा सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्ङीपि आकालिकीति मूलानमपि साधु । १२ का उ २।८।१।

स्पर्धिदृतिमदिभ्योऽकिः । एभ्योऽकिः प्रत्ययो भवति । 'टु ओ स्फूर्जा वज्रनिर्घोषे' स्फूर्जतीति वज्रम्[1] । ऋज्रेन्द्र[2]—'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रभद्रगौरमेरौराः' एते रन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पचतिष्यापि भवति पद्मम् । तपति व्यतति तस्का । तत् इति लोकोऽयं पाठ्यो ।

परिपत्कर्दमः पङ्कः

त्रयः कर्दमे । परि समन्तात् भाराक्रान्ता सीदति गन्तुं न शक्नोतीति परिपत् । [3]सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्' इत्यनुपसर्गे उपसर्गेऽपि सामुपसर्गादित्यम् । कर्दयति वेदो हिनस्तीति कर्दमः । [4]'पृथ्वीचपरिकर्दिभ्योऽमः' । पञ्चते विस्तार्यते वर्षाकालेन पङ्कः । त्रयम् । उणादौ 'पन च' पनाय्यते पञ्चते वा पङ्कः । 'पतिपनिभ्यां कः[5]' आभ्यां कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिंहः—

"[6]निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।"

निषद्वरः, जम्बालः शादः, इत्यपि चिक्किलस्यानेकार्थे ।

जलजम्

जलाद् जम जलजम् पङ्कजम् कर्दमजम् परिपज्जम् इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विसु ।

कमल नलिन पद्म सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

शतदल कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्यति यत्र काङ्क्षति तामरसम् । अमरसिंहभाष्ये—"[7]तामः प्रकर्षो रसोऽस्य तामरसम् । तमः प्रकर्षोऽस्यास्तीत्यर्थः । केन सलिलेन मल्यते भासते कमलम् । श्रिया भासतेऽर्थं काम्यते वा । पलिकमिमुषिकुषिभ्यः कलः । एभ्यः कलः प्रत्ययो भवति । कमलं च । नलाः सन्त्यस्य नलिनम् । नलति प्रकाशते भिन्न वा नलिनम् । पुलिनशिलकमलिकुट्ठिभ्यः किनः[8] । नलं च । पद्यते याति लक्ष्मीरत्र पद्मम् । [9]अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् । त्रयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरसी रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । [10]शतस्य दलान्य शतदलम् । कोकमरकनाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । नदीके । [रक्त] कुमुदम्[11] । रक्तकमलस्य । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुण्डति मालिन्यात्पुण्डरीकम् । मद (मुद) मर्दने स्थाने । पुण्डिरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमते पुण्ड शोभे । पुण्डति यस्यति शोभां पुण्डरीकम् । "अनुनासिकान्ताद्धः" अनुनासिकान्ताद्धातोर्ड प्रत्ययो भवति । महच्च तदुत्पलं च महोत्पलम् । तथा च हलायुधः— पुण्डरीकं[14] सिताम्बुजम् ।"

---

१ स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वकारदेशो रक्प्रत्ययश्च निपात्य । वज गतौ । वजतीति विग्रहे वजधातो रक् । २ का उ २।१३ । ३ पा सू ४।३।७४ । ४ का उणादौ एतत्सूत्रं नास्ति । पा उ सू ४।८४ कलिकर्दिभ्योऽमः इत्यस्मात् । ५ का उ ५।१ । रामाश्रमस्तु पचि विस्तारे कर्मणि एतरपदि पत् इत्याह । ६ अमर १।१ ।९ । ७ सी भा ११९।४ । ८ का उ ६।१ । ९ का उ ६।६ । १० का उ १।५३ । ११ तरी दण्डो मत्पति विग्रहे व्याप्यः । १२ अत्र कोकनदं रक्तकुमुदे रक्तोत्पलम् इति मेदिनी तद्विशेषे प्रमाणम् । १३—फर्फरीकादयश्च पा उ ४।१९ इति सूत्रातो ईकन् प्रत्ययान्तः पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुण्डिधातोरीकन्प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण्ड धातोरीकन्प्रत्ययो दाम्बागमश्चपरमुभयं विषमम् । केवलं कप्प्रत्ययस्तु न युक्तः । १४ हलायुध ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

तत्र नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्यं प्राप्नोतीति इन्दीवरम् । अरान् राजी विन्दति इति अरविन्दम् । विद्लृ लाभे विद् अरपूर्वः । अरान् विन्दतीति अरविन्दः । "कर्मणि च विदः" श प्रत्ययो भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते–अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्[1]] अण बाधक । "-शादिशाति वेपुदेजिचेतिधारिपारिलिपि(म्पि)विन्दां त्वनुपसर्गे" एषामनुपसर्गे शो भवति । चक्रत्वाऽव्ययः अरविन्दम् । विन्दी (पुण्डरीक) कमलेऽर्थे तु (अपि) अरविन्दम् । रागविशेषस्य अरविन्दः । केचित्कम लेऽपि पुंस्त्वं मन्यन्ते । शतं पत्राण्यस्य शतपत्रम् । क्लीबे । शोभां पोषयति पुष्यति वा पुष्करम् । शोभामुत्कर्षेण पलति गन्धयतीत्युत्पलम् । कौ वलते प्राणितीति कुवलयम् । कुत्सितो वलिर्बलमः पक्षेऽन्न मत्स्येति भीमोक्त ।

विशेषमाह—

अथ नीलाम्बुजन्म च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजन्म । इन्दतीन्दीवरम्[3] । कुवलय [उत्पलमिति] सामान्यस्य [नीले] विशेष वृत्ति । अस्मिन् सिते । रात्रौ विकासं करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा कुमुदम् । वाच्यम् । के उदके वसो रौति केरवो हंसः तस्येदं प्रियं कैरवम् । क्लीबे ।

तद्वती

तस्य कमलस्य पश्यसि 'वती' इति प्रयुज्यमाने कमलिनीनामानि भवन्ति । तामरसवती कमलवती, नलिनवती पद्मवती सरोजवती, सरसीरुहवती, कोकनदवती पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर विन्दवती शतपत्रवती ।

विसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेव[4] । बिसमस्त्यस्या बिसिनी । नलिनी । पद्मिनी । मृणालिनी ।

प्रततीर्वल्लरी लता ।

वल्लीनामानि योज्यानि–

चतुर्थं[5] (चत्वारो च) लक्ष्याम् । प्रतनोतीति प्रतती । प्रकृष्टा ततिरस्या प्रततीः[6] प्रततिश्च । जपादित्वात्द्वत्वम् । वल्लते वल्लरी । लाति लताति चित्तं वा लता[7] । वल्ल्यते वेष्ट्यते वल्ली । वल्लादीः । वल्लिरित्यपि । विरुधामी । वल्ली । मावस । वीरुद्(धू) गुल्मिनी प्रतानिनी शारिवा क्रिमी च । वृक्षशाखानामपि ।

---

१ का सू ४।३।१ । २. का सू ४।३-२४ । ३ इन्दतीतीन्दीः लक्ष्मी । सर्वधातुभ्य इन् उ सू ४।११७ इतीन् । कृदिकारादक्तिन इति ङीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति अनुपसर्गत्वमप्यूह्यम् । ४ एका विसेनीशब्द इत्यर्थः । ५ मत चत्वारो मतर्यामिति पुष्पम् । ६ प्रतनोतीति प्रततिः । तन् धातौ क्विप् । तौ च संज्ञायामिति क्विप् । पृषोदरा दित्वादस्य च इत्यन्वय । ७ लाति शोभां चातुर्येष्नाभ्यो लवतीति लता । पचाद्यच् इत्यन्वय । ६ सारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिविशेषवाचकः । क्रिमिः स्त्री स्वर्णपुष्पा स्यादपि मालापत्रायाम् इति विश्वलोचनप्रमाणात् क्रिमिशब्दः । क्रिमीशब्दो स्वर्णपुष्पी-माला-पत्रायवाचकः । वृक्षशाखानां लतानां वा उभयत्रप्रसिद्धौ । अतोऽभेदमेव प्रमाणम्

वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना ॥२३॥

अधुना इदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते । केन ? भाष्यकर्त्रा मुनिश्रीमदमरकीर्तिना । साम्प्रतं समुद्रनामानि प्रारभ्यन्ते—

स्रोतस्विनी धुनी सिन्धुः स्रवन्ती निम्नगाऽपगा ।
नदी नदो द्विरेफश्च सरिच्चापि तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्त्यस्याः स्रोतस्विनी । धुनोति कम्पयते धुनिः[1] । ङीबन्ते[2] धुनी । स्यन्दति वहे पतति सिन्धुः । सिधु । 'स्यन्देः[3] सम्प्रसारणं धश्च ।' तटेभ्यो जलं स्रवति स्रवन्ती । निम्नं गच्छति निम्नगा । आ समन्तात् आप्नोति अप्सु भिरगति वा आपगा[3] । आपेन वा गच्छति आपगा । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोति नदी । नदति नदः । "नद्[4] पचादिभ्यश्च" अच् । द्वौ रेफौ तटौ यस्य द्विरेफः । सरति समुद्रं गच्छति सरित् । वाच्यम् । तरङ्गाः सन्त्यस्याः तरङ्गिणी । वहिनी निर्झरिणी कूलङ्कषा शैवलिनी सरस्वती, समुद्रकान्ता ह्रादिनी स्रोतः, जम्बु कुल्या द्वीपवती रोधोवक्रा ।

तत्पतिश्च भवत्यब्धि,

तस्या धुन्याः पतिर्धुनीपतिरित्यादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपतिः सिन्धुपतिः स्रवन्तीपतिः, निम्नगापतिः आपगापतिः नदीपतिः नदपतिः द्विरेफपतिः, सरित्पतिः, तरङ्गिणीपतिः ।

पारावारोऽमृतोद्भवः ।
अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽऽकर ॥२५॥
समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णव ।

नव समुद्रे । पारमाप्नोतीति पारावारः । अमृतस्योद्भवः अमृतोद्भवः । अपारं पारं यस्य नास्त्यसौ अपारवारः । न कुं पृणोति मर्यादापालनात् अकूपारः । रत्नाकरे—"न कुं पृथिवीं पिपर्ति न्या प्नोतीति अकूपारः । अकूपारोऽपि । रत्नमीनयोरभिधाने आकरे प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति । रत्नाकरः पृथुरोमाकरः पाठीनाकरः, यादाकरः[6] वैसारिणाकरः मत्स्याकरः विसारिणाकरः, शकुलाकरः, मीनाकरः पाठीनाकरः निमिषाकरः, तिम्याकरः । 'उन्दी क्लेदने' धातुः । समन्तादुनत्त्यम्भसा इति समुद्रः[8] । स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्विकेदिमदिमन्दिभ्यो रक्" अभिधानचिन्तामणि गुरुः सुद्रः[9] । तथा च रत्नाकरे —"मुद्रा रत्नादिविशेषाः ताभिः सह वर्तते इति समुद्रः ।" अमरसिंह— समुनत्ति समुद्रः । वारीणां जलानां राशिर्वारिराशिः । सरांसि जलप्रवाहाणि सन्त्यस्य सरस्वान् । सगरस्यापत्यं सागरः, सगरतनयैः खातत्वात् । अर्णांसि सन्त्यस्य अर्णवः ।

---

१ धुनोति कम्पयति वेलयावीन् । धुञ् कम्पने । क्विप् । पृषोदरादित्वाद्धुक् । नान्तत्वात् ङीप् धुनी इति रामाश्रमः । २ का उ ११७ । ३ अद्भिरगतीति विग्रहेऽप पकारस्य वकाराभावोऽकारस्य दीर्घत्वं च पृषोदरादित्वेन निपातनात्साध्यम् । ४ का सू ४।२।४८ । ५ अत्र कर्तृरिति दीर्घोकारान्तपाठो युक्त । तदुक्तम्—कर्तू नदी करीराम्बीरिति शाश्वत १७९ । ६ यादस् शब्दस्य सकारान्तत्वात् याद आकर इत्येव न तु यादाकर । ८ समन्तादुनत्ति आर्द्रीकरोति भूभागानिति आनेव विग्रह । अथवाऽस्मादित्यपा दानार्थकोऽपि नापेक्षणीय । समीचीना मुद्रा मर्यादाविशेषा यस्मिन् वा मुद्रया मर्यादया वर्तते वेति स्पष्टस्वान्तरमप्युक्तम् । ८ का उ २।१४ । ९ का सू ३।६।१ । १ मुद उदको मुदादि वम्पूर्व । कमारस्यान्ते तत्पाठाम्मुदादिविधिर्नैरविशस्थाम्मुदमर्थीस्वपि पर्व । समी मकारलोप पृषोदरादित्वात्र बोध्य । ११ धी मा १।६।१।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये– " अर्णो ऽस्यास्तयर्णवः । 'अर्णसो लोपश्च' इति वा सलोपश्च ।" उदधिः उदन्वान्, तोयनिधिः अकराशिः वीचिमाली शशाङ्कज"। तद्भेदाः सप्त-लवणोद‍ क्षीरोदः सुरोद‍ इक्षूदः स्वादूद दध्युदः घृतोद‍ ।

सामोपकण्ठं तीरञ्च पारं रोधोऽवधिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । षिञ् बन्धने । सिनोति बध्नातीति सीमा । "वर्मसोमासीमाश्चमाः" एते मनूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे उपकण्ठम् । तरन्त्यस्मात्तीरम्[४] । तरति प्लवते इव के तीरं वा । "पिपर्ति पृणोति अनेनेति पारम् । पार्यते समाप्यतेऽस्मिन्निति वा । रुणद्धि जलं वेगेन रोधस् । वान्तम् । उभयम् । अवधानम् अवधिः । "[६]उपसर्गे दः किः" । तटयते आहन्यते ऽम्भसा तटम् । त्रिषु । तटः । तटी । इदन्तो वा । तटिः । स्त्रियामी, तटी । कूलम्, कच्छः, प्रभावः तीरम् ।

भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु ।
महत्सूल्लोलकल्लोलौ

भङ्गस्तरङ्ग' कल्लोलो वीचिरुत्कलिकाऽवलिः ।
पाली वेला तटोच्छ्वासौ विभ्रमोऽप्युदन्वत ॥२७॥

एकादश तरङ्गे । भज्यत इते स्वयमेव भङ्गः । तरति प्लवते तरङ्गः । "तृपतिभ्यामङ्गच्" आभ्यामङ्गच्प्रत्ययो भवति । कल्यन्तेऽनेन नद्य कल्लोलः । कुत्सितं लोडति कल्लोलः इत्येकः । वाति (वयति) गच्छति वीचिः[९] । स्त्रियामी वीची । इहितमुत्कर्षेण कलयति उत्कलिका । स्त्रियाम् । आ समन्ताद् वलते आवलिः । पाल्यते पालिः । स्त्रियामीः । पाली । वेलयति पूर्णिमादि कालमुपदिशति वेला । स्त्रियाम् । तटस्य उच्छ्वासश्च तटोच्छ्वासौ । तटति तटः । उच्छ्वसनम् उच्छ्वासः । विभ्रमति विभ्रमः विकारः । कस्य ? उदन्वतः समुद्रस्य । ऊर्मिः, लहरी ।

सम्प्रति मनुष्यवर्गो आरभ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः ।
ना पुमान् पुरुषो गोधा

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्यं मनुष्यः । " कुलनिपातेन प्रथमापत्ये ऽपि" । कुलनिपाताभ्यां मनोपि मनौ तत्कल्प्य । क्वचिद्वृद्धिस्वरस्य न वृद्धिः । मनुष्यः । मनुष्य । मानुषः । टकारो च । मन्यते मुक्तनु लादिकमिति मनुष्य । " मनेरूसः उस्प्रत्ययः । मानयति मान्यते इति वा मानुषः । [११]मानेरुस् उस्प्रत्यय । उभयम् ।

---

१ क्षी भा २।६ । २ क्षीरार्णवेषु समुद्रस्य शशाङ्कजः इति नाम नोपलभ्यम् । कर्म विस्तृत्वानापेक्षया शशिध्वज इति पाठो बोध्य । शशी चन्द्रो ध्वजश्चिह्नं यस्य वा यस्येति तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रमन्थनं पुराणप्रसिद्धम् । ३ का उ ११५१ । ४ पृ अवन्तरवती । ५ प्रत्यये परत इर् दीर्घत्वं च । यजीष्यादि शरणम् । तस्य पर्यायास्तु पार तीर कर्मसमामा । तत्स्थीरच तीरे विग्रहे पचाद्यच् । ६ पालनपूरणयो पृ धातुरनेन पिपर्तीत्यस्य पूरयतीति पर्यायो पृणो न पृ पृणोतीति । स्वसादिस्वात्प्य । क्षीरस्वामी तु परे पारमर्थं कूलम् पारम् इत्याह । ६ का सू ८।५।७ इति किः । ७ का उ ५।२२ । ८ अथ यमतये शब्दे वर्तमाने इवस्य शब्दवन्त इत्यर्थः । उणादिस्वादीत्वम् । ९ वसम् तस्य वीचरपत्यमसाद्यः । मनुष्यतस्य परस्पर्य्यो सकार इति गमाभमः । ९. षेत्र वर्तरचे । षेणो हिथ उ सू ४।७२ इतीषिम । १० अर्थ विहितत्वाने मनो यपूर्व्व का रू पू ४"१ इति स्य यण् प्रत्ययो इति पाठो पृथक् । ११ का उ ६।१ । १२. का उ ६।११ ।

'तृतीय चाम्पियत यान्तो परमेते मुजङ्गमाः ।
न पुनः पशुहीनरवात् पशुमुमायन्तु मानुषम् ॥"

म्रियते मर्त्यः । " ,त्यक्" । स्वार्थे स्त्री वा । मनोर्जाता मनुजाः । मनोरपत्यं मानवाः[1] । नृणाति क्लिनति नरः, "नृ नये" नयतीति वा । "[3]मिथी डाऽनुबन्धश्च" । अस्मात् मृन् प्रत्ययो भवति स च डाऽनुबन्धः इत्येतेऽस्वस्वरादिलोपार्थः । पूयते कुलमनेन धान्ताः—"पुमान् । उणादौ पूङः पवते पुनातीति वा पुमान् । "किर्मनस्तस्य ।" अस्मात्तिः प्रत्ययो भवति यस्य च मन् अस्य चकारात् ह्रस्वत्वं च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणात् पुरुषः । पृणाति पूरयति वा स्वोत्थानुदरं गर्भेणेति पुरुषः[6] । "पुनातेः[7] कुष" । अस्मात्कुष प्रत्ययो भवति । कोऽनुबन्धः । अस्येषा मपीति वा दर्पः । पूरुषः । सत्वे पुरुषः पुरुषश्च । "गुप परिभाषणे" । गुप्यति गोधा[8] ।

धवः स्यात्पतिनृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्यान्ते धव-पतिशब्दप्रयोगे नृपनामानि भवन्ति । मनुष्यधवः मानुषधवः मर्त्यधवः मनुजधवः मानवधवः नरधवः नृधवः, पुन्धवः, पुरुषधवः गोधाधवः । मनुष्यपतिः, मानुषपतिः मर्त्यपतिः मनुजपतिः मानवपतिः नरपतिः नृपतिः पुंस्पतिः, पुरुषपतिः गोधापतिः ।

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदातिः पदगोऽनुगः ।
भटाऽनुजोऽप्यनुचरः सुखजीवी च किङ्करः ॥२९॥

एकादश सेवके । भ्रियते इति भृत्यः । " क्यप्संज्ञायाम् " । भ्रियते राज्ञा भृतः । स्वार्थे कः । भृतकः । पतति गच्छति पत्तिः पतन वा । [पादाभ्याम्] अतति [पदातिः] । पादातिकः । पदात्यादिक इकः । "[11]किन्यादिस्वात्स्वार्थे ठञ् । पद्भ्यां [12] गच्छतीति पदगः । अनु पश्चाद् गच्छति अनुगः । भटति पुष्ट बिभर्ति भटः । अनुजीवतीत्येवंशीलः अनुजीवी । अनु पश्चाच्चरतीत्यनुचरः । सुखेन स्वामुखेन जीवतीत्येवंशीलः सुखजीवी । किं कुत्सितं कार्यं करोति किङ्करः । षडपि सेवकः पर्यायाः पतिस्थः । यथा च पद्यत्रिकके—(श्लो ११)

"सत्यं दूरे विहरति समं साधुभावेन पुंसां धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।
पापं शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं सेवावृत्तेः परमिह परं पातकं नास्ति किञ्चित् ॥'

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना ।
ललना कामिनी योषित् योषा सीमन्तिनीति च ॥३०॥

---

१ का उ १।१२ । २ मामपन्थे का रू पृ ४०१ द्रष्टव्यम् । ३ का उ २।४१ । ४ पाति पुनाति वा पुमान् । पातेर्डुम्सुन्, पूर्णो डुम्सुन्, पा उ ४।१७ इति डुम्सुन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र । ५. का उ ४।४९ । ६ पुरि शयनादिति तु निरुक्तकारी विग्रहस्तु पृणातीत्यादिरेव । ७. का उ १।५४ । ८ गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोशान्तरप्रमाणं नोपलभ्यम् । तदुक्तम्— गोधा तलनिधाश्रयोः पि को । गोधा प्रत्यभिरोधे स्य कस्याभावस्य च कारणं । भाषारामाख्यातीतस्य च सर्वभाष्यीक्तम् । च ते २४१। अतोऽत्र मूलं मृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यास्तीति गोदः मुख्यमस्तिष्कत्वात् पुरुष इति व्याख्येयम् । तदुक्तम् गोदं तु मस्तकस्नेहो मस्तिष्को मस्तुलुङ्गकः अ चि ३।२८८। ९ का सू ४।१।२५ इति क्यप् । १० भागादिकस्ति क्तिच् वा च संज्ञायामिति वा क्तिप् । पतनं वा इति मूलरतिस्त्वपातङ्गि दत्ता पैक्या । ११ अमरसिंहो च पा०उ ४।११ इत्यत्रैव । पादस्य पदाज्यातिगलेतु इति पदादेशश्च । १२ किन्याद्यपि बदे सू ४।१९४ । १३ पदाभ्यां पादाभ्यां चेति वक्तव्यम्, न तु पद्भ्यामिति । पाद इत्याद्ये । पादस्य पदाज्यातीति पादस्य पद् ।

निसम्बिन्यबला बाला कामुकी वामलोचना ।
भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविंशतिः स्त्रियाम् । "स्तृञ् आच्छादने स्तृणात्याच्छादयति स्वदोषान् परगुणानि ति स्त्री । ड्रट्प्रत्ययो । स्तृणात्याच्छादयति सत्त्वादिगुणानमिति स्त्री । स्तृणातेड्रट् प्रत्ययो भवति । ऋकारमात्र[1] । "स्त्यैवर्णे"[2] । अथवा मूर्द्धन्याठः । डाऽनुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थं । डकारो नदार्थं । रकारमात्र एव । अमरविवेकभाष्ये – स्त्यायत्यस्य(ते ऽ) स्यां गर्भः स्त्री ।" तथा च हलायुधे– "स्तृणाति विवेकमाच्छिदनत्ति स्त्री" । नरस्य स्त्री नारीत्येवमारी । नरं वनति भजते वनिता । मुह वैचित्ये कार्येषु मुह्यति मुग्धा । 'सुहेर्वक्'[4] हस्य घः । भामते कुप्यते (ति) भामिनी । [भामः] कोपोऽस्त्यस्याः वा भामिनी । बिभेत्यस्माद्(त्स्मा)भीरुः । "भियो क्रुकुकी च ।" भीरुः । मनस्त्वाभ्यङ्गान्यस्या अङ्गना । लाडयति (लयति) विलसति ललयति (ललति) नरमीप्सते वा ललना । "लल ईप्सायाम्" । भामान् कामयते कामिनी । जुषः सेवनेऽत्र धातुः सेवार्थे । योषति पुरुषं गच्छति स्वेच्छया आत्मनो योषा । 'कष शिष जष झष दष मष रुष रिष यूष जूष हिंसार्थाः" । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । "इषवधि वसिवृधिभ्य इति" एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । ककार उच्चारणार्थः । अमरसिंहे–"योषित् पुमान् योषित् । अजादित्वादाप्यत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्त्यस्या सीमन्तिनी । बध्नाति चित्तं वधूः । नितम्बोऽस्त्यस्या नितम्बिनी । न विद्यते बलमस्या अबला । बा' शोभायां वाति प्राप्नोतीति बाला । "कमु कान्तौ" कम् । कमेरिनिङ् कारितम् इन् । "अस्लोप" दीर्घः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । "सृघसगमहन्वृष भूस्थाकसपतासुकञ्"। कारितलोपः । निमि" दीर्घाभाव । मकारऽनुबन्धत्वात्पूर्वस्योप दीर्घः । वामे सुन्दरे लोचने नेत्रे यस्याः सा वामलोचना । "भाम क्रोधे" चुरादौ । भामयति । "भाम क्रोध" म्वादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते भामा । "अच्युपोपादिदर्शनात्" । तनु सूक्ष्ममुदरं यस्या सा तनूदरी । नरेषु रमते मनांसि रमयति वा रामा । सुन्द्र ह्रियते आद्रियते जनोऽत्र शोभनो दरी यतः' ऋक्षमस्या वा सुन्दरी । अथवा 'सुन्दर' इति सौत्रोऽयं धातुः । युवत्यभ्यावसादिविचित्रिः युवतिः । यु मिश्रणे यौति नरान् मिश्रयति औणादिको वा अति युवतिः । स्त्रियमी । युवती । यूनीत्यन्यः । तथाहि प्रयोग —

मर्त्यो मंगर एव मृत्युवसति प्राप्तः ममं पञ्चमि
पूनी काममयं धुनोति च मनो वैषम्यदुस्साद् वपुः ।
बालो दुस्सत्र एक एव च शिशुरेकं कृतं वेषसा
कोपायमीति महीपते प्रलपति यद्वैरिसीमन्तिनी ॥"

चलचित्ताम्पुरुषान् चालयतीति चला । वामनेत्रा पुरन्ध्री, वासिता वर्णिनी,प्रमदा रमणी

१ का उ ४।१६ । २. का सू १।२।१ । ३ धी मा २।५।२ । ४ का उ ६।१८४ इति विङ् प्र इस्य गश्च । ५ का सू ४।६।५६ । ६ का उ १।३५ । ७. धी मा० २।६।२ । ८ का रू उ ४१२ । ९. का सू ४।६।३४ । १० कारितस्यनामिद्विकरणे का सू ३।६।४४ इतीनो लप । इनः कारितसंज्ञा कालापव्याकरणे । ११ निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभाव इति परिभाषेन्दुशेखरे भरतम्पूर्वपरिभाषार्थकम् । १२ रमते रामा । ज्वलादित्वाण्णः । रमयतीति तु न पुनम् ण्यन्तस्य ज्वलादित्वाभावात् । १३ सु पूर्वक उनादि सुन्दरी । उन्दी क्लेदने । बाहुलकात्स्य । शकन्ध्वादि त्वाडुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वान्ङीष् इति रामाश्रम । १४ का उ ६।४।५ । १५. चलति । पुरुषेभवती न चलस्वर विमद । पचाद्यच् । णिजन्तात् चाला इति स्यात् ।

दयिता मनोरञ्जिनी कान्ता वधा, महिला महेला च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्रं गेहिनी गृहम् ।
महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रयः ॥३२॥

दश कलत्रे । डुभृञ् धारणपोषणयोः । भ्रियते पुष्यते गर्भेण भार्या । [१]"ऋहलोर्ण्यत्" इति ण्यत् । अकारमात्रा । अन्त्योपधावृद्धिः । भार्या इति जातम् । [२]"अजाद्यतष्टाप्" । टाप्प्रत्ययः । प्रसि । [३] अनुबन्धलोपः । विलोपः । "जनी प्रादुर्भावे" जा (यि) जायते जाया । 'जनी प्रादुर्भावे' । जनी जायते अस्या इति जनिः । [४]"इन्सर्वधातुभ्यः"—जन्या जाया इत्यादयः शब्दाः बहुलप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । जनयति पुत्रादीनिति जनिः । [५]"सर्वधातुभ्य इन्" । कुले साधुः कुल्या [६]"कुलत्वादितः" । कड मदे कड धातोः । कडति माद्यति यौवनेनेति [७]कलत्रम् । 'अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्' अत्रप्रत्ययः । कलत्रम् । डलयोरैक्यम् । ग्रह [?] नपु[?] मका [?] सुरा । [?] । गेहमस्त्यस्या गेहिनी । ग्रह उपादाने । गृह्णाति वस्तुपार्जितं गृहम् । [८]"गेहे कः" कप्रत्ययः । 'महिला'[९] —सम्प्रसारणम् । मान्यते पूज्यते । मानवती । मान प्रणयकोपोऽस्या मानिनी । पतिं पाति पत्नी । [१०] "दृ विदारणे" । दृ [?] दीर्यन्ते शत्रुलोकं भजति पुरुष एभिरिति दाराः । [११]"दारौ" घञ् । अकारमात्रा । [१२]वृद्धिः । दार इति जातम् । प्रथमा बहु । प्रथमा बहुत्वं च । पुरं धारयन्ति गेहानि पुरं शरीरं धरन्तीति [१३]पुरन्ध्रयः । क्षेत्रम्, सहधर्मचारिणी यशः, सधर्मी सहचरा । [?]

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्ठा रमणी दयिता प्रिया ।
इष्टा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

एकादश वल्लभायाम् । वल्लते वस्तुभिर्वं वल्लभोतीति वल्लभा । [१५]"हृगुणवस्तिपर्दिराति वल्लिपल्लिलम्बोऽभः" अभ प्रत्ययः आमस्वरः । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । "वर"[१६]"तमेनस्तिकः प्रत्ययाऽऽर्थे तर तम ईयसु इष्ठ" इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया प्रेष्ठा । रमते अनयोऽस्य मनांसि रमयति

---

[१] का सू ४।२।१५ इति ण्यत्प्रत्ययः । २ का सू २।४।४९ । ३. का सू २।१।१७ । ४ का उ ४।१ । ५ का उ १।१४ । ६ का सू २।६।११ इति यत्प्रत्ययः । ७. का उ १।५। गड सेचने । गडति गम्यते वा अमेरात्रन् कः पा उ इत्यत्रन् । डलयोरैक्यम् । कड यावन मदे । कडति कल्यते वा मातुसकारान्तः । कलं मधुरं ध्वनिं त्रायते रक्षति वा । त्रैङ् पालने कः इत्यस्य । ८ प्रकारान्तरमुक्तौ पुंस इति पूर्वं का सू २।२।७ इति पर्यायो गुरागमस्य । ९. मौण्डत्वार प्रकृति इति पूर्वे का सू १।७।१५ इत्यनुस्वारः । १ का सू ४।८।६ । ११ का सू ३।४।९ मात्स्यामविन्धविपतिम्यविमथिकृन्तरिचमस्रीनामगुणे इति पूर्वसूत्रम् । १२ का सू ४।५।११ । १३ का सू ३।६।५ । अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु इति सूत्रस्यत्वम् । १४ स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री २।६।६ । इत्यमरादिकोशेषु वर्णसाधारणपुरन्ध्रीशब्दस्यैव सत्त्वात् पुरन्ध्रय इति पाठोऽशुद्ध इति न भ्रमितव्यम् । पुरं धरन्तीति विग्रहे "अन् इ" पा उ ४।११९ इति इः । पुरीदर्शयित्वात्पुरोऽकारान्तत्वं मुमागमश्चेति योज्या सत्वात्पुरन्धेः । अत एव स्त्री स्यात्पुरन्ध्रीमता च रामा पुरम्भिमिश्च प्रमदा प्रयुक्तम् इति रघुः । पुरन्ध्रयमस्तीति न विचारणीयम्, तस्याप्रमाणशास्त्रविरहात् । १५. भार्यादिपुरन्ध्यन्त-शब्देषु सामान्यविशेषभावादर्थभेदो न विस्मर्तव्यः । तथा—भार्या जाया कुल्या, कलत्रं गेहिनी गृह पत्नी दारा परिणीतस्त्रीवाचका । महिलामानिन्यो विशिष्टगुणवाचके । पुरन्ध्री पतिपुत्रवती । १६ का उ ३।१२ । १७ एतत् कातन्त्रसूत्रं नोपलभ्यते । गणाद्यादेर्ष्ठ इष्ठ । सू ३।४।२५ इतीयसुमनूसरणी यौप्य ।

वा रमणी । नरेषु दृश्यते गच्छति ईर्ष्ये वा दयिता । प्रीणाति पतिचित्तं रञ्जयति प्रिया । इष्यते इष्यते वा इष्टा । प्रकृष्टो मदोऽस्याः प्रमदा । काम्यते नरेण कान्ता । चण्डते कुप्यति चण्डी । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति प्रणयिनी ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्यपि ।

मनस्विनी भवत्यार्या–

षट् पतिव्रतायाम् । एक पतिरस्तीति सती[1] । पतिव्रतं करोति पतिरेव व्रतं सेव्यो नान्यो यस्या इति वा पतिव्रता । पतिसेवैव व्रतं यस्याः पतिव्रता । मनुस्मृति—"नास्ति[2] स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति ।" साधयति साध्वी । पतिरस्या अस्तीति पतिवत्नी[3] । एकः पतिर्यस्याः सा एकपत्नी । मनोऽस्या अस्तीति मनस्विनी । अर्यते सेव्यते आर्या । सुचरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया धनञ्जयेन आप्यकर्त्रा अमरकीर्तिना वा कथ्यते विपरीता असच्चरित्रा ।

बन्धकी कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंश्चली खला ।

षट् बन्धक्याम् । बध्नाति दयमविष्टानि बन्धकी । कुलमटति कुलटा । तथा चोक्तम् 'टल दृवल वैक्लव्ये' इत्यादि । अस्योपधाया दीर्घे । कुलपूर्वी । कुलं टालयति कुलटा । 'कुले अटते टिलुक् च' कुले उपपदे अटतेरिष्टस्तस्य अः प्रत्ययो भवति इलुक् च । स्वाचारं मुच्यते (स्म) यत्या धनैर्वा मुक्ता । पुनर्भवतीति पुनर्भूः । पुमांसं चालयति पुंश्चली । खं पञ्चेन्द्रियोत्पन्नसुखं लाति गृह्णातीति खला, अन्यपुरुषसम्पर्कात् । पांसुला स्वैरिणी असती इत्वरी धर्षणी अविनीता, अभिसारिका चपला ।

स्पर्शाऽभिसारिका दूती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूत्याम् । 'स्पृश संस्पर्शे' । स्पृशति, स्पृशयति, अस्प्राक्षीत् अस्पर्शं वा घञ् । स्पर्शः । 'पद रुजविशस्पृशो घञ्' । नामिन[4] श्च गुणः । स्त्रियामाप्' आप्प्रत्ययः । स्पर्शा । पुरुषान्तरमभिसरति अभिसारिका । दूयन्तेऽस्या[5] मीलनाद् दूती । 'ईर् गतौ कम्पने च' । ईर् । ईरणम् ईरः । 'भावे' घञ् प्रत्ययः । स्वस्य ईरः स्वैरः । स्वैरो विद्यतेऽस्या स्वैरिणी । 'तदस्यास्तीति मत्वन्तस्येन्' इन् । नद्यादिभ्यश्चाद्' ई प्रत्ययः । ऋषुवर्णेभ्य नस्य णत्वम् । शं सुखम् फलति निष्पादयतीति शम्फली । तथा तेनैव प्रकारेण ।

गणिका लञ्जिका वेश्या रूपाजीवा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दासी कामुकी सर्ववल्लभा ॥ ३६ ॥

नव वेश्यायाम् । गणाः पेटकोऽस्त्यस्या गणमतीभरानीश्वरी वा गणिका । 'लजि लाजि छाया लञ्ज तर्ज भर्त्सने' । लञ्जयति निःस्नान्पुरुषान् लज्जतीति लञ्जिका । वेशो वेश्यावाटे भवा वेश्या[12] । रूपेण या समन्ताज्जीवतीति रूपाजीवा । विलासोऽस्या अस्तीति विलासिनी । तथा चोक्तम्—

'हावो मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।

विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमोऽत्र दृगन्तयोः ॥

१ अस्धातो शतृप्रत्ययान्तो ङीबन्तः सतीशब्दः । २ 'नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे न हीयते" इति मनुस्मृति ५।१५५। ३ पतिवत्नी, एकपत्नी इति पाठो युक्तः । ४ का स ५।४७ । ५. का सू ४।५।१ । ६ का सू ३।५।२ नामिनश्चोपधाया लघोः इति पूर्वसूत्रम् । ७. दूयन्ते परितप्यन्ते । अत्र कर्तरि स्त्रीपुमांसः । ८ का सू ४।५।१ । ९. का सू २।६।१५ । १० का सू २।४।५ । ११ का सू २।४।४८। 'रषुवर्णेभ्यो नोणमनन्त्य स्वरहयवकवर्गान्तरोऽपि' इति पूर्वसूत्रम् । १२. वेशेन नेपथ्येन शोभते 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत् । वेशो भवा दिगादित्वाद्यत् ।

गन्धस्य करी गन्धकारी । परिमार्जं कृत्वा रमयतीत्यर्थः । इत्यादि विचारयति कामिनम् कारिका । इत्यपि परिकर्मणा भवति इवात्मानं वा दासी । दासी । तानम्बरस्था । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । सर्वेषां पुरुषाणां वल्लभा सर्ववल्लभा । सैरन्ध्री ।

"[1]चतुःषष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी ।
प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री कथ्यते बुधैः ॥"

गन्धकारिका । गन्धली च ।

कान्तोऽर्थी दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः ।
वल्लभोऽसुपतिः प्रेयान् विटश्च रमणो वरः ॥३७॥

भवोदय कान्ते । काम्यतेऽभिलष्यते कान्तः । इष्यते इष्टः । दया कृपा संजाता अस्येति दयितः । [2]तारकितादित्वात्संजातेऽर्थे इतच् । [3]यस्येति च लोपः स्वरे प्रत्यये ये च । अकारलोपः । प्रीरेकः । प्र प्रकर्षेण ई कामसुखम् इतः प्राप्तः प्रीतः । पृषोदरादित्वात् आकारलोपः । प्रीणातिस्म प्रीतः । प्रीणाति प्रीणीते वा प्रियः । [4]नाम्युपधप्रीकृगृज्ञां कः । [5]स्वरवदावियर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ ।' कामोऽस्यास्तीति कामी । कामयते इत्येवंशीलः कामुकः । वल्लते वल्लभः । [6]कृत्यशिकर्तृ रासिवसिवसिवल्भ्योऽभः । अभ प्रत्ययः । असूनां प्राणानां पतिः असुपतिः । अतिशयेन प्रियः प्रेयान् । [7]प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रपद्राघिवृन्दाः ।" विट शब्दे विटति कामोद्रेकमन्यं करोतीति विटः । [8]इगुपधेति कः । 'रमु क्रीडायाम् । रम् । रमते कश्चित् । तं प्रयुङ्क्ते इन् । अस्योपधायाः दीर्घः । मानुबन्धानां ह्रस्वः । रमयतीति रमणः । "[9]नन्द्यादेर्युः । [10]"युवुझामनाकान्ताः" अनः । [11]कारितस्य कारितलोपः । [12]रणु नस्य णत्वम् । वृणोति वर वति वा वरः । कमिता । पतिः । वरयिता । भर्ता । भोक्ता । धवः । रम्यः । प्रमोदः । [13]अन्य गुण्यो कामपितरि वो वा दीर्घश्च" जनयति च । अभिकः । अनुकः । प्राणाधिनाथः । सेवकः ।

सवित्री जननी माता

त्रयः मातरि । सूते जनयति सवित्री । जनयति जायतेऽस्याः वा जननी । माति गर्भोऽत्र [14]मानयति वा माता । अम्बा ।

जनकः सविता पिता ।

त्रयः पितरि । जनयति उत्पादयतीति जनकः । पुमान् सूयते (सूते) सविता । अविताद् पाति रक्षतीति पिता । 'उणादौ' पा रक्षणे पातीति पिता । 'स्वसादयः' [1] । स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृ क्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृपितृभ्रातृदुहितृजामातृमातरः' एते शब्दास्तृन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

---

१ 'चतुःषष्टिकलाऽभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी । प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री स्वमतेऽपि वेति भरत' इत्यमरकोशे टीका । २. का सू ५ ८ । ३ का सू २।६।४ । ४ का सू ४।२।५१ । ५ का सू १।४।५५। इतीप् । ६ का उ सू १।१२ । ७ पा सू ६।४।१५७। इति प्रियशब्दस्य प्रादेशः । ८. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः पा सू ३।१।१३५। ९ का सू १।४।६५। इति हस्व । १० का सू ४।२।४९। इति युप्रत्यय । ११ का सू ४।६।५४। इति कारितलोपः । १२. का सू ३।६।४७। इत्यनेन लोपः । १३ का सू २।४।४८। १४ कातन्त्रे नैतत्सूत्रमुपलभ्यते । जैनेन्द्रव्याकरणे 'पुरुषत्ति कोदरिक' इत्यादि सूत्रम् ४।१।१७। तेन कप्रत्ययान्ताः पदे दीर्घत्वमाभिकोऽभीक इति निपात्यते । १५ मानयतीत्यर्थः पिमदस्तु मातीत्येव । मा माने । तृच् प्रत्ययान्तः । १६ का उ २।४२ ।

देहापघनकायाङ्ग वपुः संहनन तनु ॥ ३८ ॥

कलेवर शरीर च मूर्ति

दिह देहे । देहश्च अपघनश्च कायश्च अङ्गं च । समाहारसमासत्वादेकवचनम् । दिह । देग्धीति देहः । 'दिहिलिहिश्लिषिश्वसिव्यध्यतीपृश्यातां च' । एतो घो भवति । अपहन्यते अपघनः । 'मूर्तौ घनिश्च' घञ् । चिञ् चयने । चि । चीयतेऽसौ कायः । "शरीरनिवासयोः कश्चादेः' चिनोते शरीरे निवासे चार्थे घञ् भवति चादेश्च कौ भवति । अम वाम चल मल रल तलि इति घञ रगि लगि अगि, वगि मगि स्वगि इगि रिगि लिगि गत्यर्थाः । अङ्गति मरणं गच्छतीति अङ्गम् । उप्यन्ते पुरुषाणां कर्मेभिति वपुः । वप[5]पुषपिचशिवनितनि धनिभ्य उस् एभ्य उस् प्रत्ययो भवति । संहन्यन्ते संपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम् । धातुभिः रसासृग्मांस मेदोऽस्थिमज्जाशुक्रैस्तन्यन्ते तनुः । तनू । तनादौ तनुविस्तारे । तनोतीति तनूः । कृषि चमितनिधनि धविवर्षिसर्जिभ्य ऊः एभ्य ऊप्रत्ययो भवति । कलते स्थिरत्वं गच्छति कलेवरम्[6] । कलति मायति वा कलेवरम् । कलेवरं च । समर्थनिमत्ये कल्यते कलेवरम् । शीर्यते क्षय गच्छति रोमभ्यपरिभि शरीरम् । 'कॄ[7]शॄपॄभ्य ईरः' । एभ्य ईरन्प्रत्ययो भवति । उणादित्वात् । 'मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः' मूर्छ । मूर्छनं मूर्तिः । स्त्रियां क्तिः । 'मोपधस्यात्र कति' [9] इति मेद् । राल्लोप (च्छो) [11] इति छकार लोप । "नामिनाप्रोऽन्कुछु रोर्व्यञ्जने" [12] दीर्घ । व्यञ्जनम्[13] । अथ क्तिः । रेफः[14] । विग्रहः । वर्ष्म । पुरम् । पिण्डम् । देहम् । गोत्रम् । घनः । पुद्गलः । प्रतीकः । क्षेत्रकः ।

अस्मिन् भव

अस्मिन् काये भवः कायभव । देहभवः । अपघनभव । अङ्गभव । वपुर्भवः । संहनन भव । तनुभव । कलेवरभवः । शरीरभव । मूर्तिभव । कायवः । देहवः । अपघनव । अङ्गवः । वपुर्व । संहननव । तनुव । कलेवरवः । शरीरव । मूर्तिवः । एतानि पुत्रनामानि भवन्ति । भव प्रयोगे ।

सुतः ।

पुत्र सूनुरपत्यं च तुक् तोक चात्मज प्रजा ॥३९॥

षूञ् पुत्रे । सूयते सुतः । पुनातीति पुत्रः । "[1] पूञो ह्रस्वश्च ।" अस्मात् त्रप्रत्ययो भवति धातोश्च ह्रस्वः । कोऽनुस्वार्थं । तथा च सोमनन्द्याम्[16] — 'य उत्पन्नः पुनाति वंशं स पुत्रः' । अथ पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते वा पुत्रः । सूयते सूनुः । सूधितिभ्यां नक् ।" आभ्यां नु प्रत्ययो भवति स च नक्वत् ।" पृ पू माङ् मर्भविमोचने ।" पत्त शास पत्लृ पते च गतौ । पत् नञ् पूर्व । न पतन्ति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यम् । "अभि पतेर्य" यप्रत्ययः । नस्य[1] तस्तु क्तिः । नपु

---

१ का सू ४।२।५८। २ का सू ४।५।८८। हस्वत् धन्वादेशः । ३ का सू ४।५।१६ । ४ का उ २।७६। ५ का उ १।११। ६ कश्चे पुंके मधुरासफल्गो वा वरं भेदम् । "हसुस्वाचि" ति धसन्ना मातुष् । हसभ्यन । ७ चीर भा २।६।७ । ८ का उ ३।७८। ९ का सू ४।६।७२। इति क्तिप्रत्ययः । १ का सू ४।६।८ । ११ का सू ४।१।५८। १२ का सू ३।८।१४। १३ 'व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्" इति पूर्व कातन्त्रसूत्रम् ।१।१।२१। इति व्यञ्जनस्य पर वर्णयोगः । १४ "रेफसोर्विसर्जनीय" इति पूर्वम् । का सू २।३।६३। इति सकारस्य विसर्गः । १५ का उ ४।४१। १६ मी या समु ५ सू ११ । १७ का उ २।५५ १८ का उ ६।१ । १९ "नस्य तत्पुरुषे लोप्यः इति पूर्वम् । का सू २।५।२२। इति नलोपः ।

प्रजा [1] । मौञ्जु [2] । तोषयति [3]तुक् । सूयते तोकम् [4] । आत्मनो जात आत्मजः । प्रकर्षेण जाता प्रजा । [5]समीपम्पमस्ते अनेर्व । बालः, पाकः, अर्भकः गर्भपोतस्य । पृथुकः, शिशुः शावः डिम्भः बटुः माणवकः, भ्रूणः ।

उद्वहस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।

स्तनन्धयोत्तानशयौ–

अष्टौ बालके । उद्वहतीति उद्वहः । अच् । तनोति विस्तारयति वंशम्, तनयः । [6]तमेः कय । पवते पावेन पोतः [7] । दारयति दृणाति वा दस्यूनां मर्माणि दारकः । [8]दृनारि क्मुवौ । नद् । अत एव नन्द् । नन्दति करिष्यतमन्यः प्रभुव्युष्टे । [9]नातौस्य दौतौ (देतौ) [10] इम् । नन्दयतीति नन्दनः । 'नन्दि वासिमदिदूषिसाधिशोभिवर्धिभ्य इनन्तेभ्योऽसंज्ञायाम् युप्रत्ययः । नन्दते 'नन्दाते' पुं तु प्रत्ययः [11]युवोरनाकौ०– इति युस्थाने अनः । [12]आरक्षितस्थानामि कारितलोपः । अर्भं मह पूजायाम् अर्थस्य सेकः । [13]भूतावत । भूभ्युकार्भकपृथुकस्यकनूभ एते अकन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति स्तनन्धयः । [14]'ग्रुनीस्तनमुष्टिकूलास्यपुष्पेषु धेटः ।' खश् । उत्तानः शेते उत्तानशयः । [15]'उत्तानादिषु कर्तृषु' अच् ।

स्त्री त्वेद् दुहितर स्त्रियु ॥४०॥

पुत्र्यां दुहितर [16] दोग्धि मातृकुलं दुनोति वा पितुः क्वचनित । तनया पुत्री ।

वयस्याऽऽली सहचरी सध्रीची सवया: सखी ।

षट् सख्याम् । वयसा तुल्या वयस्या । वयती च । आ समन्तात् अलति आलिः । स्त्रियामी । आली । सह चरतीति सहचरी । व्याप्नोतीति तन्त्रर् । [17]सहतिरसौ तम्रिसमिति रत्. ।" ईप्रत्यये सध्रीची । सह वयसा वर्तते सवयाः । समानं ख्यातीति सखि (खा) । स्त्रियामीः सखी । "सखमादयः" इति प्रभि प्रति इत्यादयो किप्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

आलीविपक्षितं मित्रं सम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे । आली रहितानि वयस्यादीनि नामानि मित्रवाच्यानि सुरित्यर्थः । 'मिमिदा स्नेहने' । मेद्यति स्म मेद्यते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा मित्रम् । [18]अमिमिदिभ्यां त्रह्' आभ्यां [21]

१ 'अकारान्तस्युको मुम इति पूर्वम् । का सू. २।२।७। इति सेर्लोपो मुमागमश्च । २ मोऽनुस्वारं व्यञ्जने इति पूर्वम् । का सू. १।५।१५। ३ तुष (?) हिंसायां अनिषेधनेषु । तुपदो वा क्विप् । तोषयति पितृजनमातरौ 'तुक्' इति शीकायण । ४ तौति पूरयति पितृमर्गं स्थिरमावेऽभीति तोकम् । तु तौषो वार्द्धिहिंसापूर्तिषु । वार्तुलबालकः इति श्रुत्यर्थान्तरसम्पूर्णम् । ५. का सू. ४।५।५१। इति अनेर्ड । ६ का उ २।२५। इति तन् धातोः कयप्रत्ययः । ७ पवते गच्छतेनेति विग्रहस्तु नौका-वाचकपोते बोध्य । पुत्रार्थे तु पुनाति पवते वा यस्मात् पोतः । मुसुपाव्यस्मि – इति का उ ४।२७। सूत्रेण तप्रत्यय । ८ दुष्कृतिमनोदारण बालकाय न पठ्यते । अतो दृणाति दारयति वा मातृयौवनम्, पित्रोर्निरन्तानतां अस्मादितीति तदारम्भोऽनुगम च । ९ का सू. ३।२।१ । १० का सू. ४।२।४९। नन्दादेर्युः इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११ का सू. ४।६।५४ । १२. का सू. ३।६।१४। इतीनो लोपः । इन कारितसंज्ञा भवन्ति । १३ का उ २।५८। १४ का सू. ४।३।११। १५ का सू. ४।३।१८ अत्र दुर्गवृत्तिः । १६ दोग्धि पितृकुलं वहति दुनोति वा मातृकुलं दुहिता । स्वसादिस्थापून्मत्यय इत्याशयः । १७ का सू. ४।६।७१। इति सहस्य सध्र्यादेशः । १८ समानं वयो यस्या इति विग्रहो ज्ञाप्य । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेशः । १९ का उ ४।१। २० का उ ४।४ । २१ मेद्यति मेद्यते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्तः न तु भूतकालिकः ।

यक् प्रत्ययो भवति । ककारो बन्धुभावा-यत्नेनागुणत्वम् । सम्यक् स्नेहेन बध्नातीति सम्बन्धः । मित्रं युनक्तीति मित्रयुक् । सुष्ठु हरति चित्तं सुहृत्[1] । शोभनं हृदयं यस्य वा । स्नेहात् स्निग्धः ।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः ।

चत्वारः सहाये । सहकृतवान् सहकृत्वा । 'कृञः'[2] क्वनिप् प्रत्ययः । प्र० सि । 'घुटि'[3] वा '' दीर्घः । सह सम्यक्त्वात्करोतीति सहकारी । 'नाम्न्यजातौ'[4] णिनिस्ताच्छील्ये । सह धर्मं समवैते गच्छति सहायः । समवाये नियुक्तः सामवायिकः । इकण् ।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि । समाना नाभिर्यस्य सनाभिः । समानं गोत्रं यस्य सगोत्रः । बध्नाति स्नेहेन बन्धुः । 'पदृवति'[5] शसिहनिमनिजनिपीङ्भ्युष्कमिवन्धिभ्यश्च' एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति । सोदर्यः । समानोदर्यः, सधर्मः सोदरः, समानोदरः आत्मीयः, स्वजनः भ्राता, ज्ञातिः समानोदर्यः सपिण्डः ।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्–

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि । अवरं पश्चाज्जातः अवरजः । (अनु) पश्चाज्जातः अनुजः । "सप्तमी[6] पञ्चम्योर्व (जनेर्ड:) नेर्डः" । प्रथमनयोरतिशयेन युवा कनीयान् । "युवाऽल्पयो[7] कन्" । कनिष्ठः ।

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जातः अग्रजः । प्रकृष्टो वृद्धो ज्येष्ठः । "वृद्धस्य ज्य" वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति । पूर्वजः वरिष्ठः, वर्षीयान्, ज्यायान् ।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा ।

त्रयो भगिन्याम् । भ्रातृजाता भ्रातृजानी । स्वस (स्य) ति क्षिपति विपत्ति चित्तं स्वसा[10] । भ्रातृजा । अनु पश्चाज्जाता अनुजा । भगिनी । जामी च । जामिः । जामिश्च ।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्–

स्यात् भवेत् । भर्तुः स्वसा भगिनी । ननान्दा । 'टुनदि समृद्धौ' । नन्द् । "नप्तृ[11] एव ■ नञ् पूर्वः । न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा । 'नञि[12] च नन्देस्तु न दीर्घश्च' ननि उपपदे

---

१ सुष्ठु हरतीति सुहृदित्येव शब्दः सुहृच्छब्दे सम्भवति । मित्रवाचकशब्दः सुहृच्छब्दे तु शोभनं हृदयं यस्येत्येव । हृदयस्य हृदादेशः समासे । २ का सू ४।३।१९ । ३ घुटि चात्सम्बुद्धौ" ४ का सू २।२।१७ । का सू ४।३।७६। ५ का उ २।१। ६ का सू ४।३।९२। ७ वर्तमानकातन्त्रे नोपलभ्यम् । ८ वर्तमान कातन्त्रे नोपलभ्यम् । ९. नाम्नि भिन्नत्वेऽपि भ्रातृजानीशब्द उपलभ्य नान्येष्वमरादिषु किमपि व्याकरणं सूत्रम् । भ्रातुर्जातति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थे नसंगतः । तथापि भ्राता सह मातुर्जातति विग्रह्य बाहुलकात् जातिकमत्प्रत्ययं सम्पादितं प्रकल्प्य भ्रात्रात्मत्वाद्भगिनीति भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्थकारस्याभिप्रायात् कथञ्चित् समाधेयः । १० स्यत्यति क्षिपति चित्तं भ्रातृ स्वसेति विग्रहो बोध्यः । असु क्षेपणे दिवादी । सुपूर्वकात्तु सुप्रसेण न इति ऋन्प्रत्ययः । कातन्त्रोणादौ तु स्वसादयः इति 'स्वन प्राणने' इत्यस्य ऋन्प्रत्यये प्रकारस्य सकारे च "स्वतिष्ठतीति स्वसा" इत्याह । अत्र क्षिपतीति वर्णनं तु असु क्षेपणे इत्येव भाष्य एतदभिप्रेत इति ज्ञायते । ११ "नप्त एव वर्णनादिश्च नञुपूर्वात्मनो नोऽस्तीति" दुर्गवृत्तिः । का सू ३।५।१ । १२ का उ सू २।१९।

इति नन्द्योपांतोऽस्य न् प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति सातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्यायाम् । मातुलस्येयं भार्या मातुलानी । "इन्द्र"वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्य यवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ङीप्च" । अम्बैव अम्बिका । "अम्बादिभ्यो ह्रस्वः" क, ल इत्, प्रत्यया भवन्ति । प्रिया चासौ अम्बिका प्रियाम्बिका ।

वैर्यरातिरमित्रोऽरिर्द्विट् सपत्नो द्विषद्रिपुः ।

भ्रातृव्यो दुर्जनः शत्रुर्दुष्टो द्वेषी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विविधाम् ईं लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरः, वीरस्य कर्म वैरम्[1] । [वैरमस्यास्तीति वैरी ।] वैरिपुरमियर्ति गच्छति अरातिः[2] अरातिश्च । न मित्रम् अमित्रम् । अयमर्थस्तत्रापि "मित्रे मम" इति सारस्वतसूत्रम् । शत्रुत्वमियर्ति अरिः । द्वेष्टीति द्विट् । "सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्" । एककार्याभिनिवेशेन समानं पतति सपत्नः । द्वेष्टि द्विषन् । निष्ठुरं रपति रिपुः । "रमुतलकुपवसृपञ्चुरिपुरिषुपुलवाः" । एते डत्यकान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तप्रापणार्थं प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लक्षणेन यदप्राप्तम् इदं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । तथा क्षीरस्वामिमते "रेपयति रिपुः । रेपृ गतौ । भ्रातरं भवति भारयति भ्रातृव्यः । दुष्टजनः दुर्जनः । परमभट्टारकश्रीमद्धर्मकीर्तिकृतसुभाषितसम्बन्धे—

'प्रशस्या न नमस्याऽपि दुर्जनैर्या विधीयते ।
कण्टकाः पादलग्नोऽपि न सुखाय प्रजायते ॥

तथा च सूक्तिमुक्तावल्याम् —

'वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥'

अत्र ये केचिद् दुर्जनाः सन्ति तेषां मस्तकेऽस्यानिपातो भवतु । तथा च —

'दुज्जण सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसेँ वासरु तिमिरेँ जिमि मरगउ कच्चेण ॥'

शश्यति शीर्यते वा शत्रुः । दुष्यते निन्द्यते लोके दुष्टः । द्वेष्टि द्वेषी । द्वेषोऽस्यास्ति वा द्विषन् ।

---

१ पा. सू. ४।१।४९। अत्र सूत्रे यमेत्यधिकः पाठः । २. दामनामपुत्रादिभ्योऽण् गुणादित्वात्यञ् । ततो मत्वर्थे 'अत इनठनौ' इतीन् । ३ 'ऋ गतौ' । आङ्पूर्वकाद् ऋधातोर्बाहुलकाद् अतिप्रत्ययः । अथवा नञ् रा इति कर्मणि धञ् दानार्थं ददातीति नञ्पूर्वकात् 'रा (दाने)' धातोः क्विप् । ४ 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इति वचनम् । अन् त्वरे गर । ५ पा. सू. ४।१।७४। ६ का. उ. सू. १।६। ७ क्षीर मा. २।८।। ८ भ्रेषं संवरणे ... । ९ निर्णयसागरमुद्रणालयप्रकाशितकाव्यमालायाम् गुम्फितम् सुभाषितमुक्तावली ११ श्लो । १० ... ११ ... । एते डत्यप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । इति का. उ. दुर्ग. सू. ।।११। १२ द्वेषोऽस्यास्तीति ... । द्विषतस्तु द्वेषीत्येव । शत्रुम् ।

लसति स्वजनगुणानाप्लावयतीति खलः । न मैत्री हिनोति गच्छति न हितो वा [1]अहितः । अभियाति प्रतिपक्ष.. अमहन विपाधु परिपन्थी पर असुहृद् अमषी पर्यवस्थाता शात्रवः, प्रत्यनीक द्रुपणः दुह्द् दस्यु अभिमन्यी ।

दीधितिर्भानुरुस्रोंऽशुर्गभस्ति किरण कर ।
पादो रुचिर्मरीचिर्भास्तेजोऽर्चिर्गोद्युति प्रभा ॥४५॥

षोडश किरणे । दीधीङ् दीप्तौ दीधिति । [2]"दीधीङो दितिः" दीधीङो धातोर्दितिः प्रत्ययो भवति । भा दीप्तौ भाति भानु । [3] 'दाभाभ्यां नुः ।" एभ्यो नु प्रत्ययः स्यात् । वसति रश्मौ [4] उस्रः । पुंसि । अश्नुते व्यापत् व्याप्नोति अंशुः । कौ । उणादौ । अनष् । अनितीति अंशुः । अनेः [5] शु अनेर्धातो शुप्रत्ययो भवति । ["[6]भा दीप्तौ" भाति भानुः । 'दाभाभ्यां"] गां भुव वमस्ति [7]गभस्ति ।

पर्णोऽस्मो गवे प्राशो सिद् वणविपर्य्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु पणनाशः पृषोदरे ॥

कीर्य्यते किरणः । हलायुधे- किरति विक्षिपति तमांसि किरणः । "[8] कृभूभ्यां कन । कीर्यते करः । पद्यते पादः । [9] पदरुजविशस्पृशो घञ् । रोचते रुचिः । म्रियते तमोऽनेन मरीचिः । स्त्रीनी । उणादौ । म्रियते मरीचि । [10] मृकणिभ्यामीचिः" आभ्यामीचि प्रत्ययो भवति । भासन क्विपि भान्तो भास् । स्त्रीनो । पुंस्त्वेपीति शाश्वतः । भा । भाती । भासः । तेजस्तीति तेजस् । अर्च्चयतीति अर्चिस् । अर्च्यते पूज्यते अर्चिः । "अर्चि[11]शुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसि । गच्छति तमोऽस्मीन्ति गौ । स्त्रीनी । द्योतन द्युति । द्योतते (वा) द्युति । प्रभाति प्रभा । रोचि अभीशु मयोख रश्मि घृणि वृषि विभा धाम वसु वसु प्रभव उपद्युति घृष्णि घृणि मयूख विरोक रोकश्च ।

दीप्तिर्ज्योतिर्महो धाम रश्मिरूर्जो विभावसु ।

षट् तत्रपि । दीप्यते दीप्ति । द्योतन ज्योति । ज्योतिरादयः[12] । ज्योतिर्महीरादयः । महति महः[13] । अन्तम् । धीयते दृश्यते नत्वन् धामन् । रश्मि बोध । रशति मरनुन रश्मि । 'ऊर्ज बलप्राणनयो । ऊर्जयतीति ऊर्जः । कः । [विभा वसुर्यस्य च विभावसुः ।] (विभा । वसु ।)

शीतोष्णप्रायपूषाङ्कौ तदन्ताविन्दुभास्करौ ॥४६॥

तयोरन्तौ [15]तदन्तौ । इन्दुभास्करौ । इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करौ । कर्मभूतौ । शीतोष्ण

१ न मैत्री हिनोतिरमेनि मृते विग्रहो बोध्य । गत्यर्थभ्यादर्शरि न. । न हितमस्मादिति रामाश्रम । २ [illegible] उ सू ६।११। ३ का उ सू २।३। ४ 'वस् निवासे' वस् धातो 'स्फायि तञ्चि स्फाि उ- ' नेक रक्प्रत्यय सम्प्रसारणं च । ५ का उ सू ५।४८ । संस्थापनि विभावयति 'भ्रश विभाषने' उपत्यय पुनरस्यान्त्य च । ६ पुनरुक्तत्वातविहार्य । ७ वमति दीपयति । अत अर्त्तनदी-षषी । ठिन्प्रत्यय । पृषोदरादित्वात्तीच्छारो वर्णविकारवद्भावस्याकार । ८ ख्या सू २।२।१७३। 'पृषोदरादय इत्यत्र कारिकायस्य पठित' । ९ का उ सू ६।१३। १० का सू ७।५।१। ११ का उ सू ३।८१। १२ का उ सू ।८। १३ का उ सू २।८५। १४ महने मह । महते पूज्यते वेति रामाश्रम । १५ वसुनस्तु विभा इति वसु" इति च तत्रमा नेमा । तमुन्नी "विभावसु शस्तु सूर्याग्निवाची । तदुक्त पूर्वबद्दी विभावसु इति नाम वो ३।३।२२१। १६ स दीधितयादय शब्दा अत्र यथोक्तो नाम्नो इत्यर्थे न्यासो दीप्यः । सर्वोऽन्तादिति समासस्तु तावत्प्रमाणभ्यासमुक्त ।

(माघ) पूर्वाम्भौ । शीतोष्णौ (मासेषु) पूर्वाम्भौ मघौरिन्दुमाष्करौ (तौ) शीतोष्ण (माघ) पूर्वाम्भौ । शीतदीधिति । शीतदीधितिमान् । शीतभानु । शीतभानुमान् । शीतांशु । शीतांशुमान् । शीतगभस्तिः । शीतगभस्तिमान् । शीतकिरण । शीतकिरणवान् । शीतपाद । शीतपादवान् । शीतरुचि । शीतरुचिमान् । शीतमरीचि । शीतमरीचिमान् । शीतार्चि । शीतार्चिष्मान् । शीतभा । शीतभावान् । शीतगु । शीतगोमा[1] (मा) न् । शीतद्युति । शीतद्युतिमान् । शीतप्रभ । शीतप्रभावान् । शीतदीप्तिः । शीतदीप्तिमान् । शीतज्योति । शीतज्योतिष्मान् । शीतमहा । शीतमहस्वान् । शीतधामा । शीतधामवान् । शीतरश्मि । शीतरश्मिवान् । शीतोर्म । शीतोर्मवान् । शीतविभावसु । शीतविभावसुमान् । किरणशब्दानां (भोग्य) पूर्वे शीतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । उष्णदीधिति । उष्णदीधितिमान् । उष्णभानु । उष्णभानुमान् । उष्णोस्र । उष्णोस्रवान् । उष्णांशु । उष्णांशुमान् । उष्णगभस्ति । उष्णगभस्तिमान् । उष्णकिरण । उष्णकिरणवान् । उष्णपाद । उष्णपादवान् । उष्णरुचि । उष्णरुचिमान् । उष्णमरीचि । उष्णमरीचिमान् । उष्णभा । उष्णभावान् । उष्णतेजा । उष्णतेजस्वान् । उष्णार्चि । उष्णार्चिष्मान् । उष्णगु । उष्णगोमान् । उष्णद्युति । उष्णद्युतिमान् । उष्णप्रभ । उष्णप्रभावान् । उष्णदीप्ति । उष्णदीप्तिमान् । उष्णज्योति । उष्णज्योतिष्मान् । उष्णमहाः । उष्णमहस्वान् । उष्णधामा । उष्णधामवान् । उष्णरश्मि । उष्णरश्मिवान् । उष्णोर्म । उष्णोर्मवान् । उष्णविभावसु । उष्णविभावसुमान् ।

शशी विधुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः ।
कलाभृच्चन्द्रमाश्चन्द्रः कान्तिमानोषधीश्वरः ॥ ४७ ॥

शश चन्द्रे । शशोऽस्यास्तीति शशी । विदधात्यमृतं विधुः । "धौ धारणे[2]" । सुधा अमृतं सूयते सुधासूतिः । कुमुदानामिदं विकास (स) हेतुत्वात्कौमुदी (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः) । कुमुदानां प्रिय अभीष्टः कुमुदप्रियः । कलां बिभर्तीति कलाभृत् । "मा माने" चन्द्रं मातीति चन्द्रमाः[3] । 'चन्द्रे[4]' मातेः' चन्द्रे उपपदे असुनप्रत्ययः मस्य लोपो भवति । असुधातुप्रत्यये मारलोपः । भिन्नयोग स्वार्थ एव । चन्दतीति चन्द्रः । "स्फायि तञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्विन्दी-भ्यो रक्" । कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमान् । ओषधीनामीश्वरः ओषधीश्वरः । इन्दुः सोमः, राजा, रोहिणीवल्लभः, अब्जः मृगाङ्कः अभिनेत्रप्रसूतः । तथा चोक्तं महाकविनाः—[5]

आद्यं नेत्रोत्थमत्रेः सुतममृतनिधेः च हरेर्नर्मबन्धु
मित्रं पुष्पायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूषाविधानम् ।
वृत्तिक्षेत्रं सुराणां यदुकुलतिलकं बान्धवं कैरवाणां
सम्प्रीतिं वस्तनोतु स्थिरमनियतिश्चन्द्रमाः सर्वकालम् ॥"

---

१ "मातुपमासाम इत्यादि वत्वविधायक सूत्रम । मवर्णावर्णोपधात्मवर्णावर्णोपधाच्च मतोर्मकारस्य वकारं शास्ति । अत्र तथात्वाभावात् "शीतगोमान्' इति वक्तव्यम । यत्तूक्तं शीत गोशब्दस्य कर्मधारये ततो "गोरतद्धितलुकि' इति टचो दुर्वारत्वात् "शीतगवमान्" इति सुवचम् । सिद्धान्तस्तु भेदशस्यौ मनुविधः । तदुक्तं "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर । २ का उ द ५।२। कुरुत्सव । ३ चन्द्रं कर्पूरं माति तुलयति लाञ्छनेनेति मन्योऽपि विग्रहार्थ । चन्द्रमाह लार्थ मिमीते तुलयति लाञ्छनेनेति विग्रहान्तरमप्यूह्यम् । ४ का उ द ४।२२७। ५ का उ द २।१४। ६ भाष्य १।४७ सती ।

प्रालेयांशुः, श्वेतरोचिः, शशाङ्कः द्विजराज रजनिकर पीयूषरुचिः निशीथिनीनाथ जैवातृकः, मृगाङ्कः क्षपाकरः, शीतमयूखः मा[1] मत्स्यते अयममायेति वा। सुधामूर्तिः अमृतनिर्गमः अमृतजननीतम। वेरमाम्[2]।

उडूनि भानि तारर्क्षं नक्षत्रम्—

चत्वारो नक्षत्रे। अवति भमाम् उडु[3]। क्लीबे। यथा चामरसिंहे[4]—

"नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम्।"

भाति दीप्यते भम्। क्षीरस्वामिनि—[5]"भा विद्यतेऽस्य भम्।" तरत्यनया तारा[6]। तारयति वा। ऋच्छतीति हिनस्ति तम ऋक्षम्। नक्षति जे भाति न क्षमः क्षि (क्ष) णोति वा नक्षत्रम्। "अमि[8] नक्षिकृषिभ्योऽत्रः। तारकं क्लीबेऽपि। यथ शारदत—

"नक्षत्रे चाऽक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च।

तद्वच्च—

छिन्नैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकघनच्छायैः स्थितं तारकैः"

तत्पति

(नक्षत्र पर्यायेभ्य परं) पतिशब्दसंयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति। उडुपतिः। तारापतिः। ऋक्षपतिः। नक्षत्रपतिः। उडुराजः। उडुस्वामी। उडुनाथः। नक्षत्रेश्वरः। तारेन्द्रः।

निशा।

क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षिपा

दश रात्री। निशाति तनूकरोति चेष्टामिति निशा निशो वा। 'शाव'[9] इत्युपसर्गे। क्षणमवसरं ददातीति क्षणदा। रमन्ते यस्यामिति रजनिः। त्रियामीः। रजनी। रञ्जनाम्भसात् वा नक्षत्र दिवादीः। नेनेक्ति नक्तम्। दुष्टं दूषयति वाऽत्र दोषा। आदन्तोऽव्ययाऽन्व्ययः। श्यायन्ते गच्छन्ति यामिमत्र श्यामा। तथाऽनेकार्थे[11] (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

"श्यामा रात्रिस्तु पिटङ्गुयामा श्यामा स्त्री मुग्धयौवना।
श्यामा प्रियङ्गुराख्याता श्यामा स्यात् शुकसारिका॥"

क्षिप प्रेरणे। क्षिप्। अस्यां क्षिपा। [12]षाऽनुकम्पभिदादिभ्यस्त्वङ्। क्षिप्यन्ते त्यज्यन्ते जने निर्गम्यते वा। तमी। तमा आदन्तोऽप्यव्ययम। तमिस्रा। तमस्विनी। विभावरी। नक्तंमुखा। शर्वरी। त्रियामा। निशीथिनी। यामिनी। वसति। वासतेयी। रात्रिः।

1 लोपः पूर्वपदस्य च अणुत्पत्तये तद्वैव इति कात्यायनवार्तिकम् ।५।३।८३। वा सूत्रस्य पूर्वपदलोपविधायकमत्र प्रमाणं भाष्यम्। २ "वेवी" शब्दः मान्यभाषायाम्। क्षीरस्वामि-भाष्येऽपरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते। तापुरूषस्य पचादिराकृतिगणत्वात् "वेवी" इतिवद् बोध्यम्। वस्तुत स्सर्वं शब्दो दैशिक एव। ३ अवति प्रभां ददातीति कः। "वप रक्षणे" क्विप्। "उत्तरार्थे" स्तुक्। उच्यते इति हुः। उपदेशेऽनुम्बन्ध। ऊधासी क्वचेति कर्मधारय। नक्षत्राणां रक्षत्वार्थत्वात्ताराकारोहितनक्षत्रत्वाय उडुत्वमुपपन्नम्। एको हस्त्व इस्वपूरणस्य हस्व इति दीक्षितः। ४ अम की १।३।२१। ५. क्षीर मा १।३।२२। ६ भिदादित्वादङ्। अति परे गुणः। निपातनाद्दीर्घः। ७ ऋच्छति गच्छति "ऋच्छ गतौ" तुदादि। औणादिकः क्षत्रप्रत्ययः किन्। पतनत्वञ्च। ऋक्षमिति। ८ का उ सू १।५।९. "यथ शारवत इत्यारम्भ "स्थितं तारकै इत्यन्तः पाठः १।२।२२। क्षीरस्वामिभाष्यस्योऽत्र पठितः। १० का सू ४।५।८४। ११ ९६ श्लो श्लोका। १२ का सू ४।५।८२।

करः ॥४८॥

(निशापर्यायात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति। निशाकरः। क्षपाकरः रजनीकरः। नक्तञ्करः। दोषाकरः। श्यामाकरः। क्षपाकरः।

तरणिस्तपनो भानुर्ब्रध्नः पूषाऽर्यमा रविः।
तिग्मः पतङ्गो द्युमणिर्मार्तण्डोऽर्को ग्रहाधिपः ॥४९॥
इनः सूर्यस्तमोध्वान्ततिमिरारिर्विरोचनः।

तॄ प्लवनतरणयोः। तरत्यनेनेति तरणिः। "अर्त्तिसृधृधम्यम्यश्यवितृभ्योऽनिः"। तपति विशेषेण तपनः। भाति दीप्यते करैः भानुः। "दाभाभ्यां नुः" नुः प्रत्ययः। बन्ध बन्धने बध्नाति बन्धुरतीव ब्रध्नः। "बन्धेर्ब्रधि" । नक् प्रत्ययो भवति ब्रध्यादेशश्च। इकार उच्चारणार्थः। पुष पुष्टौ। पुष्णाति वर्षति तेजसा पूषा। पूषादयः—"पूषन्प्लीहन्मज्जन्यक्षन्मातरिश्वन्क्लेदन्स्नेहन् मूर्धन्पूषन्दोषन् एते कन्यन्ता निपात्यन्ते। इयर्तीति अर्यमा। रु गतौ"। रूयते स्तूयते रविः। इः "सर्वधातुभ्यः"। तीक्ष्णतीति तिग्मः। "युजिरुचितिजां कुश्च" मक्। पतति गच्छति पतङ्गः। "पतिभ्यामङ्गः"। गम्यमङ्गः प्रत्ययो भवति। दिवो मणिरिव द्युमणिः। मृताण्डस्यापत्यं मार्तण्डः। मृताण्डम्। आकाशमित्यर्थि अर्कः। उणादौ "अर्च पूजायाम्। अर्च्यते अर्कः"। "इष्मीकापाशल्य विष्वसाधाराभ्यः कः एभ्यः कः प्रत्ययो भवति। ग्रहाणामधिपः स्वामी ग्रहाधिपः। एतीति इनः। "इणविकषिभ्यो नक्"। सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् सूर्यः। "सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्तरि"। सूर्ये इति क्यबन्तपान्तो निपातः। तमश्च ध्वान्तं च तिमिरश्च तमोध्वान्ततिमिराः, तेषामरिः,—तमोऽरिः ध्वान्तारिः तिमिरारिः। विरोचते इत्येवंशीलो विरोचनः। "वचादेश्च ल्युट्नाद्यं" यथा दर्शनाद् भञ्जनादेपुं भवति। आदित्यः सविता सहस्रकिरणः प्रद्योतनः भास्करः, तिग्मांशुः दिनमणिः, भास्वान् विवस्वान् हरिः विकर्तनः भगः, गोनक्षिः दिनकरः सूरः सूर्यः, अंशुमाली मिहिरः तिमिर रिपुः अंशुमान् अंशु हरिदश्वः खद्योत प्रभाकरः, भानुमान्, हंस खगः, मित्रः, चित्रभानुः सप्तसप्तिः कर्मसाक्षी जगच्चक्षुः, द्वादशात्मा त्रयीतनुः।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः—

दय छेदने। 'दोऽवखण्डने' द्यति खण्डयति अन्धकारमिति दिनम्। दीनात[12] इ (दधेरि) द्य[13] पदे नेन प्रत्ययो नकारस्यैव। दर्शिर्ती [दोन् दो] द्यतेऽत्र; आपन्तमव्ययम् दिवा। चरन्ते क्लीबम्। दिनं दिवम्। न जहाति कालं(रवि)महः। 'नमि[13] जहातेः" इति क्विप् (नमिः)। दीव्यतीति दिवसः[14]। दिवसम्। वेदतमारतदिवसाधनस्तथा एतेऽप्यप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। वासयत्यत्र वासरः[15]। वासोऽपि। उभयम्। दीविः कतिभातिभिवाभिभ्योऽरः एभ्योऽरः प्रत्ययो भवति। पुः। वसः।

१ का उ सू २।४१। २. का उ सू २।७। ३ का उ सू २।५२। दुर्गवृत्तिम्। ४ का उ सू ५।५। ५. का उ सू ३।१४। ६ का उ सू १।५७। ७ का उ सू ५।२२। ८. का उ सू २।५७। ९. का उ सू २।५१। १० का सू ४।३।१। ११ का सू ४।४।११। १२. का उ सू ६।१७। १३ का उ.सू २।७। १४ दीव्यन्ति दीव्यन्ति प्राणिनो ऽत्र दिवस इत्यपि। १५. का उ.सू ३।११। १६ "वास उपसेवायाम् वासयति सुर्वांसोवं प्राणिनं वा वासरः। विभ्रे घञ्" इति परमधिकम्। १७ नैतत्सूत्रम् का उणादौ लभ्यम्। तत्र वसाम्यः सरन् ३।६२। इति सूत्रम्। वसतीति वासर वासानां सरन प्रत्यय इत्युक्तम्। तत्रैव चतुर्थपादे ११ तमसूत्रमपि सूत्रम् "मपविपरिपावजिम्य सरः इति चाभिधातो सरप्रत्ययश्च। वासयतीति वासरः। कौमुदीस्थपृणादिसूत्रम् 'वसिवपियजिराजि व्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ्' ४।१२४। इति वाचितानीत्यन्यत्र।

तत्करश्च सः ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, भास्करः दिवसकरः वासरकरः इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायश्च बन्धु —

चक्रवाकस्य पद्मस्य च चक्रवाकाब्जे तयोश्चक्रवाकाब्जयोः (परतः) बन्धु शब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धुः । अब्जबन्धुः । पद्मबन्धुः । कमलबन्धुः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां (परतः) विप्रियशब्दे प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रियः । कुमुदविकासः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनकः । यमजनकः । [1]कानीनजनकः । सविता । मतः कथितः ।

वाहोऽश्वस्तुरगो वाजी हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।
सप्तिरर्वा हरी रथ्यः—

पञ्चदशाश्वे । वाहशब्दे पञ्चतेऽन्यार्थेष्वाह[2] । तथाऽनेकार्थे[3] (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

"वाहो युग्यं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।
वाहो मानविशेषश्च वाहो वायुरिति स्मृतः ॥"

'अशू व्याप्तौ' ॥ अश् । अश्नुते व्याप्नोति वेगेनाभीष्टस्थानमित्यश्वः । अथवा 'अश भोजने' अश्नाति भक्षयति मुद्गादीनित्यश्वः । [4]"अशिलटिकणिविषिभ्यः क्वन्" । वमाक् । "भौरस्तोऽश्व[5] कृति" मेद् । "उरो (रसा) गच्छतीति उरगः । 'डोऽ[6]न्यत्रापि' । पूर्वमस्यास्तां वाजा अमृतमिति श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य अश्वोस्येवेगोऽस्ति वा वाजी । इत्यश्वोऽपि, वाजि । तथा हैमनाममालायाम्[7]—

"वाजं वाजस्तु पक्षेऽपि मुनौ निस्वनवेगयोः ।"

हिनोति गच्छति वर्धते (वा) अनेन हयः । धुरि वहने साधुर्धुर्यः[8] । "[9]मधुरगभारेव" । तुरं (वेग) गच्छति तु (तो) तोर्ति त्वरते वा तुरङ्गमः । 'गमश्च'[10] नाम्न्युपपदे गमेश्च संज्ञायां खच् भवति 'खच्चाहेः[11] चा डः' । उपसर्पनार्थं गच्छतीति सप्तिः । [12]"सपेरित्यतिकृता" सपेर्धातोस्ति वति तन् एते प्रत्यया भवन्ति । अर्वति गच्छति अनेन मार्गम्, [13]अर्वन् । हरत्यनेन हरिः । रथे साधु रथ्यः[14] । गन्धर्वः, वार्वणः वसु घोटकः अर्वनिः[16] वीतिः पीतिः ।

1 कनीनः कर्णः । कन्याऽवस्थायां कुन्त्या कर्णोत्पन्नः इति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया । 2, 11 रसो रसोका । 3 का उ सू २।१।४ का सू ७।१।८ । 5 भ्राम्ती च पाठः । उचितस्तु तुरगः वेगेन गच्छतीति तुरगः । 6 का सू ४।३।४७ । 7 अने स २।७८ । 8 धुरं वहतीति धुर्यः । 'धुरो यड्ढकौ' इत्यन्वयः । 9 का सू २।६।११ । 10 तुरपूर्वकाद्गमेः 'गमश्च' इति खः तुरङ्गमः । तोतोर्ति त्वरते वेति विग्रहे तस्यविहितप्रकारोऽन्यथा कल्पनीयः । 11 का सू ४।३।४५ । 12 का सू १।८।२४ । 13 का उ सू ५।१८ । 14 'अर्व गतौ' धातुरकात्कनिन् । 15 'रथं वहतीति युग्यः । तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इति यत् । 16 अर्वनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाणं मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्वनिशब्दार्थोऽयम्—"अर्दनी चार्दनि र्पप क्षिप स्तु प्रार्थनाऽर्दना" अभ्र को ११९।२१ । अर्वतीशब्दोऽश्विनीत्यर्थेऽपरस्तु सर्वसम्मतः । "वीति पीति शब्दयोरश्वार्थे प्रमाणमन्वस्ताद् 'वीतिः वासिर्दविकावा वातमश्वार्थे इत्यपि' अभ्र को १।५।१९३ । 'पीति पाने उपूर्वा तु वहपाने हये पुमान्' विश्व ।

सप्ताश्वो मयूखवान् ॥ ५२ ॥

सप्तशब्दस्य (स्यात्) पूर्वं यदि सप्तादि (सशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति। सप्तवाह । सप्ताश्व । सप्ततुरगः । सप्तवाजी । सप्तहयः । सप्ततुरंगः । सप्ततुरङ्गम । सप्तसप्ति । सप्तार्वा । सप्तहरिः । सप्तरथ्यः ।

खं विहायो वियत् व्योम गगनाकाशमम्बरम् ।
द्यौर्नभोऽभ्रोऽन्तरीक्षं च–

एकादश गगने। खनति शून्यत्वेन खन्यते वा 'खम्'। विजहाति सर्वं विहायाः[1]। अथवा विहायसा पक्षिणां मार्गो वियत् गच्छतीति वियत्। (अथवा वीनां पक्षिणां मार्गं यच्छति वियत्)। अमरेन्द्रभाष्ये— 'वियच्छति'[2] विरमति वियत्। वायुना वीयते (व्यवति व्याप्यते वा) व्योमन्। 'शिवमिति'[3] मनिन्सरि त्वराप्युपधाया' एवामुपधाया वकारस्य ऊठ् भवति। सर्वधातुभ्यो मन् (इति विपूर्वकाद्वेञः)। गम्यते सर्वमनेन गगनम्[4]। क्लीबे वा। गच्छत्यनेन गगनं वा। आकाशन्ते सूर्यादयोऽत्राकाशम्। न काशते वा काशते दीर्घं। अम्बते शब्दायते अम्बरम्। दीव्यन्ति पक्षिणोऽत्र द्यौः। द्विगाम्। नमति व्याप्नोति सर्वमात्मना छान्दसं नभः। नभम् इत्यदन्तम् नभस च। न भ्राजतेऽभ्रम्। अन्तः ऋक्षाण्यत्र अन्तरीक्षम्। पृषोदरादित्वम्। द्यावापृथिव्योरन्तरीक्ष्यते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च। मरुद्वर्त्मन्। तारापथः। पुष्करम्। विष्णुपदम्। त्रिदिवम्। नाकम्। अनन्तम्। सुरवर्त्म। महाब[7] (बि) लम्। वैहायसम्।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

मेघशब्दाग्रे वायुशब्दाग्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति। मेघपथः। मेघमार्गः। घनपथः। घनमार्गः। पर्जन्यपथः। पर्जन्यमार्गः। मिहिरपथः। मिहिरमार्गः। नभ्राट्पथः। नभ्राण्मार्गः। तडित्पतिपथः। तडित्पतिमार्गः। सौदामिनीपतिपथः। सौदामिनीपतिमार्गः। वायुपथः। वायुमार्गः। वातपथः। वातमार्गः। अनिलपथः। अनिलमार्गः। मरुत्पथः। मरुन्मार्गः। समीरणपथः। समीरणमार्गः। गन्धवाहपथः। गन्धवाहमार्गः। श्वसनपथः। श्वसनमार्गः। सदागतिपथः। सदागतिमार्गः।

खचरः खेचर–

खे आकाशे चरतीति खचरः। आकाशशब्दे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति। खचरः। विहायश्चरः। वियच्चरः। व्योमचरः। नभश्चरः। गगनचरः। अम्बरचरः। आकाशचरः। अन्तरिक्षचरः। मेघपथचरः। मेघमार्गचरः। वायुपथचरः। वायुमार्गचरः। घनपथचरः। घनमार्गचरः। घनाघनपथचरः। घनाघनमार्गचरः। जीमूतपथचरः। जीमूतमार्गचरः। अभ्रपथचरः। अभ्रमार्गचरः। बलाहकपथचरः। बलाहकमार्गचरः। पर्जन्यपथचरः। पर्जन्यमार्गचरः। इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि।

खग,

खे गगने गच्छतीति खगः। गगनाग्रे 'ग' शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति। खगः। विहायोगः। वियद्गः। व्योमगः। नभोगः। गगनगः। द्योगः। आकाशगः। अन्तरिक्षगः।

---

१ "खनु अवदारणे" डप्रत्ययः। "खर्व गतौ" खर्वत्यस्मिन्निति वा विग्रहः। अत्रापि डः। २ उपसर्गे "ओहाक् त्यागे" धातोः "वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि" ४।२२१ इत्यसुन् णिच्च। णिच्चात् युक्। विशेषेण हायमति गच्छति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम्। "यम गतौ" क्विप्। ३ क्षीर भा १।२।१। ४ का सू ४।१।५७। ५ का उ सू ४।१८। ६ "गमेर्गश्च" इति युच् गमधातोः। ७ महाबिलशब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोषप्रक्षिप्तमाहात्म्यम्—"तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाध्वा च महाबिलम्" १।२।१। क्षेपक।

मेघपथगः । मेघमार्गगः । इत्यादीनि नामानि ।

पक्षी पत्री पतत्र्यपि ।
शकुन्तिः शकुनिर्विश्च पतङ्गो विष्किरोऽन्यथा ॥५४॥

सप्त पतङ्गे । पक्षाः सन्त्यस्य पक्षी । पत्राणि सन्त्यस्य पत्री । नाम्ना । पततीति पत्रि । त्रिप्रत्यये इदन्तः । पतत्राणि सन्त्यस्य पतत्री । नाम्ना । पततीति पते पतत्रोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रि । इत्यनुच भाष्यकारेण बालखिल्येन—पक्षिशब्दः पक्षिन् नकारान्तः पक्षिरिकारान्तश्च व्याख्यातः । अमरसिंह[1] नाममालायाम्—

"पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजाः ।
नगौकोवाजिविकिरविविष्किरपतत्रयः ॥"

इकारान्तः पक्षिशब्दः पठितोऽस्ति । भाष्यकर्त्रा क्षीरस्वामिना पतत्रिरिकारान्तो निषिद्धः । 'पतत्रिभिरिति' भ्रान्त्या पतत्रि शब्दं कश्चिदिच्छन्ति[2] मन्यते । एवं कथितमस्ति श्रीमदमरकीर्तिना द्वयोर्वचन प्रमाणम् । शब्दानां वैचित्र्यं वर्तते । शक्नोति गन्तुं शक्नोतीति शकुन्तः । शकुन्तिः । एव शकुनिः । एव शकुनी । शकुन्तः । शकुनः । द्वौ अदन्तौ । वयतीति विः । "वेञो डिः"[3] । पतेन वेगेन गच्छतीति पतङ्गः[4] । विकिरति पत्राणि विष्किरः ।

"वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

षुडागमः । विष्किरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांसं पलं पेशी च—

पञ्च मांसे । गम्यते बध्यते जाङ्गलं जङ्गलं च । पिंशत्यवयवान् पृषदादित्वात् पिशितम् । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति मांसम् । "मृगुदाधिदृशिमनिभ्यस्सन्"[7] इति स । पल्यते गत्यते रक्षते (पाल्यते) देहं पलम् । पिंशति पिशयते (पिंशति) शरीरम् पेशी । आमिषम् । क्रव्यम् । तरसम् ।

तत्प्रियः ।

तस्य मांसस्य प्रियः । आमिषशब्दानि प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । जाङ्गलप्रियः । पिशितप्रियः । मांसप्रियः । पलप्रियः । पेशीप्रियः ।

यातुधानस्तथा रक्षो—

द्वौ यातुधाने । यातूनि यातना धीयन्तेऽस्मिन् यातुधानः । रक्षतीति रक्षः[8] । राक्षसः । कौणपः । क्रव्यादः । नैरृतः । नैकषेयः । नैकषेयश्च । विपुलोऽपि (कर्बुरः । असुरः) । कीनाशी नानार्थे ।

राज्यादिचर इष्यते ॥ ५५ ॥

---

१ अम को २।५।१४। २ क्षीर भा २।५।१४। ३ का उ सू ४।१। यमाभ्यस्तु यातीति विः । "वातेर्डिच्" इत्यत्र । ४ पतेन वेगेन गच्छतीति विग्रहे तत्रानुच कल्पनीयम् । तत्राप्यत्र-गुणवत्स्याद् । पत्तरपद्धपते इति पतङ्गः । "गृणातिम्यामङ्गः" का उ सू ५।२२। इत्यङ्गप्रत्ययस्तु युकः । 'गुपतिम्यामङ्ग इत्यङ्गप्रत्यय । ५. "पृषोदरादय" २।१।१७२। या कारिका । ६ "पिश अवयवे" पिंशति पिंशते स्म वा पिशितम् । "पिशो किश्च" उ सू ३।९१। इतीतन् । अथवा क्त । इति रामा श्रम । ७. का उ सू ४।९३। ८ रक्षन्त्यस्मादिति रक्ष । "सर्वधातुभ्योऽसुन्" । 'भीमादयोऽपादाने' इत्यत्र ।

रात्रिशब्दात्परे चरशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । रात्रिचरः । निशाचरः । क्षपाचरः । रजनीचरः । नक्तञ्चरः । दोषाचरः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

आरभ्यते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्-

अदितिशब्दात्परे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति । अदितिसुतः । अदितितनयः । अदितिपोतः । अदितिदारकः । अदितिनन्दनः । अदितिगर्भकः । अदितिस्तनन्धयः । अदितिसुतान्तरायः ।

तडिद्धन्वा सेन्द्रो देव सुरोऽमरः ।

पञ्च देवे । सह इन्द्रेण वर्तते इति सेन्द्रः । "दिवु क्री"—। दिव् । दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्गेऽप्सरोभिः सह विलसन्ति देवाः । यथा लिखम् । अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे देवाः । सुञ् दाने सुरः । तथा सुरन्ति सुराः । सुर ऐश्वर्ये सुरा एषामस्तीति वा । "अर्शआदिभ्योऽच्"। अतोऽस्मिना सुर इति पीता । न म्रियते अमरः । आदित्याः । त्रिदशाः । सुमनसः । स्वर्गौकसः । देवताः । गीर्वाणाः । अमराः । मरुतः । वृन्दारकाः । निर्जराः । अस्वप्नाः । विबुधाः । त्रिदिवसदः । देवाश्च सुपर्वाणः । अमृतान्धसः । अनिमिषाः । दैवतम् ।

स्वर्नाः स्वर्गोऽथ नाकश्च,

चत्वारः स्वर्गे । सुप्तिङो यत्र स्वरश्च शब्दः कारोऽयम् अव्ययम् । स्वर् । "दिवु क्रीडादिषु" । दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्तः इति द्यौः । "दिवेर्डिवि" प्रत्ययो भवति । अतो सुष्ठु अर्यते स्वर्गः । "स्व[3] गम्यो गः" गम्यस्वः । नास्त्यकं दुःखमत्र नाकः । उभयम् ।

तद्वासस्त्रिदशो मत ॥ ५६ ॥

तस्य स्वर्गस्य वासः, तद्[4]वासः—स्वर्गवासः । द्योवासः, स्वर्गवासः इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति ।

तत्पति

तस्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पतिः तत्पतिः । देवपतिः देवपतिः स्वर्गवासपतिः स्वर्गपतिः, नाकपतिः, नाकेन्द्र, इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य ज्ञेयानि ।

शक्र इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतु ।
प्राचीनबर्हि सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥
अद्रिर्भेत्तुस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि ।
वृत्रहा च सहस्राक्षो गीर्वाणेश पुरन्दर ॥ ५८ ॥
बिडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहन ।
मरुत्वश्च मरुत्वाँश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५९ ॥
शतमन्युस्तुराषाट् च पुरुहूतश्च कौशिकः ।
संक्रन्दनोऽथ मघवान् पुलोमारिर्मरुत्सखः ॥ ६० ॥

अष्टाविंशतिरिन्द्रे । शक्नोतीति शक्रः । "[5]स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्दु-

---

१ "अर्शआदेर" जै व्या ४।१।१५ । २. का उ सू. ११५१। ३ का उ सू. ५।६ । ४ तस्मिन् स्वर्गे वसतीति तद्वासः । आत्मत्वम् । त्सस्पर्शामावात् परम वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनमानि भवन्तीत्यर्थः । ५ का उ सू. २।१४।

न्द्रीनिन्द्रो रन् । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवति इन्द्रः । रन् । शुन आदित्य सीरो वायुस्तयोरपत्यमन्या सुननेशादृत्वा दीर्घे शुनासीरः । तालव्यादृग्रम् । शोभनं नासीरं कटकं वा यस्य स सुनासीरः । द्वौ दन्त्यौ । शु इत्यर्थं तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नासीरा अग्रेसरा यस्य शुनासीरः । शु पूजायाम् श्वशुरवत्[1] । शुनाशीरयोरपत्यमित्येके । शतं क्रतवो यज्ञा यस्य शतक्रतुः । प्राचीना प्राचीनमुखा बर्हिषी दर्भा यस्य स । सुष्ठु भाषते मान्ताः सुत्रामा । वज्रं विद्यते यस्य स वज्री । आखण्डयति भिनत्त्यरीनाखण्डलः । हिनवे शचीकटाक्षेर्हरिः ।

"शक्रुत्वरस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि"—

वलस्य शत्रुर्गोत्रशत्रुः पाकशत्रुर्नमुचिशत्रुः इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । वृत्रं दानवं घ्नं वा हतवान् वृत्रहा । क्विप् । ("क्विप्)ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु" क्विप् सहस्रमक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः । गीर्वाणानां देवाना मीशः (गीर्वाणेशः) । विद्युत्प्रकाशा ओजो यस्य । पृषोदरादित्वात् इति । बिड भेदने वा । बिड मस्कओजो यस्य वा (बिडौजा[3])। अप्सरसो नायोऽप्सरोनाथः । वस्त्वपतं वासवः । हरिर्वाहन[4] यस्य हरिवाहनः । पुष्पचये छिद्यते चयते यस्य । तान्त्यम् । मरुतो देवाः सन्त्यस्य मरुत्वान्[5] । मर्पति, नान्त्यम्, तथा । ऐरावणानामधिपः (ऐरावणाधिपः) । शत मन्यवः क्रतवोऽस्य शतमन्युः । "पर मर्षणे" । । वद् । "वातादेः[6] पः वः" । वदते कश्चित्वमपर इत्युक्ते "वातोरस्य" ऐसो" रम् । मत्वोप दीर्घः । धातिं वात । तुरपूर्वक । तुरं त्वरितं साहयत्यभिभवत्यरीनिति तुराषाट् । "सहश्छन्दसि[7] विप् । "कारितस्य[8] कारितलोप । येलोपः[9] । "नहि[10] वृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" क्विबन्तेषु प्राक्पदस्यान्त्यो दीर्घः । तुरा बालम् । तुरावाह निष्पन्नः । तिः । "स्कानाम्नाम[11] हिलोपः । "स्यप[12] स्कान्देवादीनां ढ हस्य ढ । "ढो ढाकः पः[13] ढस्य षत्वम् । रपरात्परपदेऽपि ढस्य षत्वम् । स्वमते यपिरन्यत्वात् । अथवा तुर वेग सहते तुराषाट् । "सह[14] "स्वरसि" विप् पूर्ववत् । पुरु प्रभूतं हुत यज्ञे यज्ञेष्वा (वे वा) हानं यस्य पुरुहूतः । वातमात्रोऽसिता कुशैर्यस्याश्रितत्वात् (कौशिक) । तथा पुराणम्[15]—

"वातमात्रोऽय भगवानविशत् स कुशैर्वृतः ।
तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥

कुशैर्वृते भवति वा । अरिणां तहन्त्यवति सङ्क्रन्दनः । मह्यन्ते पूज्यन्ते नान्तो मघवा । "मह्ये[16] "नेंलुगधन्तश्च" मह्ये कनिः प्रत्ययो भवति नलुगधन्तश्च । पुलोमस्या (न्नो) रि पुलोमारिः । मरुतां पवनानां सखा मित्र (सं) मरुत्सखा । दुश्च्यवन । वृषारिः । बलसूदनः । वृद्धश्रवा । जिष्णु । वज्रधर । वास्तोष्पतिः । गोपतिः । पर्जन्यः । हरिहय । पूर्वदिक्पतिः । स्वराट् । गोत्रभिद् । ऋभुक्षा । हरिमान् । पाकशासनः । दिवस्पतिः ।

---

१ शु पूजायाम् अश्नुते व्याप्नोति 'श्वशुर' इति व्युत्पत्त्या "श्वशुर" शब्दो निष्पन्नः । तद्वत् शुनाशीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थे प्रयोगः । २ का सू ४।३।८३। ३ वेवेष्टि व्याप्नोति विट् । "विश् व्याप्तौ" क्विप् । विट् व्यापकमोजो यस्य स विडौजाः । पृषोदरादित्वाद्धकारस्यौकारः । इत्यपि पम् । ४ स्वर्लोकेऽशानरीमाभि सुवर्णाभानि यस्य सः । हरि स भगतोऽस्य पीतवर्णोऽयमनर्थः । इति हरिहरीभोजप्रकारोऽस्य हरि । ५ मरुतो देवाः शासनत्वेन सन्त्यस्येति भावात् । ६ का सू १।८।२४। ७ का सू १।२।१ । ८ का सू ४।३।१ । ९ का सू ३।६।४४। १० वैरपूरुस्य पा सू ६।१।६७। ११ पा सू १।३।११६। १२ का सू २।१।८१। १३ का सू २।३।४३। १४ पा सू ८।३।५६। १५ का सू ४।३।६ । १६ श्लोकोऽयम् अभि चि २८७। टीकायामप्येवमेवोपलभ्यते । १७ का उ सू १।४।

काष्ठा ककुम् दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरित् ।

काशृ दीप्तौ। काशन्ते यस्यां (नक्षत्रादीनि) काष्ठा[1] । क स्कुम्नाति विस्तारयति ककुप्[2] । शान्तम् । दिशत्यवकाशं दिक् । "[3]ऋत्विग्दधृक् स्रग्दिगुष्णिहश्च" इति साधु । आस्तृते आशा । दक्षः प्रजापतिः तस्य कन्या दक्षकन्या । हरत्यनया हरित्[4] ।

तत्पर्यायपरं योज्यं प्राज्ञैः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः परं योज्यं प्राज्ञैः निपुणैः पालगजाम्बरम् । काष्ठापालः । ककुप्पालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । हरित्पालः । पालप्रयोगे दिग्पतिनामानि भवन्ति । काष्ठागजः । ककुब्गजः । दिग्गजः । आशागजः । दक्षकन्यागजः । हरिद्गजः । अम्बरशब्दप्रयोगे दिगम्बर नामानि भवन्ति । काष्ठाऽम्बरः । ककुबम्बरः । दिगम्बरः । आशाऽम्बरः । दक्षकन्याम्बरः । हरिदम्बरः । तथा च—

"गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥"

एवंविधा मुनयो अस्माकं शरणं भवन्तु जन्मनि जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।
समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥
नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।
प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वायोः । पवते जगत् पवित्रीकरोति पवनः । युच् । "पूङ् पवने । पू । पवते पवमानः । "[5]पूङ्यजोः शानन्" शानमानः । अनि[6] अनिलः[7] नाम्यन्त्यगुणः । "वा गतौ । "[8]आनी ऽन्त मानें" मोऽन्त । वातीति वायुः । "[9]कृवापाजि"—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्खलितं वा वातः । वाति अस्खलितं याति वातः । "[10]मृगृणा...मिलिभ्यस्तः" । अनेन जगत् अनिति प्राणिति न निलति वा अनिलः । "निल गहने" । मुवन्त्यनो म्रियन्ते स्पर्शेनास्य मरुत् । तान्तम् । "[11]मृग्रोरुतिः" उतिप्रत्ययः । सम्यगीरयति समीरणः । गन्धं वहति गन्धवहः । गन्धवाहः । गन्धवाही । श्वसन्त्यनेन श्वसनः । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स सदागतिः । नभ आकाशमस्यास्तीति नभस्वान् । मातरि रेतः श्वयति वर्धते नाम्नो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवति[12] मातरिश्वा । चरचरं याति परे

१ "काशृ दीप्तौ" "हनिकुषि" इत्यादि २।२। पा उ सूत्रेण क्थन् । २ कं वात स्कुम्नाति विस्तारयति । क्विप् । पृषोदरादित्वात्सलोपः । केनाविशेन वातेन वा कुत्सितानि भानि नक्षत्राणि यस्यामिति "ककुभा इत्याकारो-पीति केचित् । ३ का सू ४।३।७१। ४ हरन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग् शानेनैव कश्चित् कुत्रचित् कुत्रचिदायाति । "दुहरकिरुशिभ्य इतिः इतीति । ५. का०सू ४।४।८। ६ अभिकरणा कर्त्तरि इति पूर्वे सूत्रम् । का सू १।२।१२। इत्यभिकरणः । ७ "अनि च विकरणे का सू १।५।१। ८ का सू १।२।१४। ९. का सू ४।४।७। १ का उ सू १।१। ११ का उ सू ४।२७। १२ का उ सू १।३ । १३ मातरि जनन्यां रेतः प्रसिक्तं यथा वर्धते, तथाऽन्यत्रेपि वर्धमानो वायुः मातरिश्वा इत्याशयः । क्षीरस्वामी तु—'मातरि खे श्वयति इत्याह । रामाश्रमस्तु—"मातरि जनन्यां श्वयति वर्धते गर्भस्थशिशुपालनात्" इत्याह । आपस्तम्बरत्नाकरे त्रिदेवेभ्योऽन्यमातृकुक्षिमथितं तेनैव कुलिशघात तद्गर्भस्यैकोनपञ्चाशत्खण्डीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्समरुज्जन्मप्रसङ्गम् । "टु ओश्वि गतिवृद्धी । श्वयतेः 'श्वन्नुक्षन्' इति कनिन्प्रत्ययो निपातः सप्तम्या अलुक् च ।

[१]रणुः । "कामुसुरण्यलर्षोद्य. केमप्यास्य शम्प्ना ह्रस्वस्वान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये[२]—

"असूयया ऽगम्य निशाम्य यां पुरो
विलज्जया ऽम्भःपरिणामिनीक्षणाम् ।
गता इवाभान्ति कुशाग्रिपेशला-
श्चरण्युलोकाः परिखा ऽम्बुवीचयः ॥"

दु इति सौत्रो धातुर्गतौ । सौत्रा धातवोऽपि भ्वादौ पठ्यन्ते । दवतीति दवथः । [३]दुवद्-व्यम्बस्ममस्सत्यविन्दत्सगुणपतपदाम् एभ्यो दुर्भवति । वर्या विश्वाः प्रभनक्ति प्रभञ्जनः । जगत्प्राणः । पृषदश्वः । स्पर्शनः । समीरः । हरिः । महाबलः । आशुगः ।

अस्य पर्यायपुत्री भीमाञ्जनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परम पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । पवनपुत्र । पवनतनय । पवमानतनय । वायुपुत्र । वायुतनयः । वातपुत्र । वाततनय । अनिलपुत्रः । अनिलतनयः । समीरणपुत्र । समीरणतनय । गन्धवाहपुत्र । गन्धवाहतनय । श्वसनपुत्र । श्वसनतनय । सदागतिपुत्र । सदागतितनय । नभस्वत्पुत्र । नभस्वत्तनय । मातरिश्वपुत्र । मातरिश्वतनय । चरण्युपुत्र । चरण्युतनय । पवनपुत्र । पवनतनय । मरुत्पुत्र । मरुत्तनय । प्रभञ्जनपुत्र । प्रभञ्जनतनय । भीमस्य हनुमतश्च नामानि ज्ञातव्यानि ।

तत्सखाऽग्निः,

तस्य वायोः सखा तत्सखः । वायुशब्दात्परे सखशब्दे प्रयुज्यमाने अग्निनामानि भवन्ति । पवनसख । वायुसख । अनिलसख । वातसख । मरुत्सख । गन्धवाहसख । समीरणसख । श्वसनसख । सदागतिसख । नभस्वत्सख । मातरिश्वसख । चरण्युसख । पवनसख । मरुत्सख । प्रभञ्जनसख । पवनेशः । पवमानेशः । इत्यादीनि अग्नेर्नामानि ज्ञातव्यानि ।

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुक्षणिः ।
हिरण्यरेताः सप्तार्चिर्जातवेदास्तनूनपात् ॥ ६४ ॥
स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।
वैश्वानरः कृशानुश्च रोहिताश्वो विभावसुः ॥ ६५ ॥
वृषाकपिः समागर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

एकविंशतिरग्नेः । वक वग कुटिलायां गतौ । वगति वायुवशादूर्ध्वं गच्छतीत्यग्निः । शिखाऽस्त्यस्य शिखी । उह्यते वह्निः[४] । "वहिश्रुषियुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्" एभ्यो धातुभ्यो नि प्रत्ययो भवति । पुनाति पावकः । आशु शोषयति रसान् [५]आशुशुक्षणिः । "आशौ शुषे सनिक्" । "हिर

१ चरण्युशब्दोऽयम्, न तु चरेण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एवमेवामुना दिशा अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (४।४८१) उपलभ्यते नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकोऽत्र प्रयोगः । 'चरस् चरप् गतौ' कण्ड्वादौ चरण् धातुर्यक प्रत्ययान्तः । ततः 'क्याच्छन्दसि' पा सू. ३।२।१७० । इति उ प्रत्ययः । शुन्ध्यु तरण्यु, भुरण्यु सरण्यु च इत्यादयस्य सिद्धिः । विशेषस्तु "क्याच्छन्दसि" इत्यस्य तत्त्वबोधिन्यां द्रष्टव्यः । चरण्यतीति चरण्युः । २. स. १ श्लो. १९ । ३ का सू. ४।४।१२ । ४ वहति हव्यं वह्निरिति व्युत्पत्तिरप्यस्य । ५ का उ. सू. ३।५ । ६ आशोष्युपपदात् शुषेः आङ्पूर्वकाच्छुषेः उपपदात् "आशि शुषेः सनश्छन्दसि" पा उ सू. २।११९ । अग्निः । आशु शीघ्रम्, आशु शीघ्रं वा शुष्कं करोतीति वा । 'सर्वधातुभ्य इन्' इत्यस्य च । ७. का उ सू. ५।१५ ।

रोपे। अश्वम् तस्याधिष्ठायोऽश्वम्। आतश्चोपे। अश्वशाउपपदे शुषेः वनिक् प्रत्ययो भवति। हिरण्यं रेतोऽस्य स हिरण्यरेताः। यत् स्मृतिः —"अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्"। सप्तार्चिषो यस्य स सप्तार्चिः। भवन्ति "हिरण्या, कनका रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा चान्या। अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त सप्तार्चिषो जिह्वाः।" जाते जाते विद्यते सान्निध्यात् जातवेदाः। जाता वेदा यस्मात् वा जातवेदाः। तनूं न पातयति तनूनपात्। अपि तान्तो दान्तो वा। "स्वाहा" इत्यस्य (स्वाः) पतिः भर्ता स्वाहापतिः। हुतं वषट्कारकृतं यस्य अश्नातीति हुताशः। हुतम् आशी भोजनं यस्य वा। कृष्णवर्त्मा इतिः अर्चिस्वी शीली। पवनोऽस्मिन् शीलोः दहनः। अनिति प्राणिस्वनेन अनलः। विश्वानरस्यापत्यं वैश्वानरः। कृशयति तनूकरोति कृशानुः। रोहिताऽश्वौ मृगीऽश्वी वाहनमस्य रोहिताश्वः। विभा वसु धनं यस्य स विभावसुः। वृषो धर्मः कपिर्वराह श्रेष्ठश्च तद्रूपात् वृषाकपिः। पुराणम्—

"कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्मात् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः॥

इति नाममालायाम्—

"वृषाकपिर्मुकुन्दे शिवेऽग्नौ च।"

शम्यो गर्भो यस्य स शमीगर्भः। हव्यं वहतीति हव्यवाट्। हव्यमश्नातीति हुताशनः। वह्निः। वसुः। श्वेतरथितः। अर्चिष्मान्। धूमध्वजः। वायुसखः। उपर्बुधः। चित्रभानुः। शुचिः। कृपीटयोनिः। तमूना। कृष्णवर्त्मा। अपांपित्तम्। शीतरोमा। दरस्मानुः। आश्रयाशः। धनञ्जयः। शमीघ्नः। तमूना इत्येके। एतेऽग्नयः।

तदात्मजस्तु,

अग्निसुतः। वह्निपुत्रः। वृषाकपिसुतः। वृषाकपिपुत्रः। इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति।

सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः ॥ ६६ ॥
कार्त्तिकेयो विशाखश्च कुमारः षण्मुखो गुहः।
शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शरवणोद्भवः ॥ ६७ ॥

द्वादश स्कन्दे। सेनां नयतीति सेनानीः। "सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि" एतामुपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽपि नाम्यनाम्युपपदे क्विप् भवति। स्कन्दयतीति स्कन्दः। स्कन्नं शुक्रं रेतोऽस्य वा। शिखी मयूरो वाहनमस्य शिखिवाहनः। कृत्तिकानामपत्यं कार्त्तिकेयः। दानव बलो बलेनाति इवति विशेषेण तनूकरोति विशाखः। विशाखाजातो वा। कुमारो ब्रह्मचारित्वात्।

१ अम को चौर० भा ११।१५५। २ सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानत्वात् वेदोऽत्यधिकश्च यत्नेन पाल्येतच्चाप्त्य। जातं वेदो धनं (सुवर्णं) यस्मात् जातं वेत्ति वेद्यते वा इति व्युत्पत्तिरपि। ३ तनूं स्वस्वरूपं न पातयति दहतीत्यर्थः। क्विप्। नभ्राण्नपात् इति नलोपाभावः। तनूं न पाति रक्षति जाते जाते विनश्यत्वादिति वा। पातेः शतृप्रत्ययः। तस्या उक्तं पाति रक्षतीति तनूनपं घृतं तत्पातीति। नभ्राण्नपात् इति निर्। इत्यप्यूह्यम्। ४ कृशोऽग्नानिति वर्धते कृशानुरिति वा। ५ शतायोऽश्म आभि चि २।१२९। दीप्तायामेवोपलभ्यते। ६ अनेरा स ४।१।१८। ७ का नृ ४।१।७४। ८ स्कन्नं रेतोऽस्येत्यभिप्रायेण। विमलस्तु स्कन्नं शुक्ररेता भवतीति स्कन्द इत्येवस्तु। ब्रह्मचारित्वात् शुक्ररेतस्त्वमात्मनात्विदम्। यथायम्। ९ विपूर्वात् शो तनूकरणे इत्यस्मात् पञ्चराज्ञ्यप्यः विशाखानक्षत्रे जातो वा। विशाखयति विशेषेण शाखीति दानवबलमिति वा। "स्वामी स्वामी। यथायम्।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः[1] । षण्मुखानि यस्य स षण्मुखः । गूहति रक्षति देवसैन्यं गुहः । [2]नाम्मुखम् मीपूगुरो कः । शक्तिर्विद्यतेऽस्य शक्तिमान् । क्रौञ्चं पर्वतं भिनत्तीति क्रौञ्चभेदी । स्वमस्त्यस्य स्वामी[3] । शराणां वनम्, शरवणम्, तस्मिन्नुद्भवः शरवणोद्भवः । गौरीपुत्रः । शक्तिपाणिः । तारकारिः । अग्निभूः । बाहुलेयः । गाङ्गेयः । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजाः । पार्वतीनन्दनः ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।
त्र्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिपः ॥ ६८ ॥
त्रिपुरारिर्विशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।
खण्डेन्दुमौलिर्यज्ञारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥
उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्द्यपि ॥ ७० ॥

एकोनत्रिंशदीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुखं करोतीति शङ्करः । शम्भवती (स्वस्मात्) इति [4]शम्भुः । [5]"शुभो हर्षिशर्मेषु च । शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः[6] । वसति प्रलयेऽपि तिष्ठति स्थाणुः । महाँश्चासौ ईश्वरः महेश्वरः । त्रीण्यम्बकानि यस्यास्य त्र्यम्बकः । त्रयाणां लोकानाम् अम्बकः ... । धूर्भारभूता जटा यस्य धूर्जटिः जटिः यस्य वा धूर्जटिः । शृणाति दैत्यान् शर्वः । [7]" शर्वविद्याभीता " एते कम्प्ययमान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथानां [8]'अधिपः प्रमथाधिपः । त्रिपुरासुरस्यारिस्त्रिपुरारिः । विशाले विस्तीर्णे अक्षिणी यस्य विशालाक्षः । [9]"अक्ष्णोऽदर्शनात्" । गिरिस्वामीशो गिरीशः । कालकूटभक्षणाज्जातं कण्ठे लोहितं यस्य स नीललोहितः[10] । 'नीलः[11] कण्ठे लोहितश्च केशे इति नीललोहितः' इति पुराणम् । ... । 'स्वाङ्गेभ्यश्च[12] ...' इन्दुर्मौलिषु कृतं यस्य (स) इन्दुमौलिः[13] । यज्ञानां ... अरिः यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवर्दो ध्वजायां यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्तित्वात् उग्रः[14] । शूलमस्त्यस्य शूली । कपालं मनुष्यशिरोस्थ्यस्य कपाली । शिपिः पिष्टो हता ... (पिष्टे) मूर्ध्नि यस्य स शिपिविष्टः[15] । भवतीति भवः[16] । हरत्यघं हरः ।

---

१ 'कुमार क्रीडायाम्' । कुमारयतीति पचाद्यच् । कौ पृथिव्यां मारयति दुष्टानिति वा विग्रहो बोध्यः । २ का उ सू १।१६८ । इतीन् प्रत्ययः । ३ स्वाम्यादामिन् प्रत्ययः । "स्वामिन्नैश्वर्ये" पा सू ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । "शाममेरिन् दीर्घश्च" का उ सू १।१६८ इतीन् प्रत्ययः । ४ शम्भवति भावयतीत्यर्थो वा । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भवति । ५ का सू ४।४।१६ । ६ उक्तविग्रहे शेतेर्बाहुलकाद् ... प्रत्ययः । शिवं करोतीति शिवयति ततः पचाद्यच् शिवो वा । शिवम् अस्यास्तीत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७ का उ सू २।२। ८ प्रमथाश्च दुर्गाद्याः । परन्तु 'प्रमथाः स्युः पारिषदाः' इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवगणार्थकत्वेन प्रसिद्धेः दुर्गादीनामप्रसिद्धेः प्रमथानामधिपः इति युक्तम् । ९. 'तारादीनामक्ष्णो' का सू २।६।४१ । इति ५ । १० नीलं कण्ठे लोहितं जटासु यस्येति विग्रहार्थः । तदुक्तम्— 'नीलः येन ममाङ्गस्य रक्तश्च लोहितः स्थितः । नीललोहित इत्येव ख्यातोऽहं परमेश्वरः' ॥ इति स्कान्दे' इति मुकुटः । ११ अम को क्षीर भा १।१।१३। १२ का उ सू २।१४। १३ इन्दुर्मौलौ यस्येति विग्रहः सरलः । १४ उच्यति कुप्यति उग्रः । 'उच् समवाये' उच् धातुः । ततो रक् । गकारान्तादेशः । ऋज्रेन्द्राग्र इति उ सू । १५. शिपिविष्टः ... शिपिविष्टः । १६ भवत्यस्मात् भवति जायते इत्यर्थः ।

उमायाः पतिः उमापतिः । विरूपाण्यक्षीण्यस्य विरूपाक्षः । विश्वेषु रूपं यस्य स विश्वरूपः । कपर्दोऽस्यास्य कपर्दी । कपर्दो जटाजूटः । कं शिरः पिपर्तीति कपर्दः । औणादिको दः । अपिशब्दात्–ईशानः । शशिशेखरः । पशुपतिः । शम्भुः । गिरिशः । श्रीकण्ठः । सर्वज्ञः । त्रिपुरान्तकः । भूतेशः । परमेश्वरः । अन्धकरिपुः । दक्षाध्वरध्वंसकः । स्मरहरः । वामदेवः । कामध्वंसी । व्योमकेशः । अहिरेवाः । भीमः । भवः । कृत्तिवासाः । वृषाङ्कः ।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता ।
मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गायाः । भगीरथेन राज्ञाऽवतारितत्वात्तस्यापत्यं वा भागीरथी । त्रिभिः पथिभिर्गच्छति त्रिपथगा[1] । त्रिमार्गगा च । जह्नुना पीता श्रोत्रेण त्यक्ता जाह्नवी । जह्नोरपत्यं वा जाह्नवी । हिमवतो हिमाचलस्य सुता हिमवत्सुता । मन्दमकति मन्दा गतिरस्त्यस्याः [2]मन्दाकिनी । सुरसरित् । विष्णुपदी । सरिद्वरा । त्रिपथवीथिका । त्रिस्रोताः । भीष्मसूः । सुरनिम्नगा ।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (वा परम) नदीपर्यायेषु गङ्गानामानि भवन्ति । कल्लोलिनी । विहायो धुनी । वियत्सिन्धुः । व्योमस्रवन्ती । नभोनदी । गगननिम्नगा । अभ्रापगा । द्योनदी । आकाशनदी । मन्दाकिनीरेखा । मेघपथसरित् । वायुपथतरङ्गिणी । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथ्यादिशब्दतः (परम) ईश्वरपर्यायेषु हरनामानि भवन्ति । भागीरथीधवः । त्रिपथगाधिपः । जाह्नवीपतिः । हिमवत्सुतास्वामी । मन्दाकिनीनाथः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

विधिर्वेधा विधाता च द्रुहिणोऽब्जचतुर्मुखः ।
पद्मपर्य्याययोनिश्च पितामहविरञ्चिनौ ॥७२॥
हिरण्यगर्भः स्रष्टा च प्रजापतिस्सहस्रपात् ।
महात्मभूरनन्तात्मा कः

दशदश ब्रह्मणः । विदधाति[3] सृजति विधिः । विधत्ते वा विधिः । 'उपसर्गे घोः किः[4] ।' विदधाति सृजति वेधाः । "सर्वधातुभ्योऽसुन् ।" "विध विधाने ।" विदधाति धारयति भूतानीति विधाता । द्रुहत्यसुरेभ्यो द्रुहिणः । न जायतेऽजः । चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य चतुर्मुखः । 'पद्मपर्याययोनिः'–पद्मपर्यायशब्दाग्रे योनिशब्दे प्रयुज्यमाने ब्रह्मनामानि भवन्ति । तामरसयोनिः । कमलयोनिः । नलिनयोनिः । पद्मयोनिः । कुशेशययोनिः । अरविन्दयोनिः । सरसिजयोनिः । पुण्डरीकभवः । सरोरुहभवः । अरविन्दयोनिः । शतपत्रयोनिः । पुष्करयोनिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । एवमन्यासामपि लोकपितॄणां पिता पितामहः । आत्मनो भूतानि विरिञ्चते पृथक् करोति विरिञ्चिः । विरिञ्चः । विरिञ्चिरपि ।

1 त्रयाणां पथां समाहारस्त्रिपथं तेन गच्छतीति वा । इत्थं च पूर्वं समाहारद्विगौ कृते तत उत्तरपदाभावविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूपपादं भवति । गंगायास्त्रिपथगामित्वे भारतीयं वचनम् 'क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः । दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥' 2 मन्दमकति गच्छति शीलमस्या इति वा । "अक कुटिलायां गतौ । णिनि । ङीप् । मन्दीभवितुमर्हे मन्दाकशब्दस्य मन्दगत्यर्थे प्रमाणं मृग्यम् । 3 विध विधाने । तुदादिः । सर्वधातुभ्य इन् किच्च । 4 पा सू ३।३।९२ । 5 पा उ सू ४।१८९।

हिरण्यं गर्भे यस्य हिरण्यं गर्भो वा यस्य हिरण्यगर्भः । पुराणम्[1]—

"हिरण्यगर्भमभवत्तदण्डमुदके तदा ।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूर्लोकविश्रुतः ॥"

सृजतीत्येवंशीलः स्रष्टा । प्रजानां पतिः प्रजापतिः । "पद गतौ" पद् । पद्यन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) मार्गिणः तान् पद्यमानान् जन्तून् चरणा एव प्रभुञ्जते । '[2]धातोरच देशे' घञ् । अस्योप दीर्घः । पादि वा । पादयन्तीति पादः । क्विप् च । [3]कारितस्य कारितलोपः । णेर्लोपः । पाद् । सहस्रं पादौ यस्य स सहस्रपात् । बृंहन्ति वर्धन्ते चराचराण्यत्र ब्रह्म । उमनम् । इदं ब्रह्म । अयं ब्रह्मा । अथवा बृंहन्ति भूतानि यस्मिन्निति ब्रह्म । बृंहेः [4]मन् प्रत्ययो भवति अस्य च अकारात् पूर्वम् । आत्मना भवति आत्मभूः । न अन्तो विद्यते यस्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्य सः अनन्तात्मा । कायतीति कः । परमेष्ठी । सुरज्येष्ठः । शतानन्दः । स्वयम्भूः । जगत्कर्ता । शतधृतिः । स्थविरः ।

तत्पुत्रोऽथ नारदः ॥७३॥

तस्य पुत्रस्तत्पुत्रः । ब्रह्मणः शब्दात् (परम) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने नारदनामानि भवन्ति । विधिपुत्रः । वेधःपुत्रः । विधातृपुत्रः । विरिञ्चिपुत्रः । द्रुहिणपुत्रः । अजपुत्रः । चतुराननपुत्रः । पद्मयोनिपुत्रः । पितामहपुत्रः । हिरण्यगर्भपुत्रः । प्रजापतिपुत्रः । सहस्रपात्पुत्रः । ब्रह्मपुत्रः । आत्मभूपुत्रः । अनन्तात्मपुत्रः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः ।
केशवश्च हृषीकेशः शार्ङ्गी नारायणो हरिः ॥ ७४ ॥
केशी मधुर्बलिर्बाणो हिरण्यकशिपुर्मुर ।
शकटादिसूदनः शौरिः पद्मनाभोऽप्यधोक्षजः ॥७५॥
गोविन्दो वासुदेवश्च—

[illegible] । कर्षत्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा कृष्णः । '[5]इषिकृषिभ्यो नक्' । दाम उदरे यस्य स दामोदरः । बाल्यकाले यशोदया हि [6]दाम्ना बद्धोऽभूत् । वेवेष्टि व्याप्नोति विष्णुः । [7]विषिविभ्यां णुक् ॥ उपगतमिन्द्रमुपेन्द्रः । इन्द्रं उपगतोऽनुजत्वात् वा उपेन्द्रः । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः । केशाः सन्त्यस्य केशवः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशित्वात् हृषीकेशः । शार्ङ्गं धनुरस्त्यस्य शार्ङ्गी । नाराः आपः अयनं यस्य नारायणः[8] । मनुस्मृतिः[9] —

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥"

---

१ 'पुराणम्' इत्यारभ्य 'लोकविश्रुतः' इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् २।१२७। उपलभ्यते । २ पा सू ३।३।१६ । ३ पा सू ६।४।५१ । ४ 'सर्वधातुभ्यो मन्' पा उ सू ४।२८ । ५ 'बृंहे ग्रामे' [illegible] इति विग्रहः । 'कृष दीर्घी' क्वचित् पा । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' पा सू ३।२।१ ... वार्तिकेन ड । ६ पा उ सू २।१ । ७ बालकृष्णो हि यशोदया [illegible] इति पौराणिकी कथा 'उदरम्' इति पदेन स्मार्यते । ८ पा उ सू ३।३९ । ९ नराणां समूहो नारम्, तदयनं यस्य [illegible] नारम्, [illegible] 'नारायणः' इत्यपि व्युत्पत्तिः । १० मनुस्मृति १।१० । मेधातिथिव्याख्यायां "[illegible]" इति पाठो लभ्यते ।

नरस्यापत्यं वा । नरायनवद् इति वाक्येन नरायणोऽपि । हरत्येव हरिः । केशाः सन्त्यस्य केशी । मन्यते जनैः मधु । मनिजनिनिमां मधकतनाकामं एषामुप्रत्ययो भवति मधकतनाकाम मधासंज्ञ मारेणा भवन्ति । "बल बलन च । बलतीति बलिः । "ह "र्वधातुभ्य । कम्पते बाणः । तदादि सूत्रम् । तदादीनां केशवादीनां सूदनो नारायणोऽपि । केशी मधुः बलिः बाणः हरिण्यकशिपुः मुरः एष्व शब्देभ्यः परतारिशत्रौ मनुष्यनामे नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केशवरातिः । केशमित्रः । केशिद्विट् । केशिसपत्नः । मधुवैरी । मधरातिः । मधुमित्रः । मधारिः । मधुद्विट् । मधुसपत्नः । मधुरिपुः । बलिवैरी । बल्यरातिः । बल्यमित्रः । बलिद्विट् । बलिसपत्नः । बलिरिपुः । बाणवैरी । बाणारातिः । बाणामित्रः । बाणारिः । बाणद्विट् । बाणसपत्नः । बाणरिपुः । हिरण्यकशिपुद्विट् । हिरण्यकशिपुसपत्नः । हिरण्यकशिपुरिपुः । मुरवैरी । मुरारिः । मुरारातिः । मुरद्विट् । मुरसपत्नः । मुररिपुः । मधुशत्रुः । बाणशत्रुः । मधुसूदनः । बलिसूदनः । बलिध्वंसनः । बाणसूदनः । हिरण्यकशिपुसूदनः । केशिसूदनः । इत्यादि पर्यायनामानि । शूरसेनस्यापत्यं शौरिः । शौरिर्वा । पद्मं नाभावस्य पद्मनाभः । "संज्ञायां नाभिः । अचोऽन्त्यादि टि । अजोऽन्तस्य प्रत्ययो भवति । गां भुवं विन्दति गोविन्दः । वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः । "मधुसूदनः । श्रीवत्साङ्कः । श्रीपतिः । पीतवासाः । विष्वक्सेनः । विश्वरूपः । मुकुन्दः । चक्रधरः । पुण्डरीकाक्षः । वैकुण्ठः । जनार्दनः । रथाङ्गपाणिः । दाशार्हः । कंसारिः । वृषाकपिः । अच्युतः । हृषीकेशः । "बभ्रुः । विष्टरश्रवाः । वनमाली । जनार्दनः । जिनः । शम्भुः । इत्यादयूह्यम् ।

लक्ष्मीः श्रीर्गोमिनीन्दिरा ।

चत्वारः श्रियाम् । लक्ष दर्शनाङ्कनयोः । लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं जनमिति लक्ष्मीः । "लक्षेर्मोऽन्तश्च" प्रत्ययादीश्वत्यो भवति मीऽन्तश्च । श्रञ् श्रिञ् (सेवायाम्) । पुण्यकृतं श्रयतीति श्रीः । श्विभिश्रिभ्यामुत्का किवृदीर्घश्च एभ्यः क्विप्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च स्वरस्य चैवम् । गां मिनोतीति गोमिनी । इन्दति परमैश्वर्ययुक्ता भवति इन्दिरा । कमला । पद्मा । पद्मालया । हरिप्रिया । क्षीरोदतनया । माया । मा । ता । ई । का । रमा । सीता । चला (चपला) । भर्गरी । अम्बिकाऽपि ।

तत्पतिः शैलभूम्यादिधरश्चक्रधरस्तथा ॥ ७६ ॥

तस्याः पतिस्तत्पतिः । लक्ष्मीपतिः । श्रीपतिः । गोमिनीपतिः । इन्दिरापतिः । इत्यादीनि हरिनामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतधरः । शैलधरः । दरीभृद्धरः । अचलधरः । महीध्रधरः । सानुमद्धरः । गिरिधरः । नगधरः । शिलोच्चयधरः । भूमिधरः । भूधरः । पृथ्वीधरः । महीधरः । मेदिनीधरः ।

---

१ मन्यते जनैः अज्ञानेन इति शेषः । २. का उ सू. १।८ । ३ का उ सू. ३।१४ । ४ का सू. २।६।४१ । वृत्तिः । ८ । ५. अथ कृतमयकर्मेत्रियकं ज्ञानं येन, अयो न क्षीयते वायु इति वा विमर्शोऽधिकोऽस्मत । ६ मधुकेशः शब्दस्य 'विष्णु पर्यायत्वे कल्पद्रुरपि प्रमाणम्— मधुकेशः कौस्तुभौरा सौमगर्भो बराधर । १।२।७ । ७ बभ्रु शब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । "विपुले नकुले विष्णौ बभ्रु स्यात्पिङ्गले त्रिषु ।" ३।३।१७ । ८. का उ सू. ३।१५ । ९ का उ सू. २।२३ । १० 'गोमिनी' शब्दस्य लक्ष्म्यर्थे प्रमाणं मृग्यम् । अमरकोषोऽपि चिन्त्यः । मतमें गौराख्या मिनिप्रत्यये गौपि गोपालिकार्थे तस्य महिषी कोशान्तरदर्शनात् । ११ ता, ई का एतौ लक्ष्म्यर्थे प्रमाणम्— "लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता श्री कमलेन्दिरा अपि चि २।१४ । 'या' इत्यत्र ई का इति पठेत् । लक्ष्म्यास्तु भर्गरी विष्णुशक्ति क्षीराब्धिमानुषी । इति तट्टीकायाम् ।

महीधरः । धराधरः । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्ष्माधारः । वसुमतीधरः । विश्वम्भराधरः । अवनीधरः । धरणीधरः । क्षमाधरः । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (ध्रः) । कुम्भिनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधर । उर्वीधर । गोधर । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेर्नामानि ज्ञातव्यानि । तथा चक्रधरोऽपि ।

सत्पुत्रो मन्मथः कामः शूर्पकाराति (कारि) रनन्यजः ।
कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

षट् कामे । सत्पुत्रः । कृष्णपुत्र । दामोदरपुत्र । विष्णुपुत्रः । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूनुः । केशवपुत्र । हृषीकेशपुत्र । हृषीकेशतनय । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणौरस । हरिसूनु । गोविन्दतनूज् । इमानि मदनस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । मथ्नाति चित्तं [1]मन्मथ । काम्यते जन (अनेन) कामः । [2]शूर्पकारातिः । मनसोऽन्यस्मान्न जायते अनन्यजः । कायपर्यायरहित । विदेहः । अकाय. । अनङ्ग । अतनुः । अवपु । असंहननः । अकलेवरः । अमूर्तिः । इत्यादि (दीन्यपि तस्य) पर्यायनामानि । मदं मदयतीति मदन । मकरो ध्वजे यस्य स मकरध्वजः । प्रद्युम्न । मनसिज । रुक्मिणीसुत । आत्मभू । मन्मथः । मीननन्दन । इक्षुधन्वा । मधुसखा ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।
इषु काण्ड क्षुरप्र च नाराच तोमर खग ॥ ७८ ॥

द्वादश बाणे । शिलीव तन्नाम मुखं यस्य [3]शिलीमुखः । 'शृ हिंसायाम् । शृणात्यनेनेति शरः । [4]वण शब्दे अजादौ च धञ्प्रत्ययः । वणति [5]बाणः । [6]'व्यञ्जनाच्च' घञ् । मार्गयति अन्वेषयति मार्गणः । रोप्यते देहे निखन्यते रोपणः । कणति [7]कणः । इष गतौ । इष्यते गम्यते शत्रुमभिमुखमिति [8]इषु । शत्रुमिष्यति हिनस्तीति वा इषुः । [9]"इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक्" कु । काम्यते रिपुवधाय [10] काण्डम् । उभयम् । क्षुरति भिनत्ति [11] क्षुरप्रम् । नारं नरसमूहम् आचामतीति [12]नाराचम् । तोम्यते हिंस्यते तोमरम् [13] । खमाकाशं गच्छतीति खगः । अजिह्मग । चित्रपुङ्ख । विशिख । पत्री । कलम्बोऽपि । सायक । पृषत्क । पुङ्खः । रोप । गार्ध्रपत्रः । [14]वाजः । अजिह्मः । अस्त्रः ।

---

१ विग्रहे चित्तस्थाने मन शब्दपाठो योग्य । मनस इकारलोपार्थं पृषोदरादिगणपाठाच्चा ऽपि तस्य कार्य । क्षीरस्वामिरामाश्रमौ तु मननं मत् चेतना । मथ्नातीति मथ । पचाद्यच् । मतश्चेत नाशा मथ 'मन्मथ इत्याहुः । २ छन्दोभङ्गभयाच्छूर्पकारिरिति पाठो योग्य । शूर्पको नाम कश्चिद् दानवस्तस्य नाशकारित्वात्काम शूर्पकारि । तदुक्तम्– अभि चि २।१४१ । 'पुष्पायुधस्तेषुचापास्त्र श्चारी शम्बरशूर्पकौ । ३ शिली नाम गण्डूपद । "केंचुआ" इति लोके प्रसिद्ध । ४ का सू ४।५।९९ । ५ वणति शब्दायते पुङ्खोऽस्मिन्निति पूर्वो विग्रहः । ६ का सू ४।५।९९ । ७ कणति शब्दायते कण । पचाद्यच् । ८ इषति गच्छति शत्रुमभिमुखमिति वा । ९ का उ सू १११ । १० कनति दीप्यते काण्ड इति रामाश्रम । कनी दीप्तौ" । काडिम्ब कित्" उ ११२ । इति ड । अनुनासिकस्येति पचादीर्घश्च । अमरकोशेषु कमिधातो "कमु कान्तौ कमधातोः स एव प्रत्ययः । काम्यतेऽनेनादरः काण्ड इति हैमचन्द्रः । कण शब्दे इत्यतो डः । ११ क्षुरं तीक्ष्णेन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुराभं लोहं प्राति गच्छति वा । १२ नारमाचामतीति रामाश्रमः । नरमश्नातीति नराची, नराच्यास्तुल्यो नाराच इति हैमचन्द्रः । १३ 'तु गतौ' तौमः । तोतीति तो । क्विप् । म्रियतेऽनेनेति मरः । पुंसि संज्ञायां घ । तोश्चासौ मरश्चेति तोमर इत्यन्य । १४ वाजवत्त्वात् । तदुक्तं कल्पद्रुकोशे १.५।२२ । "विचर्ष पत्रवाहश्च चित्रपुङ्खा शर खगः । इति ।

कार्मुकं धन्व चापं च धर्म कोदण्डकं धनुः ।
शिलीमुखादेरसनम्—

धन् धनुषि । कर्मणि शत्रुवधलक्षणाय प्रभवतीति ¹कार्मुकम् । धनन्ति मारयन्त्यनेन ²धन्वन् । धन्वम् धन्वम् । चपस्य वेणोर्विकारश्चापम् । उभयम् । धरति ³धर्मम् । धर्म च । कुड़ रक्षणभावयोः । कोदण्डयत्यनेन ⁴कोदण्डम् । शत्रुवधार्थं धन्यते अर्थ्यते धार्यते वा धनुः । उभयम् । उणादौ धनन्तीति धनुः (नृ०) । "⁵कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः" । शिलीमुखादेरसनम् । शिलीमुखास्त्रम् । शरास्त्रम् । मार्गणासनम् । रोपकासनम् । बाणासनम् । इष्वासनम् । काण्डासनम् । क्षुरप्रासनम् । नाराचासनम् । तोमरासनम् ।

तस्कोटिमटनीं विदुः ॥ ७९ ॥

तस्य धनुषः कोटिमग्रभागम् । कार्मुककोटिः । धन्वकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटिः । धनुष्कोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासनकोटिः । बाणासनकोटिः । रोपकासनकोटिः । मार्गणासन कोटिः । इत्यादिकमटनीति कथ्यते । अटति गच्छति भूमिमटनिः । स्त्रीणाम् । अटनी । द्वौ स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रसवोद्गमौ ।
प्रसूनं कुसुमं ज्ञेयम्—

पुष् (धन्व) पुष्प । पुष्प्यति विकसति पुष्पम् । सुष्ठु मन्यन्ते आभिः सुमनसः⁶ । ञिफला विशरणे ।" फल् । फलति स्म फुल्लः । फुल्लं वा । गत्यर्थाऽकर्मक क्तः । 'आदितश्च' इति नेट् । अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः निष्ठातकारस्य लत्वम् ।"⁷ उत्परस्योऽत्स्य उकारादेशश्चेत्युक्तम् । क्ति । रेफः । लतायाः अन्त पतितं लतान्तम् । प्र सू (क) ते प्रसवम् । उद्गच्छति प्रादुर्भवति उद्गमः । भिर्व प्रसूते प्रसूनम् । सूनं सूनकं च । क्ला उभयम् । कौ शोभां सूते ¹¹कुसुमम् । सुमं च । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।

तदायुधश्च स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पसर्वाभिधी (त० परता) आयुधेषु तथा बाणपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्पेषुः । पुष्पबाणः । पुष्पशिलीमुखः । पुष्पशरः । पुष्पमार्गणः । पुष्परोपकः । पुष्पकाण्डः । पुष्पधन्वा । पुष्पक्षुरप्रः । पुष्पनाराचः । पुष्पतोमरः । सुमनक्षुरप्रः । सुमशिलीमुखः । सुमनोनाराचः । लतान्तेषुः ।

---

१ कमय उक्ञ् पा सू ५।१।१ १ । इति प्रभवत्यर्थे उकञ् । टिलोपः । २ धन शब्दे पुरोभ्यादिः । धनुःस्पशः । धातूनामनेकार्थत्वान्मारणार्थोऽर्थः । धात्वर्थानुरोधे तु धनति धान्यमर्थयत्यनेनेति स्पर्धा योग्य । वीरार्थो धनधान्यार्जनसाधनत्वाद् धनुरपि । धन्वति गच्छति धन्वेति धीरत्वामिरामाश्रम हेमचन्द्रः । कनिन्प्रत्ययः । ३ धरतो रक्षत्यात्मत्वाभिप्रायः । मनिन्प्रत्ययः । अकारान्तधर्मशब्द एव धनुर्वाचित्वे मेदिनी प्रमाणम्— 'धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ । अहिंसोपनिषन्न्याये ना धनुर्यमसोमपे ॥' मास्तर ११ शर्ता ॥ ४ धातुलकारकाण्डान्त्यस्य । रामाश्रमस्तु 'कुट छेदनभावयोः' कोदत्तौ विमदमाह । न एव प्रत्ययः । पुरोदरादित्वात् उत्वं द । नदि शीघ्रः । कथते भेमेति हेमचन्द्रः । ५ शब्दे कौतीति कोः । कौ शब्दायमानो दण्डो यस्येत्यन्यत्वम् । ५ पा उ सू ११२१ । ६ सुष्ठीनं मन्यन्ते आभिरिति सुमनसः । ७ पा सू ७।२।४९। ८ पा सू ८।२।५५। ९ पा सू ४।१।१५। १० पा सू ४।१।७६। ११ कुम्भति कुसुमम् । 'कुस संश्लेषणे' दिवादि । "कुसवम्भीमरेफ पा उ सू ४।१ ५। इत्युमप्रत्ययः । इति रामाश्रम ।

लतान्तकाण्डः । लतान्तपुङ्खः । लतान्तनाराचः । लतान्ततोमरः । प्रसवमार्गणः । प्रसवरोपणः । प्रसवकङ्कः । प्रसवेषुः । प्रसवकाण्डः । प्रसवपुङ्खः । प्रसवनाराचः । प्रसवतोमरः । उद्गमशिलीमुखः । उद्गमशरः । उद्गमबाणः । उद्गममार्गणः । उद्गमरोपणः । उद्गमकङ्कः । उद्गमेषुः । उद्गमपुङ्खः । उद्गमनाराचः । उद्गमतोमरः । प्रसूनशिलीमुखः । प्रसूनशरः । प्रसूनबाणः । प्रसूनरोपणः । प्रसूनकङ्कः । प्रसूनकाण्डः । प्रसूनेषुः । प्रसूनपुङ्खः । प्रसूननाराचः । प्रसूनतोमरः । कुसुमशिलीमुखः । कुसुमशरः । कुसुमबाणः । कुसुममार्गणः । कुसुमरोपणः । कुसुमकङ्कः । कुसुमेषुः । कुसुमकाण्डः । कुसुमपुङ्खः । कुसुमनाराचः । कुसुमतोमरः । पुष्पशब्दात्परे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति । पुष्पकार्मुकः । पुष्पधन्वा । पुष्पचापः । पुष्पधर्मा । पुष्पकोदण्डः । पुष्पधनुः (न्वा) । लतान्तकार्मुकः । लतान्तधनुः (न्वा) । लतान्तचापः । लतान्तधर्मा (र्मा) । लतान्तकोदण्डः । लतान्तधन्वा । प्रसवचापः । प्रसवकोदण्डः । प्रसवधनुः (न्वा) । प्रसूनकार्मुकः । कुसुमधन्वा । कुसुमचापः । कुसुमधर्मा (र्मा) । कुसुमकोदण्डः । कुसुमधनुः (न्वा) । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः ।

हृदयं विषिखाऽकूतम्—

नप चित्ते । 'स्वन स्वन ध्वन शब्दे' । आङ्पूर्वः । स्वनति स्म आस्वनति स्म इति स्वान्तम् आस्वान्तम् । 'गत्यर्था'[1] 'निष्ठा क्तः' । "क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु"[2] एभ्य क्ते निपात्येते भवति । चेट् । पञ्चमी[3] । मनोऽनुमाने[4] बुद्धि[5] । मनोऽर्थे 'कुभिचारी'[6] त्यादिना क्ते नेट् । क्वचि तत्र कथनेऽपि परत्वात्पूर्वोक्तपरीक्ष्यो परीक्षविधिर्बलवान् इति वचनात् । अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो भवति । मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव [7]विधिर्भवति । चेतति चित्तम् । चतति जानाति अनेनात्मा चेतस् चान्तम् । अन्तः निश्चय क्रियतेऽनेन अन्तःकरणम्[8] । मन्यते बुध्यतेऽनेन मान्तम् मनस् । दुःखादर्थं हरति हृदयम् । 'हृञ् हरणे' । चान्दं च हृद् । विगतं (वा नष्ट (वा) चिन्तं (वा) यस्य तत् विषिखम्[10] । आ समन्तात् कूयते आकूयते (आकूतम्) । तथा चाक्षुषास्वाम — मत्वाकूतेनाचरणेति मानसम्[9] ।

मारस्तत्रोद्भवो मतः ॥ ८१ ॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मतः कथितः । स्वान्तसम्भवः । स्वान्तजः । आस्वनितजः । चित्तसम्भवः । चित्तजः । चेतस्सम्भवः । चेतोजः । अन्तःकरणसम्भवः । हृदयसम्भवः । हृदयजः । विषिखसम्भवः । विषिखजः । आकूतसम्भवः । इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि ।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या—

मव् बुद्धे । मूर्वेति तिलस्तम्बनया मूर्वा । तस्या अयस्य गुणस्य विकारो मौर्वी । धनुरनया जीवतीति

---

१ का सू ४।१।४९। २ का सू ४।६।९०। ३ का सू ४।१।६७। पञ्चमीपञ्चमी बुद्धि चानुबन्ध इति पूर्वं सूत्रम । ४ का सू २।४।४४। ५ का सू ४।६।९९ । ६ आस्वनितमित्यत्र मनोऽर्थेऽपि परत्वात् "क्षुब्धस्वान्त" ति चेट् । ध्वनपूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र "कुभिचारी" त्यादिनेट् प्रतिषेध । तेन स्वान्तमित्येवमत्र कृतम् । आङ्पूर्वकत्वे तु आस्वनितमास्वान्तमित्युभयमित्याशय । ७ अनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क्तः इति का ४।४।९९। सूत्रेण ज्ञानार्थत्वाद्वर्तमाने क्तः । ८ अन्तःशब्दस्याऽधिकरणशक्तिप्रधानत्वात्ग्राह्यत्वेनान्तो निश्चय इति अनुपपत्तिर्न युक्ता । अन्तर्गतं करणम् करणानामन्तर्गतं चेति व्युत्पत्तिबोध्या । ९ का उ सू २।९६ । १० विषिखशब्दस्य हृदयार्थे न किम प्यन्यत्र प्रमाणमुपलभ्यम् । अधोमुखपुण्डरीकाकारत्वाद्धृदयस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नेयम् ।

मौर्वी । गुम्फ्यते अम्बरस्यतेऽनेन गुणः । मुखि । मौर्व्यो शिञ्जा गम्या । जीवतेऽनया ज्या[१] । बाणासनम् । दृष्टा ।

अलिर्भृङ्गः शिलीमुखः ।

भ्रमरः षट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

अल भूषणे । अलति भूषयति पुष्पवाटीः अलिः[२] । भृशं विभर्त्ति आरमानं भृङ्गः । [४] भृङ्गादीनि एतेऽप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीमुखः शिलाभवो वा मुखमस्य शिलीमुखः । भ्रमन् रीतीति निरुक्तया भ्रमरः । 'शकन्ध्वादिषु शकन्ध्वादीनाम् अकारस्य लोपो भवति । मादिशब्दात् नकारस्य लोपः । उणादौ 'भ्रमु चलने' । भ्रमतीति भ्रमरः । "देवि[६]वदिचटिभ्रमिवाचिभ्योऽरः । षट् पदानि चरणा यस्य षट्पदः । द्वौ रेफौ यस्य द्विरेफः[७] । मधु व्रतयति भुङ्क्ते मधुव्रतः । मधुकरः । पुष्पलिट् । इन्दिन्दिरः । षट्चरणः । चञ्चरीकः । भ्रमरः । रोलम्बः । स्तेरमाम् ।

मौर्व्यादिप्रान्तमन्यादिकन्दर्पस्यैव धनुः[८] ।

इषोर्विकार ऐषवम् । अलिमौर्वी (कम्) । भृङ्गमौर्वी (कम्) । शिलीमुखमौर्वी (कम्) । भ्रमरमौर्वी (कम्) । षट्पदमौर्वी (कम्) द्विरेफमौर्वी (कम्) । मधुव्रतमौर्वी (कम्) । अलिजीवा (कम्) । भृङ्गजीवा (कम्) । शिलीमुखजीवा (कम्) । भ्रमरजीवा (कम्) । षट्पदजीवा (कम्) । द्विरेफजीवा (कम्) । मधुव्रतजीवा (कम्) । अलिगुणः (कम्) । भृङ्गगुणः (कम्) । शिलीमुखगुणः (कम्) भ्रमरगुणः (कम्) । षट्पदगुणः (कम्) । द्विरेफगुणः (कम्) । मधुव्रतगुणः (कम्) । अलिज्या (ज्यम्) । भृङ्गज्या (ज्यम्) । द्विरेफज्या (ज्यम्) । मधुव्रतज्या (ज्यम्) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनु) नामानि ज्ञेयानि ।

हेतिरस्त्रायुधं शस्त्रम्—

चत्वारः शस्त्रे । हिनोति अनया हेतिः । स्त्रियाम् । धातोर्हेतिर्क्तिन्सूत्रस्य[९] । एवं क्तिन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अस्यते क्षिप्यतेऽनेनेति अस्त्रम् । आयुध्यतेऽनेन आयुधम् । उभयम् । शस्यतेऽनेन शस्त्रम् ।[१०] "नीदाप्शसुयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ष्ट्रन् । अमाव ।[११]"अपदान्तस्य" इति णपरगमनम् । ननु अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते इति निषेधाभावात् ष्ट्रनि प्रत्यये इडागमः कथं भवति । आगमशास्त्रमनित्यमिति वचनात् शस्वादेः ष्ट्रनि प्रत्यये इट् न भवति । 'शुक'[१२] पक्षे इति वाचकादेव (इत) ।

पुष्पायस्त्र स्मरो मत ॥ ८३ ॥

पुष्पपर्यायेषु अस्त्रपर्यायेषु शरपर्यायेषु तथा चापपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्प

---

१ मौर्व्यो शाखोक्ती शिलेत्यर्थः । २ शिनोति जीवतेऽनया । 'ज्या वयोहानौ' । 'अन्येष्वपि दृश्यते इति ड' । ३ अल भूषणादौ । सर्वधातुभ्य इन् । ४ का उ १।४८ । ५ का द ३ । ६ कातन्त्रीयादौ नोपलभ्यम् । ७ भ्रमरपदे रेफद्वयसत्त्वात् द्विरेफः । ८ कन्दर्पस्य धनुरैषवम् । इषुणा निर्मितम् । अत एव काम इषुधन्वेत्युच्यते । मौर्व्यादयः शब्दा अन्ते यस्य अलिः अलिपर्याय आदौ यस्यैतदीदृक्धनुरिति यथाश्रुतपाठार्थः । अस्मिन्नर्थे धनुर्विशेषणतया अलिमौर्वीकम् भृङ्गमौर्वीकम् इत्यादि टीकायां वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु मौर्व्यादिप्रोक्तमन्यादिरिति पाठो युक्तः । तत्र पदार्थयोजनापि साधु संपद्यते । अन्यादिः कन्दर्पस्य मौर्व्यादि धनुश्च ऐषवम् स्मर्यं । तदुक्तम्— 'मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतोः' इति साहित्यदर्पणे । टीकैषा तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९ 'हि गतौ वृद्धौ च' । इदं धातुरस्तिरग्निशिखार्थे बोध्या । शस्त्रार्थे 'हन् हिंसायाम्' इत्यतोऽन्यदपि सुवचम् । १० का सू ४।५।७१ । ११ का सू ४।४।६१ । 'अपदान्तस्य परवर्णं नयेत्' । १२ का सू ३।१।२१ । इति णकारस्य परगमनम् । १३ का सू० ४।२।११ ।

इति । पुष्पास्त्र । पुष्पायुध । पुष्पशर । सुमनोइति । सुमनोऽस्त्र । सुमनआयुध । सुमनश्शरः । लतान्तइति । लतान्तास्त्र । लतान्तायुध । लतान्तशर । प्रसवास्त्र । प्रसवायुध । प्रसवशर । उद्गमइति । उद्गमायुधः । उद्गमशर । प्रसूनइति । प्रसूनास्त्रः । प्रसूनायुधः । प्रसूनशर । कुसुमइतिः । कुसुमास्त्र । कुसुमायुध । कुसुमशर । इत्यादिकानि नामानि ज्ञातव्यानि ।

ध्वज पताका केतुश्च चिह्न वैजयन्त्यपि ।

ध्वज पताकायाम् । ध्वजते (ति) धूयते ध्वजः[1] । तथाऽमरसिंहे–"[2]ध्वजमस्त्रियाम् । ध्वजिश्च । पताकादण्डे ध्वज इत्यन्ये । पत्यते क्षिप्यते वातेन पताका । पताकादयः[3]—"पताकाचिनाक पताकाश्यामाकश्यलाकाः एते अकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पताका च । स्त्रियाम् । कीयते ऽनेनेन केतुः । [4]केतुशब्दः —"कतृकृनस्त्युरीत्येधवलकीनाक्व" एते तुन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । चह परिकल्कने । चहयति (अनेन) चिह्नम् । विजयतेऽनया वैजयन्ती[5] । जयन्ती च । वीची । वैजयन्ता । जयन्त ।

[6]तद्वन्तो झषपाठादिः शम्भोर्विद्विषकरः स्मरः ॥ ८४ ॥

झषध्वज । झषपताक । झषकेतु । झषचिह्न । झषवैजयन्ति । पठीनध्वजः । पठीनपताक । पठीनकेतु । पठीनचिह्न । पठीनवैजयन्ति । मकरध्वजः । मकरपताकः । मकरकेतु । मकरचिह्नः । मकरवैजयन्ति । अनिमिषध्वज । अनिमिषपताक । अनिमिषकेतु । अनिमिषचिह्न । अनिमिषवैजयन्ति । तिमिध्वज । तिमिपताकः । तिमिकेतु । तिमिचिह्नः । तिमिवैजयन्ति । मीनध्वज । मीनपताकः । मीनकेतु । मीनचिह्नः । मीनवैजयन्ति । पाठीनध्वज । पाठीनपताक । पाठीनकेतु । पाठीनचिह्न । पाठीनवैजयन्ति । शम्भोर्विद्विषकर । हरविद्विषकर । इत्यादीनि स्मरनामानि ज्ञातव्यानि ।

कौक्षेयकासिनिस्त्रिंशकृपाणाः करवालकः ।

तरवारिर्मण्डलाग्र खड्गनामावलिं विदुः ॥ ८५ ॥

खड्ग खड्ग । कुक्षौ भव कौक्षेयकः[7] । कौक्षेय । अस्यते क्षिप्यतेऽसिः । निष्क्रान्तस्त्रिंशतो–ऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः । वालभ्यान्तः । शत्रून् हन्तु कल्पते मानव कृपाणः । कृपे कार्य । करे वलत करवालः । करपालः । तरति (तर) अभिमान वारि यस्येति निरुक्त्या तरवारिः । मण्डल वर्तुलमग्रं यस्य तन्मण्डलाग्रम् । चर्मादि परमर्माभिमेन चाह । चन्द्रहास । रिष्टि । ऋष्टि । चन्द्रहासः ।

अक्षौहिणी बलानीक वाहिनी साधनं चमूः ।

ध्वजिनी पृतना सेना सैन्य दण्डो वरूथिनी ॥ ८६ ॥

दशक सेनायाम् । अक्षाणां रथानामूहिनी अक्षौहिणी । "[12]पूर्वपदात्संज्ञायामगः[13]" णत्वम् । अथवा धात्वर्थेन साध्यते आत्मकर्मा श्रीमदमरकीर्तिना । चमू व्याप्तौ । चमति व्याप्नोतीति चमूः । [14]पृत

---

१ "ध्वज गतौ" । पचाद्यच् । २. अम को २।८। ९। ३ का उ ३।४ । ४ का उ १।२८। ५. विजयते विजयन्त विजयशाली पुरुष । वीचादिको कप्रत्ययः । मत्स्यास्यादेश । विजयस्तस्येय पताका वैजयन्तीति । ६ ते ते ध्वजपर्याया यन्त यस्य झषादिर्मीनपर्यायभावी यस्य ईश्वरस्तथा शम्भुविघ्नकरश्च स्मरः कामः । तेऽपि स्मरपर्याया । तद्यथा झषपताकेत्यादि । ७ कुलकुक्षि ग्रीवाभ्य श्वाऽस्यलङ्कारेषु पा सू ४।२। ९। इति वर्त्यार्थे ढकञ् । ८. कृपां नुदति कृपाणः इत्यपि । ९ का उ सू ५।१७। १ "वल चेष्टने"। ध्वजादित्वाण्णः । वलनं वालो चेष्टनम् । करे वालो यस्य करेण वल्यते चौरमनमन्यत । ११ का उ सू ५।५२। १२. का सू सू १।१०७। १३ का उ सू ४।५१।

परिहनिमनिकम्पशिञ्जिभ्यः सः च प्रत्ययः । कुशीभ[1] प । "पक्षौ क"[2]से' मत्-प । [3]समयोगे च । प्रक्ष इति वाढ । ऊर्वं ऊरु । ऊरो विद्यते यस्या सा ऊरिनी । अक्षायामूहिनी अक्षौहिणी । 'समासान्तसमीपयोरसुपादेः' अस्यार्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्थात् निमित्तात् (परस्य) णो भवति वा । इदानीम् अक्षौहिण्याः प्रमाणं क्रियते । यदाहुः—

"[4]एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥
पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥
अनीकिनी"

पत्तेस्त्रिगुणं सेनामुखम् । गजाः ३ रथाः ३ अश्वाः ९ पदातयः १५ इति सेनामुखम् । गजाः ९ रथाः ९ अश्वाः २७ पदातयः ४५ इति गुल्मम् । गजाः २७, रथाः २७ अश्वाः ८१ पदातयः १३५ इति गणः । गजाः ८१ रथाः ८१ अश्वाः २४३ पदातयः ४०५ इति वाहिनी । गजाः २४३ रथाः २४३, अश्वाः ७२९ पदातयः १२१५, इति पृतना । गजाः ७२९, रथाः ७२९ अश्वाः २१८७ पदातयः ३६४५ इति चमूः । गजाः २१८७, रथाः २१८७ अश्वाः ६५६१ पदातयः १०९३५ इत्यनीकिनी । दशानीकिन्यो अक्षौहिणी । गजाः २१८७० रथाः २१८७० अश्वाः ६५६१० पदातयः १०९३५० । ध्वजते गच्छतीति परभूमिं ध्वजम् । उभयम् । अनितिः प्राणिति दुर्बलजनैः न नीयते पराभवं वा अनीकम् । वाहा अश्वाः सन्त्यस्यां वाहिनी । साध्यते (अनेन) साधनम् । परान् शत्रून् चमति भक्ष्यते चमूः । [6]कमि चमिडमिवमिनिषिभ्यः ऊः । चमूश्च । अश्वाः सन्त्यस्यां ध्वजिनी । नायकं पिपर्ति पृतना । शत्रून् सिनोति बध्नाति सेना । 'सिनोतेर्नः' । सेनायाः स्वार्थे यण् सैन्यम् । बाध्यति दण्डः । वरूथो रथगुप्तिरस्त्यस्या वरूथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । व्यूहः । बलम् ।

[7]आयोधन समर युद्ध संयुगं कलह रणम् ।
संग्राम सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । आयुध्यते अत्र आयोधनम् । समितिः प्रतिविशिष्टा भवन्त्यत्र नरा समरम् । युध्यते (भा) रिभिर्युद्धम् । यत्र संयुज्यन्ते मिलन्त्यत्र संयुगम् । कलं मधुरं वाक्यं हन्त्यत्र कलहः । रमन्ति दुन्दुभयोऽत्र रणम् । संग्रसन्ते बलान्यनेनेति संग्रामः[10] । पुंसि । संपरैति मृत्युरत्र सम्परायः । अजा अजन्ते क्षिप्यन्तेऽत्र आजिः स्त्रीलिङ्गः । संयतन्तेऽत्र योद्धा संयत् । महान्तश्चासौ आहवः[11] महाहवः । त्वम् आहुः

युधन्ति । आयोधनम् । जन्यम् । प्रधनम् । प्रविदारणम् । मृधम् । आस्कन्दनम् । संख्यम् । समीकम् । अनीकम् । विग्रहः । समुदायः । अभ्यागमः । संस्फोटः (टा) । समितिः । समित् । द्वन्द्वम् । सम्मर्दः । संगरः ।

गजो मतङ्गजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।
दन्ती स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितङ्गमाः ॥ ८८ ॥
शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।
करेणुः सिन्धुरः—

त्रिंशदिति । गजति माद्यति गजः[1] । अच् । मतङ्गादपेक्षितो मतङ्गजः । "सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्डः"[2] । हस्तो विद्यतेऽस्य हस्ती । "जातौ तु दन्तहस्ताभ्यां कराच्चैव इनेव हि" । वारयति परान् शत्रून् वारणः । न एकेन पिबत्यनेकपः । करोऽस्यास्य करिन् । इडन्तोऽपि करिः । दन्तो विद्यतेऽस्य दन्ती । स्तम्बे तृणे रमते स्तम्बेरमः । "स्तम्बकर्णयो रमिजपोः" अच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य कुम्भी । द्वौ रदौ यस्य द्विरदः । एति गच्छति शत्रुसम्मुखमितीभः । 'इणो यण्' भत्ययो भवति स च कित् । मितं गच्छतीति मितङ्गमः । "गमश्च"[3] खच्प्रत्ययः । 'इच्छा वयोर्मोन्तः'[4] । शुण्डां लाति गृह्णातीति, शुण्डालः । साम्नः सामवेदस्य जातः सामजः । नगे पर्वते भवो नागः । मन्यते अनेन मातङ्गः । पुष्करं विद्यतेऽस्य पुष्करी । द्वाभ्यां पिबति द्विपः । करोति कार्यं करेणुः । 'कृञ्भूभ्यामेणुः' प्रत्ययो भवति । स्यन्दते स्रवति मदं सिन्धुरः[11] । दन्तावलः । पद्मी[12] । पीलुः । कालिङ्गः ।

तेषु यन्ता याता निषाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपकः । यच्छतीति यन्ता । यातीति याता । निषीदति हस्तेऽयमसौ निषादी । गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि नामानि । अपिशब्दात्—आधोरणः । हस्तिपः । हस्त्यारोहः । गजाजीवः । महामात्रः ।

नागारिः कण्ठी[13] (ण्ठि) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिंहे । नागारिः । गजरिपुः । मतङ्गवैरी । हस्तिभिद् । वारणवैरी । अनेकपदमनः । करिरिपुः दन्तिवैरी । स्तम्बेरमरिपुः । कण्ठीरवस्थाने कंठेरव पाठः । कुम्भिवैरी । इभवैरी । मतङ्गमरिपुः । शुण्डालरिपुः । सामजद्वेषी । नागारिः । पुष्करिरिपुः । द्विपवैरी । करेणुरिपुः । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि सर्वाण्यपि नामानि सिंहस्य भवन्ति । कण्ठे रवो ध्वनिर्यस्य कण्ठीरवः ।

1 गजति माद्यति मत्तो वा भवति वा गजः । 2 पा सू ३।२।९७। 3 पा सू ३।२।४७। वृत्तिः । 4 पा सू ३।३।१५। 5 पा उ सू ४।२५। 6 पा सू ३।२। ४५। 7 पा सू ४।२। 8 शुण्डाऽस्यास्तीत्यपि । आविष्टलिङ्गा सप्तम्यन्तास्याम् पा सू ५।२।९६। इति मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः । 9 सामवेदो हि गीतिरूपः । तत्स्वरोच्चारणसमकालं हस्तिनो जाता अभवन् । यथाभाष्यमनजाद्दे अवर्णितम् । गीतस्य तत्र सामगानमिति । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति श्रुतिः । प्रमाणान्तरमपि मृग्यम् । करेणुश्चारम् विधिर्गजान् सर्वे । तस्मात् गजस्यास्यैतज्जाता इति । 10 पा उ सू । । 11 स्यन्दतेरुम्प्रत्ययः सकारस्य सिकारश्च मदमित्यर्थमित्यनोन । 12 पद्म धन्वन्तरि १५।१४२। स्मरणम्—"पद्मी पद्मक्षणी पद्मी पद्मवर्णो मतङ्गजः" । इति । 13 कण्ठीरवः मुनिनाम कण्ठीरव इति पाठः प्रतिभाति । कण्ठो यस्येत्येकारस्य इकारे विशेष ।

"[1]वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

इत्यनेन एकारस्य ईकारः । मृगाणां चतुष्पदानां मध्ये इन्द्रः मृगेन्द्रः । केसराः स्कन्धकेशाः सन्त्यस्य केसरी । क्रमप्राप्ते हरति [2]हरिः । पञ्चाननः । हर्यक्षः । नखरायुधः । मृगरिपुः । सिंहः ।

व्याघ्रश्चमूरः शार्दूलः—

घ्रो व्याघ्रे । व्याजिघ्रति प्राणान् उणादयो व्याघ्रः । चमति भक्षयति पशून् चमूरः । परान् शृणाति हिनस्ति [3]शार्दूलः । द्वीपी । पुण्डरीकः । तरक्षुः । चित्रकायः । मृगारिः ।

शरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ६० ॥

शरभोऽष्टापदे । शृणाति हिनस्ति शरभः । "[4]कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्" । अष्टौ पदान्यस्य अष्टापदः । अष्टौ पादा अस्यासौ अष्टपात् ।

क्रोडो वराहो दंष्ट्री च घृष्टिः पोत्री च सूकरः ।

क्रोडो (षट्) शूकरे । पङ्कमध्ये क्रुडति क्रोडः । वराहारोऽस्ति वराहः[5] । दंष्ट्रा सन्त्यस्य दंष्ट्री । घर्षतीति घृष्टिः । घृष्टिः । पूङ् पवने । पू । पौ । पूञ् पवने वा । [illegible] । उणादयो । पूयतेऽनेनेति पोत्रम् "[6]हलसूकरयोः पुवः ष्ट्रन् । समासः । नाम्नस्तदुक् । वि नश् । पोत्रमस्त्यस्य पोत्री । सुते प्रसूते बहूनि, सूयते वर्धते वा पीनत्वेन सूकरः । शूकरश्च । दन्तायुधश्च । कोलः । किरिः । किटिश्च ।

उष्ट्रो मयः शृङ्खलिकः करभः शीघ्रगामुकः ॥ ६१ ॥

पञ्चोष्ट्रे । उष्यते दह्यते मरौ उष्ट्रः । "[7] सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्" । मयते गच्छति मयः[8] । मयति हृत्येके । शृङ्खलं बन्धनमस्य शृङ्खलिकः[9] । के शिरो रमते उष्ट्रमस्तीति करभः । करभश्च । शीघ्रं गच्छतीति शीघ्रगामुकः । दासेरकः । दीर्घग्रीवः । क्रमेलः । [illegible] (धूसर) ।

कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः ।
जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुक्कुरो रात्रिजागरः ॥ ६२ ॥

नव सारमेये । कुले यो भवः कौलेयः[10] (कः) । सरमाया अपत्यं सारमेयः । मण्डते भाति मण्डलः । चौरादीन् श्वयति गच्छति श्वा । श्वानोऽप्यन्योऽपि । पुरो गच्छति पुरोगतिः । [11]जिह्वया शरीरं

---

१ 'पृषोदरादय' इति पा० सू० ६।३।१०९। काशिका । २ प्राणान् हरतीत्येषा व्युत्पत्तिः । ३ शृणाति शारयतीति शार् । क्विप् । दूल्यते इति दूलः । अन्तर्भावितण्यर्थो दूल् । शार् चासौ दूलश्चेति विग्रहः । ४ उ० सू० ३।१२२। ५ 'कुड बाल्ये' । क्रोडनं पङ्के क्रोडोऽस्यास्तीति क्रोडः । "वराहाराय" इति रामाश्रम । ६ वराहोऽस्तीति वर आहारो यस्येति वा पृषोदरादित्वात् । ७ उ० सू० ४।१६२। ८ सुखं प्रसवं करोतीति । सुकोऽस्त्यस्य सूकरः वा शरीरमतात् । सूर्कं राति वा । सू इत्यव्यक्तध्वनिं करोति वा । ९ मयि इच्छति कर्णविधावन मरुभूमि वा इति उष्ट्रः । 'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' इति उ० ४।१६३। सूत्रे दुर्गसिंह —"यथा कान्ती । करीति उष्ट्रः करभः । अस्य पृषोदरादित्वात् निपातनात् सत्वं च" । इत्याह । १० उ० सू० ४।१६९। ११ मीनात्यहीन् मयः । 'मीञ् हिंसायाम्' । पचाद्यच् । इति वा । १२ शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे पा० सू० ५।२।७९। इति कन् । तेन शृङ्खलकः इति साधु । 'स तु शृङ्खलकः काष्ठमये स्यात्पादबन्धनैः' । इति अभि० चिं० । १३ "कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु" पा० सू० ४।२।९६। इति श्वार्थे ढकञ् । १४ जिह्वया रसनया पिबतीति विग्रहः कुत्वः । जिह्वया शरीरं पादौ चापि सम्मार्ष्टि ।

पाति रक्षति विड़ाप । ग्रामस्थो शानू वा ग्राम ग्रामशानूक । कुक् शब्दं करोतीति कुक्कुट[1] । कुर् शब्दे । कुकुरथ । रात्रौ जागर्ति रात्रिजागरः । लेडूका । शुनकः । भषण । मृगदंश । शालावृक ।

इम चाटापद स्वर्णं कनककार्जुनकाञ्चनम् ।

सुवर्णं हिरण्य भर्म जातरूप च हाटकम् ॥ ६३ ॥

तपनीय कलधौतं कार्तस्वरशिलोद्भवम् ।

पञ्चदश स्वर्णे । हिनोति वर्धतेऽनेन हेमन् । नान्तम् । अदन्त हेमं च । अष्टसु लोहेषु पदं प्रति ष्ठास्य अष्टापदम् । "अष्टनः संज्ञायाम्" इति दीर्घ । शोभनो वर्णोऽस्य स्वर्णम् । उकारलोप । अथवा समासे वर्णस्य वा वलोपमाहुः । यथा पञ्चार्णो मन्त्र । कनति दीप्यते कनकम् । "कनिचनिष्यामक[3]" । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । अर्जं अर्ज अर्जने । अर्जतीत्यर्जुनम्[4] । "अर्जुनवर्मि" ज्ञर्वाद्युत उना । काञ्चति शोभां बध्नाति काञ्चनम् । शोभनो वर्णो यस्य सुवर्णम् । उभयम् । पुण्यं विद्यते हिरण्यम् । अथवा लोहात् त्यागे । दीपने हिरण्यम् । हो[6] हिरण्य" अस्मादस्य प्रत्ययो भवति हिरण्यरेफस्य । भ्रियते धार्यते नान्तम भर्मन् । अदन्तं च भर्मम् । जातं रूपं यस्य जातरूपम् । त्रिलिङ्गे । तथा च वराहमिहिरे— "असाह्यसाहोऽपि जातरूपवहः ।" इति हाटकम् । हट दीप्तौ । अग्निना तप्यते तपनीयम् । कला धावति गच्छति कलधौतम् । कृतस्वराकरे भव कार्तस्वरम् । शिलायाः पाषाणात् उद्भवो यस्य शिलोद्भवम् । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । रुक्मम् । चामीकरम् । महारजतम् । जाम्बूनदम् । रुक्मम् । कल्याणम् । गैरिकं । अष्टापदं च ।

रूप्य रजत गुलिका—

त्रयो रूप्ये । रूप्यते कला भूष्यतेऽनेन रूप्यम्[11] । रज रजति रजतम् । रज्यते हेम्ना रक्तं वा । गुड रक्षायाम् । गुडति रक्षति अग्नात् क्षयात् गुलिका । गुलिका च । कलधौतम् । तारम् । सितम् । दुर्वर्णम् । खर्जूरम् । श्वेतम् ।

मुक्तिज मौक्तिकं तथा ॥ ६४ ॥

द्वौ मौक्तिके । शुक्त्या जलादिवातोपकरणविशेषाज्जातम् शुक्तिजम् । मुक्तानां समूहो मौक्तिकम् । समूहार्थे इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वापतेयं ग्रन्थिरणं धनम्—

कलत्र

दश धने । विन्दति पुण्यकृत वित्तम् । बाहुल्येन मुनसो विन्दतन्नरकीर्तिना । "विद्लृ लाभे ।" विद् । विद्यते स्म भुज्यते (स्म) वित्तम् । निष्ठाक्तः । "वित्तमवित्ता"[12] शब्दास्वनर्थभोगेषु" वित्तमिति

---

१ कुक इति शब्दं कुरति उपागच्छतीति विग्रहः । प्रत्युषकालव्यञ्जक । यद्वा कीयते रुच्यादिकमादत्ते कुक । "कुक आदाने" । क्विप । कुरति शब्दायते कुर । कुक चासौ कुरश्चेति विग्रहः । २ पा सू ३।१।१२५ । ३ का उ सू ३।४६ । ४ अथवा पुण्यैरर्जुनम् । ५ का उ सू २।६ । ६ का उ सू ३।३। ७ अनुतप्तरूपमित्यर्थ । अथवा प्रशस्तं जातं जातरूपम् । प्रशंसायां रूपप्प्रत्यय । ८ सुवर्णमुनिकाभे धा । ९ हाटकात्प्रभवत्वाद् वा हाटकम् । १० कला सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यस्मादिति कलधौतम् । ११ रूप रूपक्रियायाम् । ण्यन्त । यत् प्रत्यय । १२ का सू ४।६।११४।

निपातः। निपातस्येह न भवति। 'ह्रस्व'[1] च' तो नी न भवति। वसति सुखमनेन वस्तु। "कमि[2] मनिजनिचसिसिभ्यश्च" एभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवति। वसति सुखमनेन वस्तु। "पद्य[3]सिचसिहनिमनि नपीन्दिकम्दिचनिभ्यश्चाभ्यश्च" एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति। द्रूयते गम्यते द्रव्यम्। परं स्वति वस्तं नवति यथवा पुण्यं स्वनति स्वः[4] स्वम्। उभयम्। पुण्यकृतमियर्ति अर्थम्। गुणान् राति रैः। 'राते'[5]र्डैः। श्रीदो। द्रूयते गम्यते द्रविणम्। दधाति धारयति धारस्व धनम्। कश गतौ। कशतेरेवं इति कस्वरम्। "[6]कृशिपिशिधाधीश्चाभ्यश्च" वरप्रत्ययः। पुर्न। धारम्। स्वापतेयम्। ऋक्थम्। रिक्थम्। हिरण्यम्। विभवः।

सत्पतिं प्राहुः कुबेरं चैकपिङ्गलम् ॥ ६५ ॥

वैश्रवणं राजराजमुत्तराशापतिं तथा।

अलकानिलयं श्रीदं धनपर्यायदायकम् ॥ ६६ ॥

धन कुबेरे। तस्य पतिः सत्पतिः तं कुबेरं प्राहुर्वन्ति। वित्तपतिः। वसुपतिः। वसुपतिः। द्रव्यपतिः। स्वपतिः। अर्थपतिः। रा(रै)पतिः। द्रविणपतिः। धनपतिः। कस्वरपतिः। इत्यादिपर्यायनामानि कुबेरस्य ज्ञातव्यानि। कुत्सितो बेरो देहः कुत्सितशरीरस्य च कुबेरः। पिङ्गलैकनेत्रत्वादेकपिङ्गलः। विश्रवसोऽपत्यमपि शिवादित्वात्। यथोक्तो वैश्रवणः। राज्ञां यक्षाणां राजा राजराजः। उत्तराशायाः पतिः उत्तराशापतिः। अलका निलयो यस्य अलकानिलयः। श्रियं ददाते श्रीदः। धनपर्यायदायकः। धनदायकः। धनदः। वित्तदायकः। वित्तदः। वसुदायकः। वसुदः। द्रव्यदायकः। द्रव्यदः। स्वदायकः। स्वदः। रैदायकः। रैदः। द्रविणदायकः। द्रविणदः। कस्वरदायकः। कस्वरदः।

राष्ट्रं जनपदो निर्गो जनान्तो विषयः स्मृतः ॥

पञ्च जनपदे। राजते राष्ट्रम्। तथा च सोमनीतौ[7]—"पशुधान्यहिरण्यसंपदा राजते शोभते इति राष्ट्रम्"। जनी प्रादुर्भावे। जन्। जायते कश्चित्संसर्गे प्रसूयते। "जनेश्च"[8] "इनौ"[9]इन् प्रत्ययः। 'अस्येव दीर्घः'। जानिरिति जानम्। 'जनिवध्योश्च'[10] ह्रस्वः। धनि जातम्। जनयन्ति प्रजां जनमिति जना। जन् पचादित्वे 'अच् प्रत्ययः'। 'आदित्वात्'[11] आदिलोपः। पद गतौ। पद्। जनैर्वर्णाश्रमलक्षणैः पद्यते गम्यते प्राप्यते आश्रयत इति जनपदः। जन् पचादेः[12] अच् प्रत्ययः। जनपद इति जातः। तथा च सोमनीतौ—"[13]वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा स्थानमिति जनपदः"। निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गः। निर्गो[14] देशोऽधिकरणे इति डप्रत्ययः। देशान्तरम्—निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो गिरिः। जनानामन्तो निकटं जनान्तः। षिञ् बन्धने। 'आतो'[15] प सः ति विषुः। विषिण्वन्ति यस्मिन्निति विषयः। पुंसि संज्ञायां[16] घः प्रायेण[17] गुणः। 'ए'[18] अय्। तथा। च सोमनीतौ—विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्मानि गजान् तुरगान् सिनोति बध्नातीति विषयः।

पूः पुरी नगरं चैव पत्तनं पुटभेदनम् ॥ ६७ ॥

---

[1] का सू ४।६।१ २। [2] का उ सू ११२७। [3] का उ सू ११६। [4] 'धौऽर्थ कर्मणि। डप्रत्ययः। 'स्वन शब्दे' डप्रत्ययो वा। [5] का उ सू २१२३। [6] का सू ४।४।१७। [7] जन सम ११८ [8] का सू ३।२।१। [9] का सू ३।४।६७। [10] का सू ४।२।५८। [11] का सू ३।६।४४। [12] पञ्चमे डविधानम् पुंसि संज्ञायां घः इति कर्मणि डप्रत्ययः पचादौ वा पठनम्। न तु पचादौ तस्य कर्तरि विधानात्। [13] जन सम ५। [14] दे ग ५।१।१२१। [15] का सू ३।८।२४। [16] का सू ४।५।२६। [17] का सू ८।५।१। [18] का सू ३।२।१२। [19] जन सम ३।

पट् (पत्र) नगरे । प पालनपूरणयोः । पृ । क्विप् । पूर्णातीत्येषशीला पूः । "[1]क्विब्वचिप्रच्छि ... वाम्" क्विप् । "[2]उदोष्ठ्यपूर्वस्य" च उर् । पुर् जातम् । "[3]नामिनोपधायाः ... पुर् । पेर्नौर"[4] । सि । "[5]हल्ङ्याब्भ्यो ..." सिलोपः । "[6]रेफवोर्विसर्जनीयः" रस्य विसर्गः । पूः । पुरस्यां । पुरं पुरी च । इदन्तोऽपि पुरिः । नगाः सन्त्यत्र प्रासादास्य नगरस्यात्र वा नगरम् । क्लीबे । नगरी च । नानादिग्देशागतानां वणिजां भाण्डानि पतन्त्यत्र पत्तनम् । पट्टनं च । अत्र स्मृतिभेदः—

"पट्टनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा ।
नौभिरेव तु यद्गम्यं पत्तनं तत्प्रचक्षते ॥"

पुटा जाता भिद्यन्तेऽत्र पुटभेदनम् । क्लीबे । अधिष्ठानम् । निगमः । ... । स्थानीयम् ।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम् ।

वच परिभाषणे । उच्यतेऽनेन वक्त्रम् । "[8]सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्" । रप् लप् व्यक्तायां वाचि । लप्यतेऽनेन लपनम् । अस् । अस्यतेऽभिधास्यम् । "[9]..." वद व्यक्तायां वाचि । उद्यतेऽनेन वदनम् । महति मुखति स्तोभैश्च वा मुखम्[10] । खन्यते वा मुखम् । उणादौ । खुद तु तक्रियाम् । चौरादिकत्वादिन् । मुखयति प्रभाविलासमेनेति मुखम् । मुखेः[11] को मुखिरच" । मुखे कः प्रत्ययो भवति धातोर्मुखिरच । हकार उच्चारणार्थः । आ अनिति श्वसित्यनेन आननम् । तुण्डम् ।

श्रवणं श्रोत्रं श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुतिं विदुः ॥ ६८ ॥

श्रु कर्णे । श्रूयतेऽनेन श्रवणम् । श्रूयतेऽनेन श्रोत्रम् । क्लीबे । शब्दोऽनेनेन ... श्रवः । क्लीबे । करोति शब्दावधानं करणः[13] । कर्णयति वा कर्णः । किर ... कर्णमिदं । श्रूयतेऽनया श्रुतिः । स्त्रियाम् । विदुः कथयन्ति ।

दृगक्षि चक्षुर्नयनं दृष्टिर्नेत्रं विलोचनम् ।

दृश नेत्रे । दृश्यतेऽनया दृक् । तालव्यान्तः । अश् व्याप्तौ । अश्नुते व्याप्नोत्यनेनात्मा पदार्थान् गनिति अक्षि । "[14]अशिरुहिभ्यां क्सि" । चक्ष इत्याकृष्य चान्तम् चक्षुः । "[1]... उसि" । नीयते चित्तं विषयेषु अनेन नयनम् । दृश्यते प्रकाशार्थोऽनया दृष्टिः । नीयतेऽनेन दृश्यं नेत्रम् । उभयम् । विशेषेण लोक्यते अवलोक्यतेऽनेन विलोचनम् । अम्बकम् । तारका । ज्योतिः ।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम् ॥ ६९ ॥

तस्य नेत्रस्य वैकृते पट् (पत्र) । कटयतीति [1]कटाक्षम् । उभयम् । क (शिरसि)

---

१ का सू ४।४।९७। २ का सू ।३।५।४१। अकारस्योत्वम् । ३ का सू १।८।१४। इति दीर्घ । ४ का सू ४।१।१४। ५ का सू २।१।४२। ६ का सू २।३।६३। ७ 'नगरास्तु पाण्डुम्यथेति' पा सू ५।२।१ ७। वार्तिकेन मत्वर्थीयो रः । अथवा मत् वातोरीत्यादिकोऽप्यत्वतः शास्य पक्षे च । ८ का उ सू ४।१।१। ९ अस्यत्यस्तेऽस्मादिना अन्नमस्यतीति । १० 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति का सूत्रम् । ४।५। २। टीकोक्तप्रयाणसूत्रम् पाणिनीयम् ३।३।११३। ११ खन्यतेऽवदार्यते खनादिकमनेनेत्यपि । 'डित्वमेतद् धोवातः उ अप् म च डित् मुखागमश्चेत्यत्र । मुखि तानि खानीन्द्रियाण्यनेनेत्यर्थ' इति क्षीर स्वा । १२ का०उ सू ६।६५। १३ टीकोक्तमिदं करोतेरौणादिको प्रत्ययः । कीर्यति शब्दप्रवाह क्षिप्यते कीर्यति शब्दोऽस्मिन्निति वा किरति शरीरे मलमिति वा । १४ का उ सू ६।५७। १५ का उ सू २।४६। १६ कटऽतिशयितोऽक्षिणी यत्र कटं गण्डमपांगं व्याप्नोति चेति रामाश्रमः । कटं व्याप्नोतीति क्षीरस्वामी ।

क्षिपति विक्षेपं क्षिपतीति (करोतीति) वैकरः । न पाति कामिनमपाङ्ग [१] । उमचम् । विभ्रमश्च विभ्रमः । विकृतस्य भावो वैकृतम् ।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्ठे वर्णितो दशनच्छदः ।

चत्वारश्चतुर्षे ओष्ठे । दन्तानां वासो दन्तवासः । धरति शोभामधरः । 'अधो[२] भवोऽधरो वा । ओष्ठाभ्यां तद्रिताधरो वा । अधरोऽप्योष्ठमात्रे वर्तते' । उपति दहति उष्णमोष्ठः । उष्यते तीक्ष्णाहारैरोष्ठो वा । वर्णितः कथितः । दशनस्य छदो [३]दशनच्छदः ।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धम ॥ १०० ॥

षड् गले । शिरो धरति शिरोधरः । शिरोधरा च । गलति भोजनं गलः । ग्रसति गिरति वा ग्रीवा । उभार्दौ गुरुत्वे ग्रसतीति ग्रीवा । शर्वग्रीवाग्रीवाः[४] एते कन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कणति कण्ठः । कण्ठः[५] अस्मादुपस्थी भवति । धमः शोषी वायुः । धम्यतेऽनया धमनिः । ह्रस्वः । शिरामीः । धमनी । धमति धमः । मन्या । कन्धरा ।

दोर्दोषा च भुजो बाहुः–

चत्वारो बाहौ । दम्यते विनीयते पराऽनेन दोः । दान्तम् । 'दमेर्डोस्' । दूषयति दुष् वा इति दोषा । आरब्धः । भुजः । भुज्यते । भुज्यतेऽनेन भुजः । निपातनात् चयोः कत्वं न भवति । नामिन इति गुणश्च न भवति । भुजन्युब्जौ पाणिरोगयोः इत्यस्मिन्नर्थे निपातनात् । भुजा च । बाहलत्येनेति बाहुः । 'बाहिरबाहि' (रहि) तस्मि पतिम्य उप् । प्रबाह ।

पाणिर्हस्तः करस्तथा ।

त्रयो हस्ते । पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः । [१०]'अविकम्पतिरशिपणिम्य' एभ्य इन् भवति । हसते हस्तः । [१] हसेस्त । कीर्यते क्षिप्यतेऽनेन करः । शयः । शम[११]इत्यन्यः । पञ्चशाखः ।

प्राकुर्बाहुर्षिरोऽस्य च–

प्राकुर्पिरस्तो ऽस्य इति वंशो प्राकुः कथयन्ति । प्रसते प्रागेवास[१२] । स्कन्धः ।

हस्तशाखा कराङ्गुलिः ॥ १०१ ॥

द्वौ अङ्गुल्याम् । हस्तस्य शाखा इव हस्तशाखा । पाकुङ्कलादिकर्माणि अङ्गुलि गच्छति अङ्गुलम् । अङ्गुलीते । अङ्गुली । करस्याङ्गुलिः[१३] कराङ्गुलिः । एवमङ्गुरम् । अङ्गुरी ।

नासा घ्राणम्–

---

१ अपाङ्गलीन्यपाङ्ग । 'अपि गतौ' । अम् । २ 'अधो भवा' इत्यारभ्य वर्तते इत्यन्तं धीर स्वामिभाष्यमभीष्टतम् । तद्भाष्ये ओष्ठाधरौ तु' इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्यानपम् 'ओष्ठाभ्यां तद्रिताधरो इति वाक्यमन्याङ्गुरयोनाभीदृशमग्रस्तुतमिति विवेकः । ३ दन्तावस्थायन्तेऽनेनेति वदाच्छः । पु लि संज्ञायां घः । ४ का उ सू २।२। ५ का उ सू १।४९। ६ का उ सू २।१९। ७ का सू ४।६।६४। ८ का उ सू १।१। ९ का उ सू ७।६। १ का उ सू ४।२७। नृयुपा इत्यमिरभिन्नपुष्पस्काः इति पूर्णे वचम । ११ अत्र प्रमाणम्— 'पाणि' शयः शमी हस्त' इत्यमरमाला । "पञ्चशाखः शय शम इति अभि चि । १२ प्रसते क्रमादन्यत इत्यर्थः । "प्रश कम वावे । प्रश पानुभुरादि । यद्वा 'अम गतौ' अमति अम्यते वा अंस । औणादिक स्त्प्रत्यय । १३ अङ्गुल इस्वम अङ्गुम्स का उ सू १।४८। इत्यङ्गुवातोस्त्मप्रत्यय । अङ्गुलिशब्दे तु अङ्गतिभ्यामुलीथि का उ ३।१। इत्युलिप्रत्ययः । क्षियप्यी । अङ्गुली इत्यपि ।

द्वे नासिकायाम्। नासते शब्दायते नासतेऽनया वा नासा[1]। नस्या[2] च। लिङ्गत्रयेण प्राप्यम्। क्लीबे। शिङ्घिनी। नासिका। घोणा।

उरो वक्षः

द्वे भुजमध्ये। ऋच्छति गच्छति उरः[3]। [4] 'अर्तेरुच्च' अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति। वक्ष रोषे। वक्ष्यते भ्रमतीति वा। वक्षति बाधते वक्षः। "वचेः" सोऽप्यत्र" अस्मादसुन् प्रत्ययो भवति सोऽन्ता। सकार उच्चारणार्थः। [6]'चवर्गस्य कि'। निमित्ताद्वि' स्यादिना षत्वं च।

कुक्षिः स्याज्जठरोदरम्।

त्रयो जठरे। कुष्यति (कुष्णाति) निष्कर्षत्याहारं कुक्षिः। पुंसि। कुक्षम्। क्लीबे। जनयति जठरम्। अथवा जन गतौ जोऽप्यत्र धातुः। उणादौ निपातोऽस्ति। उनत्ति क्लेदयत्याहारमुदरम्। एते उभयम्। पिचण्डम्। तुन्दम्।

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोजः इति वर्णितः ॥ १०७ ॥

चत्वारः कुचौ। स्तन्यते शब्दे स्तनः। पयो धरतीति पयोधरः[1]। कोचते स्त्री मृत्रमानेऽत्र कुच्यते मर्दनेन सङ्कुचीक्रियते वा कुचः। कूचम्। वक्षसि जातौ वक्षोजः। उरसिजः। वक्षोरुहः।

कटिर्नितम्बं श्रोणी च जघन—

चत्वारः कट्याम्। कटयते वस्त्रैराच्छाद्यते कटिः। कटी। कटः। कटम्। नितरामतिशयेन तम्यते काङ्क्ष्यते[11]नितम्बः। श्राभीयते कामिभिः श्रोणः। नद्यादित्वाद्ङीप्। श्रोणी। "स्त्रीत्वेऽपि मारिः[12]। शिवामी। श्रोणी। हन्ति चित्तमिति जघनम्। 'हन्तेर्जश्च'। चकारात् काञ्चीपदम्। ककुद्मम्। कलत्रम्। जघनम्। ककुद्मती। आरोहः। कटीरम्। त्रिकस्थानकम्। स्थानपदाभावेऽपि त्रिकम्। कलत्रं च।

जानु जङ्घे च।

द्वौ जान्वाः। जायते जानुः[14]। "कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूदृसनिजनिचरिचटिभ्य उण्"। जनाति [15]जङ्घः। अष्ठीवान्। जङ्घा [17]।

चलन चरणो पादं क्रमोऽङ्घ्रि पदं विदुः ॥ १०८ ॥

१ 'णास शब्दे'। नास् धातुः। अच् प्रत्ययः। २. नेयमतोऽन्यत्र समुपलभ्यम्। ३ ऋच्छति गच्छति वक्षेनेति शेषः। अथवा उरस् वक्षार्थो कण्ठादिः। उरस्यति वक्षमायते उरः। क्विप्। ४ का उ सू ४।१८७। ५ का उ सू ४।१९२। ६ का सू ३।६।५५। चवर्गस्य किरसवर्णे। इति पूर्ण सूत्रम्। ७ का सू ३।८।२६। 'निमित्तात्प्रत्ययविकारागमस्थः सः षत्वम्' इति पूर्णं सूत्रम्। ८ "कुष निष्कर्षे" "प्लुषिकुषिभ्यां क्सि' का उ सू ६।५७। ९ "स्तन गदी शब्दे' स्तनति कथयति यौवनोदयम्। स्तन्यन्ते चर्व्यते कामुकैर्वा स्तनः इत्यन्यत्र। १० धरतीति धरः। पचाद्यच्। पयसो धरः पयोधरः। इति षष्ठ्याम्। टीकोक्तविग्रहे तु कर्मण्यपि पयोधार इति स्यात्। ११ तम गतौ" नितम्यति कान्क्षतीति नितरां तम्यते कामुकैः नितरां ताम्यति सुरतश्रमादनेन नितम्बः इति रामाश्रमः। १२. श्रूयते किङ्किणीध्वनिरत्र "श्रु श्रवणे" श्रोणादिको णिः। इति हेमचन्द्रः। श्रोणृ सङ्घाते" श्रोणति विविधावयवैः सङ्घातीभवतीति श्रोणिः। "सर्वधातुभ्य इन्" इति रामाश्रमः। [illegible] का उ सू २।१७। १५ जायते ऽनेनाकुञ्चनादि जानुरिति हेमचन्द्रः। १६. का उ सू २।१। १६ नाम कोशान्तरप्रमाणमुपलभ्यम्। १७. यद्यपि जानोरध आगुल्फान्तं जङ्घा जङ्घाजघनयोः सन्धिर्जानुरिति भेदः। तथापि जङ्घासामीप्यात् भेदाविवक्षया जानुपर्यायो जङ्घाग्रहणम्। तत्र भेदस्तु न विवक्षितः।

पद् चरणे । चाल्यते चलनम्[१] । चरत्यनेन चरणम् । पद्यतेऽनेन पादः । पत् । दान्तोऽपि पाद् । 'क्रमु पादविक्षेपे' । क्राम्यत्यनेनेति क्रमः । 'अहि गतौ'[२] । इदनुबन्धत्वान्नुमागमः अंहत्यनेनेत्यंह्रिः । [३]अंहेरिः अंहेर्धातोरिप्रत्ययो भवति । अंह्रिरपि । पद्यते पदम् । क्लीबे ।

शिरो मूर्धोत्तमाङ्गं कम्—

चत्वारो मस्तके । शॄ हिंसायाम् । शीर्यते हिंस्यते शिरः । [४]"शीर्यतेर्शिराभ्यो मन्" एभ्योऽसुन् प्रत्ययो भवति स च मकः । तेनागुणः । अनुपस्वीपः । मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः । मूर्च्छन्त्य मारुताः प्राणिनो मूर्धा । [५]पृषोदर —"पूषन्नर्यमन्मघवन्युवन्श्वन्भ्रूणहन्मातरिश्वन्प्लीहन्दीर्घन् मूर्धन्पूषन्" एते कनन्ता निपात्यन्ते । उत्तमं च तद् अङ्गम् उत्तमाङ्गम् । कै गै शब्दे । कायतीति कम् । शीर्षम् । मस्तकं । कन्याङ्ग च नानार्थे ।

प्रास्य प्रेरितेरितम् ।

अस् प्रेरणे । प्रास्यते प्रास्यम् । [६]"ऋहलोर्ण्यत्" यः प्रत्ययः । ईर गतौ कम्पने च । प्रेर्यते प्रेरितम् । ईरितम् । [७]"नपुंसके भावे क्तः" ।

साम्प्रतं सरस्वतीनामानि प्रारम्यन्ते आचार्यश्रीमदमरकीर्तिना—

वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती ॥ १०४ ॥

वच भाषणे । उच्यते वाक् । [८]"क्विब्वचिप्रच्छिश्रिद्रुस्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च" एभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति दीर्घश्चासम्प्रसारणं चैषाम् । वक्ति यथा । सर्वधातुभ्योऽसुन् । उच्यते वचनम् । वण्यते वाणि । [९]वाणी । बिभर्ति जगत् धारयति, भरतो ब्रह्मा तस्येयं भारती । तथा च—

'भारमपि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ वाचे च भरतरागस्य ।

बहुति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥'

गीर्यते उच्चार्यते शब्दं गीः । सरः प्रसरणमस्त्यस्याः सरस्वती । ब्राह्मी । तथाहि—

गौर्गीः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।

दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति ॥

सिंहद्विपघने गर्जः—

सिंहे कण्ठीरवे द्विपे गजे घने मेघे च गर्जः[११] शब्दः कथ्यते । गर्जनं गर्जः ।

हेषाऽश्वे

अश्वानां शब्दे हेषा । हेषणम् । हेषा हेषा च ।

बृंहितं गजे ।

गजशब्दे बृंहितम् । गर्जनम् ।

स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषे—

---

१ चलत्यनेनेति चलनमिति युक्तः । २ अभिधानचिन्तामणिः प्रमाणम् – 'चरणा रमणाः पादः पदोऽङ्घ्रिश्चरणः क्रमः' । इति । ३।२८ । ३ का उ सू ४।५९। ४ का उ सू २।५। ५ अत्र प्रमाणान्तराभावः । कप्ङ्ग कन्योपाङ्गमिति वा स्यात् । ६ का सू ४।२।११। ७ का उ सू २।११। ८ उच्यते वच इति कर्मणि विभक्ति युक्त । ९ का उ सू ४।५६। १० वण शब्दे' चुरादि । ११ सिंहगजमेघाश्च सर्वशब्दाः प्रयुज्यन्ते । एवं धनमात्रवाचकशब्दानां सर्वत्र बोध्यम् ।

धेनुकलमे शिशुवत्से स्फीतकृत[1] स्फीत्शब्दः कथ्यते ।

स्तमित जलदं तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेघे मेघानां शब्दे स्तमितं कथ्यते । स्तम्यते स्तमितम् ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटं च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे चीत्कृतं कथ्यते । मन्त्रे भटे च हुंशब्दः कथ्यते । हु मन्त्रे हुं परिप्रश्ने हुं तर्के हुं हु ते मयादी रावसीऽयम । कुत्सने हुं निलज्जा । अनिच्छायाम् हुं हुं गुम ।

सीत्कृत मणितं कामे–

कामे कन्दर्पभोगव्यस्तावशब्दे सीत्कृतं मणितम् । सीत्क्रियते सीत्कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खनत्कृतं भ्रुकुटायुधे ॥ १०६ ॥

भ्रुकुटाऽयुधे खनत्कृतम् । गुणम् ।

मञ्जीरक तुलाकोटिर्नूपुरं–

यस्य स्त्रियो चरणाभरणे । मञ्जि शौचे । मञ्जत्याकर्षति चित्तं मञ्जीरम् । अथवा मञ्जु मधुर मीरयति मञ्जीरम् । तुलाकृतेर्बहुला कोटिरिव तुलाकोटिः । नौमर्ति नौतीति नूपुरम्[2] । शिञ्जिनी । पादकटकः । हंसकम् । पदाङ्गदम् । कलापो नानार्थे ।

तत्र सशुतम् ।

तत्र तस्मिन् मञ्जीरके तच्छब्दे सशुत कथ्यते ।

प्राकृत चाथ मरुति–

मरुति वायो तच्छब्दे प्राकृत कथ्यते ।

क्रेङ्कृत क्रौञ्चहंसयो[3] ॥ १०७ ॥

क्रौञ्च हंसश्च क्रौञ्चहंसौ तयोः क्रौञ्चहंसयोः क्रेङ्कृतशब्दो मतः कथितः । तथा[4] चामरसिंह –

'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥

तथा च भरतनाट्ये[5]–

[6]"षड्जं मयूरा ब्रुवते गावस्त्वृषभभाषिणः ।

अजाविकं तु गान्धारं क्रौञ्चाः क्वणन्ति मध्यमम् ॥

पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् ।

धैवतं ह्रेषते वाजी निषादं बृंहते गजः ॥

नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संश्रयन् ।

षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः ॥

१ नवप्रसूता गौ धेनु शिशुशब्दो हस्तिशावकः वत्समल्पायी शब्द स्फीतकृत्वमुच्यते इति ग्रन्थार्थः । टीकाकारस्तु गोवत्सशब्द स्फीतकृतमित्येव प्रतिभाति । अन्य कोशान्तरप्रमाणाभावात्कवि-प्रयोगादर्शनाच मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २ तुलां तुलया वा कोटयति । कुट प्रतापने कुटादिः । अच् इः । यद्वा तुलाकारः कोटिरग्रमस्येति रामाश्रमः । ३ नुवन् नूयते वा नूः । णू स्तवने । क्विप् । नुवि पुरति नूपुरम् । पुर अग्रगमने । इगुपधेति कः । ४ शब्दभेदप्रसङ्गात् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दमर्म स्वरभेदं चाह । ५ अम को १।७।१। ६ "षड्जं" इत्यारभ्य "इति स्मृतः" पर्यन्त तथा च भरतनाट्ये" इत्येवं टीकायामुपलब्धः पाठः 'निषादर्षभगान्धार' —इति क्षीरस्वामिभाष्येऽमरेऽपि उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

५८. स्मृते । प्रतीयते प्रतीतम् । ष्टुञ् स्तुतौ । ष्टु । "आत्वादेः ष सः । स्तुः सम्पूर्वः । सम्यक् प्रकारेण स्तूयते स्म संस्तुतम् । लभ्यते स्म लब्धम् । परिचीयते स्म परिचितम् । स्मर्यते स्म स्मृतम् ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासु च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

चत्वारो मृते । संतिष्ठते स्म संस्थितः । सम्पूर्वकस्तिष्ठतिः । दशमीं तिष्ठतीति दशमीस्थः । यथा च—

"प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे भजते ज्वरम् ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे भुक्तं न रोचते ।
सप्तमे स्यान्महामूर्च्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥
नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यतेऽसुभिः ।
एतैर्वेगैः समाक्रान्तो जीवस्तत्त्वं न पश्यति ॥

दशानां पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता असवोऽस्य परासुः । म्रियते स्म मृतं विदुः कथयन्ति ।

खेदो द्वेषोऽप्यमर्षश्च रुट्कोपक्रोधमन्यवः ।

खम कोपे । खिद परिघाते । रुधादौ खिन्त्ति । दैन्ये श्यादिपाठात् खिद्यते (ततः खेदनं) [1]खेदः । भावे घञ् प्रत्ययः । द्विष् अप्रीतौ अदादौ । द्वेषणं द्वेषः । मृष तितिक्षायाम् । चुरादौ । णिच् मृष क्षमायाम् । दिवादौ विभाषितः । मृषु सहने भ्वादौ परस्मैपदी । अमर्षणम् अमर्षः । रुष रुष रुष रोषे । रोषणं रुट् । सम्पदादित्वात् क्विप् । कोपनं कोपः । क्रोधनं क्रोधः । मन ज्ञाने । मन्यते[2] मन्युः । "[3]यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युः" । एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वादीरनादेशो न भवति ।

हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुत्प्रीत्यानन्दमुत्सवः ॥ १०९ ॥

हृष हर्षे । हर्षणं हर्षः । मुद हर्षे । प्रमोदनं प्रमोदः । मदी हर्षे । प्रमदनं प्रमदः । "[4]मदेः प्रसमोर्हर्षे अथ सम्मदप्रमदौ हर्षे" भवति हर्षार्थे । मोदनं मुत् सम्पदादित्वात् क्विप् । प्रीञ् तर्पणे । प्रीणनं प्रीतिः । आनन्दनम् आनन्दः । पुंसि । टुनदि समृद्धौ । उत्सवनम् उत्सवः । प्रीतिः । उत्सवः । उद्धर्षः[5] ।

कृपाऽनुकम्पानुक्रोशोऽनुक्तोऽक्ति करुणा दया ।

पद् न्यायाम । कृप कृपायाम् । कल्पनं कृपा । "[6]षानुबन्धभिदादिभ्योऽङ्" इत्यङ् । "[7]क्रमेः सम्प्रसारणम्" इति परसूत्रेण सम्प्रसारणं च । कल्पते कृप कृपायाम् इति ज्ञापकात् सम्प्रसारणम् । "स्त्रियामाप् । अनुकम्पनमनुकम्पा । अनुक्रोशत्यनेन अनुक्रोशः । पुंसि । न हन्तीति अहन्तोक्तिः । करोति विषादं चित्तं किरति वा करुणा । उणादौ डुकृञ् करणे । क्रियते करुणा । [8]'दयत्याद्युपमितार्थे

---

[1] द्वेषपर्यायेषु खेदपाठश्चिन्तनीयः । खेदपर्यायेषु "शोक शुक् शोचनं खेदः" इति अभि चि । क्रोधपर्यायेषु— 'कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः । [2] मन्यते त्वा त्मस्तेनेति शेषः । [3] का उ सू ४।१। [4] का सू ४।५।४७। [5] उत्सवशब्दस्योत्सवार्थे प्रमाणम्— 'उद्धवो यादवभिद् महे च क्रतुपावके' । इति मेदि को वा व १२ श्लो । [6] का सू ४।५।८२। [7] 'क्रमेः सम्प्रसारणं च' पा गण सू ३।१।१ ४। [8] कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादि सूत्रे परमतम् । [9] का उ सू २१६ ।

र्जिम्य उन एम्य उनः प्रत्ययो भवति । दवनं दृया । दव हननगतिहिंसादानेषु । भिदादयः ।

शेमुषी धिषणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽऽशय ॥ ११० ॥

षद् मुषो । श इत्यव्ययम् । मोह । त मुष्णाति शमयति इति शेमुषी । धृष्णोत्यनया धिषणा । प्रज्ञानं प्रज्ञा । मनुते जानात्यनया मनीषा । मनस ईषा मनीषा वा । 'शक'न्ध्वादिषु पररूपे मनसस्य इत्यनेन अन्त्यस्वरादेर्लोपः । अन शलोपश्च । षकारादिकारलोकोपधायाश्च ठकारः । ध्यै चिन्तायाम् । ध्यानं धीः । सम्पदादित्वाद्भावे क्विप् । ध्याप्यो सम्प्रसारणम् ‘अनेनैव सम्प्रसारणस्य दीर्घत्वं च । प्र सि । 'रेफलोर्भितमनोत्र । आशेते तिष्ठति कर्ममत्राशयः । तथा-मेधा । प्रतिभा । बुद्धिः । मति । मेधा । प्रज्ञा । संवित्ति । उपलब्धि ।

प्राज्ञमेधाविनौ विद्वानभिरूपो विचक्षण ।
पण्डित सूरिराचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृत ॥ १११ ॥

दश विदुषि । प्रजानाति प्रज्ञ । प्रज्ञादित्वादण् प्राज्ञ । मेधास्त्यस्य मेधावी । माया मेधास्रजो विन् भाविकारात्स्वर्थे एवं विभ यथा विभाषिता । शेषेभ्यो मतुरिष्यते । मतिमान् । बुद्धिमान् । विद् ज्ञाने । विद । वेत्ति जानातीति विद्वान् । वर्तमाने श । शतृ । 'विदे शतुर्वसु' । शतृ स्थाने वसु । स्थानिवदादेशोऽनल्विधाविति वचनात् वसौ शतृवद्भावेन सार्वधातुकत्वात् 'अदादिभ्यः शपो लुक्' अनेनैवस्वरत्वाद्यास इव न भवति । विद्वन् संजातम् । 'सि । ' सान्तमहतोर्नोपधाया दीर्घ । विदुषोऽपि । अभिगतं रूप येनाभिरूपः । रूपं विद्या ।

"कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रता ।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ।"

चक्ष व्यक्तायां वाचि । विविध चष्ट विचक्षणः । नन्द्यादेशु । योरन । 'एधू शत्वम् । विचक्षणो विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपात्यः । निपातस्य फलं ख्यादेशो न भवति । पण्डा बुद्धि । पण्डा सञ्जाताऽस्येति पण्डितः । 'तारकितादिभ्य इतच्' तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् । " इवर्णान्तस्य आकार लोपः । सि । रेफ । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते बुद्धि सूरिः । भूसूधूभ्रस्जिभ्य क्रि एभ्य क्रिप्रत्यः भवति । चर गत्यर्थ । आचरति आचार्यः । 'ऋहलोर्ण्यत्' । तथा चोक्तम्— 'पुष्पनन्दिनीकिरातर्षे -

"पञ्चाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः ।
चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य य स आचार्य इष्यते ॥"

१ शेते इति शेमोहः । किप् । सम्मुष्णातीति, मूलविभुजादित्वात्क । गौरादिभ्यो ङीष् । शमे कर्मा एत्वाऽभ्यासलोपे ठगित्वेति ङीपि शासामेति शेमुषीति ची स्या । 'धिष शब्दे' । इवरीति । धी स्या । ३ मतवनेऽनेकेषामय । ४ का सू० पूर्वा २८ सू । ५. ध्यायतेऽनया धीरित्यर्थ । ६ "सम्पदादिभ्य क्विप् का सू उ ८ ९ सू । का सू मा ५५८ सू । ८ का सू २।१।६३। ९ का सू ।६।१५। अत्र दुर्गवृत्ति । १० वर्तमाने शतृ ज्ञानशाव प्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयोः । का सू ४।४।२। ११ 'अनिष्करणा' कर्तरि का सू १।२।-१२। १२ 'अदादेर्लुग्विकरणस्य' का सू ३।४।९२। १३ 'शतुर्वसु' । का सू ४।४।४। १४ का सू ४।६।७६। १५ का सू ।२।१८। १६ का सू २।८।४८। १७ का सू ५ ८। १८ का सू २।६।४७। १९ का उ सू १५१। २० का सू ४।२।१४। २१ नीतिसा १५ श्लो ।

प्रशस्ता वागस्त्यस्य वाग्मी । न्याये विचारे नियुक्तो नैयायिकः । धीरः । सम्यग्दर्शी । विपश्चित् । दूरदृक् । आमनस्वः । ज्ञः । मनीषी । ज्ञः । दोषज्ञः । कोविदः । प्राज्ञः । सुधीः । कृती । कृष्टिः[1] । कविः । व्यक्तः । विशारदः । संख्यावान् । मतिमान् ।

पारिषद्यो बुध सभ्य सद संसत्समोषित ।

षद् समावृत्तौ । परिषदि सभायां भव पारिषद्यः । बध् । बुध अवगमने । बोधतीति बुधः । सभायां साधुः सभ्यः । कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । सदसि उचितो योग्य सदउषिताः । संसदुषिताः समोषिताः । सभासद् । सभास्तारः । सामाजिकः ।

परिषत्समाऽऽस्थानपती—

सद सभायाम् । परिषीदन्त्यस्यां परिषद् । सह भान्त्यस्यां सभा । आसमन्तादस्थीयतेऽस्मिन् आस्थानम् ।

([2]अधिपति राजा) पतिः—आस्थानं सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपतिः पतिरित्यादिपर्यायाः प्रयुक्तेषु सत्सु राज्ञो नामानि भवन्ति । परिषदधिपतिः । परिषत्पतिः । सभाधिपतिः । सभापतिः । आस्थानाधिपतिः । आस्थानपतिः ।

राजसूयो नृपक्रतु ॥ ११२ ॥

अभ्यवक्षेपणस्नानयोः (प्रसवे) हौ । षुञ् अभिषवे । षु । [3]आत्वा च । राजन्पूर्वः राजा सोतव्यो राजा सूयते वा यस्मिन्निति राजसूयः । [4]राजसूयश्च । क्यप्प्रत्ययान्तो निपातः । नृपाणां राज्ञां क्रतुः नृपक्रतुः । तथा च स्मृतौ—

> "गोसवे सुरभिं हन्याद्राजसूये तु भूभुजम् ।
> अश्वमेधे हयं हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥"

विष्टर मल्लिकापीठमासन्दीमासन विन्दु ।

पदाक्रमे । स्तॄञ् आच्छादने । विपूर्वः । विस्तरणं विष्टरः । स्तर[5]वृक्षगमिमश्रमास्व् । अच् । नाम्यन्त्युपधः । षोऽन्त्यादेः । तवर्गीयस्य षत्वम् । [6]तवर्गस्य टवर्गादेशः । मल्यते धार्यते मल्लिका । पेठतीति पीठम् । पृषोदरादित्वादीर्घः । आ समन्तात्सीदन्तीति विकल्पस्यामासन्दी । आस्यते

---

१ अत्र प्रमाणम् अभि चि ३।५। "विद्वान् सुधीः कविविचक्षणलब्धवर्णा ज्ञः प्राज्ञः कृतिकृष्टिनिकामधीरा । मेधाविकोविदविशारदसूरिदोषज्ञाः प्राज्ञपण्डितमनीषिबुधप्रबुद्धाः ॥ व्यक्तो विपश्चित्संख्यावान् सन् इति । २ अधिपती राजा इति प्रतीकमाश्रित्य व्याख्यावर्णनादयं मूल पर्याय इति न भ्रमितव्यम् । पूर्वापरवाक्ययोर्मध्ये अस्यमावेशासम्भवात् पदस्त्वेन स्वतन्त्रपाठस्याभावात् अत्र राजवर्णनस्याप्रसरत्वाच्च । एवं च सभाप्रश्नेन तदधिपते राजन्यपर्यायार्थ-टीकाकृद्धिः शास्त्रवचनमित्येव युक्तं भाति । ३ का सू० ३।८।२४। ४ का सू ४।२।४१। ५ स्मृतौ" इत्युक्तम् । परमयं श्लोको मनुस्मृतौ ना ७ क १ श्लो १ उपलभ्यते । ६ का सू ४।५।४१। ७ का सू ३।८।५। ८ शा सू ६।२।१७२। ९ "आस उपवेशने" । अस्यायः पा उ सू ४।६८। इति रूपमयी भवति अमानग्रहणं च । स्त्रियां ङीप् । तथा चोक्तम्—"स्याद् वेत्रासनमासन्दी इति ३।३४८। अभि चि ।

उपविरमते ऽस्मिन्नामनम् । 'कृत्यल्युटोऽन्यत्रापि च' युट् । पिष्टप कथयन्ति ।

विष्टप भुवन लोको जगत्—

चत्वारो जगति । [2]'विशन्त्यत्र विष्टपम्'[3] । भूतानि भवन्त्यस्मात् भुवनम् । लोक्यन्त लोकः । गच्छतीत्येवंशील जगत् । "[4]द्युतिगमोर्द्वे च" क्विप् । गमो द्विर्वचनम् । अभ्यासमकारलोप । '[5]कवर्गस्य चवर्गः' गस्य ज । ज गम् जातम् । [6]'पञ्चमी । दीर्घ । '[7]यमरमनतनगमां क्वौ' पञ्चमलोप । मात् पन् । [8]'वातोस्तोऽन्त पानुबन्धे तो ऽन्त' । वैर्लोप । सिः । नपु सकम् ।

तस्य पतिर्जिन ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य पतिर्जिन कथ्यते । अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः । [9]'इण्नशजिसर्तिभ्यो नक्' । विश्वपति । लोकपतिः । जगत्पति । इत्यादीनि जिनस्य पर्याय-नामानिज्ञातव्यानि ।

वर्षीयान् वृषभो ज्यायान् पुरुराद्य प्रजापति ।

ऐक्ष्वाकु (क') काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रज ॥११४॥

द्वाभ्या वृषभे । अतिशयेन वृद्धो वर्षीयान् । "[10]प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घ वृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः"। वृषेण धर्मेणोपलक्षितो भातीति [11] वृषभ । [12]'ऋषिवृषिभ्यां कित्' । आभ्यामभ प्रत्ययो भवति स च कित् । प्रथमेषां मध्ये प्रशस्यो वृद्धः प्रशस्यो वा ज्यायान् । "[13]वृद्धस्य च ज्य" इत्यनेनास्य ज्यादेशो भवति । पृ पालनपूरणयो । पृणाति पालयतीति पुरु । "[14] इत्यादिना उः । अस्मिन्नहनि आद्य[15] । इदमोऽद्यसो वा परविधि 'सद्योऽद्या' निपात्यन्ते इति वचनात् । (आद्य भव आद्यः) प्रजानाम् इन्द्रचक्रवर्त्यादीनां पति स्वामी प्रजापति । इक्ष्वाकूणाम् । जनपदे तदौ-पत्याकः । तथा चार्षे महापुराण—

"अकुनाथ तदभ्यूर्णा रसग्रहण नृणाम् ।
इक्ष्वाकुरित्यभूद्देवो जगतामभिसम्मतः ॥"

काश्य इक्षुरसेन पातीति काश्यपः । तथा च महापुराण—

'काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात् ।

बृ हतीति ब्रह्मा ।

---

१ का सू ४।५।९२। २ "इन्द्रस्य मतिघाते" इत्य का वी का भाष्य एवमन्यत्र म हु पाणिनिधातुपाठे । ३ विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् लोकादीका इति हैमचन्द्र । ४ का सू ४।३।५८। ५ का सू ३।३।११। ६ का सू ४ १।५३। ७ का सू ४।१।६५ ८ का सू ४।१।६ । ९ का सू ४ १।१८। वैर्लोपोऽनुबन्धस्य इति पूर्ण सूत्रम् । १० का उ सू २।५१। ११ पा सू ६।४।१५७। १२ वृषेण भातीति विग्रहे धर्मानुशासने च । भा दीप्ती । वरति धर्ममुतमिति विग्रहे 'ऋषिवृषिभ्यां कित्' इत्यभ । वृषु सेचने । १३ का उ सू ३।१२। १४ हे श ७।४।५।१ १५ का उ सू १।१ । १६ अत्र अद्यशब्दो न त्यदशब्दः । तेनाद्यो भव आद्य इति पुन प्रतिभाति । १७ का सू ६।६।१३। १८ इक्ष्वाकूणाम् वा (क्षत्रियाणाम्) वर्धनीति इक्ष्वाकु । तत्र ऐक्ष्वाक । तत्र प्रमाणमाह— अन्नाश्पति करोति

"आगमेऽपि मोक्षे ज्ञाने बुद्धौ वाचे च भरतराजस्य ।
प्रथमति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

अतः परो ब्रह्मा नास्ति । गोतमो गौर्गौरवात् गौतम । आर्षे महापुराणे—

"गौः स्वर्गः स प्रकृष्टात्मा गोतमोऽभिमतः सताम् ।
स तस्मादागतो देवो गौतमश्रुतिमन्वभूत् ॥"

नाभेर्जातो नाभिजः । अग्रे जातोऽग्रजः । प्रथमत्वात् ।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।

नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती शोभना मतिर्यस्य स सन्मतिः । महापुराणे—

"तत्सन्देहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां च भक्तितः ।
अस्त्वावेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥"

(महते पूज्यते इति महतिः) । महती पूजा यस्य स महतिः । विशिष्टाम् इन्द्रादयसम्भाविनीम् ईम् अन्तरङ्गां समवसरणानन्तचतुष्टयलक्षणां लक्ष्मीं राति ददाति इति वीरः । वीर इति नाम कस्मात्कथम् ? जन्माभिषेके बालत्वादीषद्दर्शनाचलितस्वर्गपतिसुरेश्वरस्य सामर्थ्यज्ञापनार्थं पादाङ्गुष्ठेन मेरुं चालयामासेति वीरनाम कृतम् । महाँश्चासौ वीरः महावीरः । तथा च हरिवंशपुराणभाष्ये—

कुमारकाले आमलकीक्रीडायां क्रीडतः सङ्गमदेवेन विमानस्थलकनाङ्गकल्पो (को)ऽस्य नाथं महाफटाटोपोपेतं भयानकं सर्परूपं विकृत्य भुजो वेष्टितः । भगवाँस्तस्मात्तस्य फणां विपाटयन्नारोहणं कृत्वा पुनश्चकुर्वीत । ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम् । अन्त्यं काश्यं तेजः पातीति अन्त्यकाश्यपः । तत परस्तीर्थङ्करो नास्ति । नाथोऽन्वयो यस्य स नाथान्वयः । तथा च—

"चत्वारः पुरुवंशजा जिननृपा धर्मोऽप्यस्ते पुनः
नेमिश्रीमुनिसुव्रतौ हरिकुले वीरोऽपि नाथान्वये ॥
शेषाः समवतान्विता जिनवरा इक्ष्वाकुवंशोद्भवा
मोहाम्भोदविनाशनैकनिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रिये ॥"

वर्ध समन्तात् ऋद्धं परमातिशयमाप्तं मानं केवलज्ञानं यस्यासौ वर्धमानः ।

"अवृद्धिमागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आप चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥"

इत्यवशब्दस्याकारलोपः । तथा श्रुतिमपि ग्रन्थान्तरे—भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रे मातापितृनिर्मितां विशिष्टां पूजां दृष्ट्वापि स्वस्य च श्रुतिविभवादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम् । इह अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थं यत्तीर्थम् साम्प्रतम् अधुना वर्तते ।

सर्वज्ञो वीतरागोऽर्हन् केवली धर्मचक्रभृत् ।

तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृद्दिव्यवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जिनेन्द्रे । ज्ञा अवबोधने । ज्ञः । सर्वज्ञः । सर्वं जानाति वेत्तीति सर्वज्ञः । "आतो'ऽनुपसर्गात्कः" प्रत्ययः । 'के[1] यण्वा मोक्षधर्मम्' इति यण्वद्भावात् आलोपः । विशिष्टा ई तां प्रति इतः प्राप्तो रागो यस्य स वीतरागः । अरिहननरजोहनन (रहस्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मिता

---

१ का सू ४।३।४ । २ का सू ४।१।७ ।

मतिशयवतीं पूजामर्हतीति अर्हन्। घातिचतुष्टयमनन्तज्ञानादिचतुष्टयं विभूतयो यस्येति वार्हन्। त्रिकाल केवलज्ञानमस्यास्य केवली। जिनधर्मचक्रं सहस्रारयुक्तं तीर्थकृदग्रे निराधारतया विहारकाले गगने गच्छत् सर्वजीवदयासूचकं रत्नमयमाश्चर्यविशेषं बिभर्ति तच्चाऽनुभवतीति धर्मचक्रभृत्। तीर्थं द्वादशाङ्गरूपं करोतीति तीर्थङ्करः। तार्थं करोतीति तीर्थकृत्। त्रिजगतां स्वामी त्रिजगत्पतिः। यथा चोक्तम्—

'यस्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं
नो वाञ्छाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम्।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैः संकर्णितं कर्णिभिः
तन्नः सर्वविदः प्रनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥"

चेलं निवसनं वासश्चीरमम्बरमंशुकम्।

चल् वरणे। चिल्यते वस्यतेऽनेन चेलं चैलं च। निवसत्यनेन निवसनं निवसनं वस्त्रं च। वस्यतेऽनेनाङ्गं वासः। वान्तम्। चिनोति उपार्जयति शाखां चीरम् चीवरं च। अम्यते गच्छति शोभा-मनेन अम्बरम्। उभयम्। अंशून् करयति अंशुकम्। क्लीबे। कर्पटम्। आच्छादनम्। वसनम्। सिचयः। पटः पटम्, पटी। पोतः। प्रावरः। प्रावारः। सम्व्यानं च।

वस्त्रायन्तः दिगाद्यादिसञ्ज्ञितो वृषभेश्वरः।

वस्त्रादय वस्त्रपर्याया अन्ते दिगादयो दिक्पर्याया आदौ यस्य तत्संज्ञितो वृषभेश्वरः। वस्त्रादिकं नाम अन्ते दिगादिकं नाम आदौ यथा—दिक्चेलः। दिग्वासाः। दिग्वसनः। दिगम्बरः। दिगंशुकः। दिग्वस्त्रः। काष्ठाचेलः। काष्ठानिवसनः। काष्ठावासाः। काष्ठाचीरः। काष्ठाम्बरः। काष्ठांशुकः। काष्ठावस्त्रः। ककुप्चेलः। ककुन्निवसनः। ककुब्वासाः। ककुच्चीरः। ककुबम्बरः। ककुबंशुकः। ककुब्वस्त्रः। आशाचेलः। आशानिवसनः। आशावासाः। आशाचीरः। आशाम्बरः। आशांशुकः। आशावस्त्रः। दशकन्याचेलः। दशकन्यावासाः। दशकन्याचीरः। दशकन्याम्बरः। दशकन्यांशुकः। दशकन्यावस्त्रः। हरिच्चेलः। हरिन्निवसनः। हरिद्वासाः। हरिच्चीरः। हरिदम्बरः। हरिदंशुकः। हरिद्वस्त्रः। इत्यादीनि वृषभेश्वरनामानि ज्ञातव्यानि।

कुङ्कुमं रुधिरं रक्तम्—

कक कुङ्कुमे। काम्यते कनैः कुङ्कुमम्[1]। रुधिर् आवरणे। रुणद्धि रुधिरम्। "इषिमदिमुदि-खिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच्"। रज्यतेऽनेन रक्तम्[3]।

कस्तूरी मृगनाभिजम् ॥ ११७ ॥

कसी मृगमदे। के सूयते कस्तूरी[4]। मृगनाभेर्जातम् मृगनाभिजम्। मृगनाभीजं च।

कर्पूरं घनसारं च हिमं सेवेत पुण्यवान्।

कृपू सामर्थ्ये। कल्पते कर्पूरः। "कृपेरूरप्रत्ययः"। "मामन्यगुणः।" कृपे रोलः कर्पूरम्,

1 कुकते आदीयते कुङ्कुमम्। कुक आदाने। "कुकेः कुमुक् च" भो उ इति उमक् प्रत्ययो मुगागमश्च। इति रामाश्रमः। कुं कोतीति क्षीरस्वामी। २ का उ १।२। ३ तथा चोक्तम् मेदिन्याम् ता च रक्तौ ४९। "रक्तोऽनुरक्ते नील्यादि रञ्जिते लोहिते त्रिषु। क्लीबन्तु कुङ्कुमे ताम्रे प्राचीनामलकेऽसृजि"। इति। ४ क शिरसि सूयते मस्तकभागस्थेन मन्यते इत्यर्थः। विकसति गन्धम्यम स्मा इति पी स्वा। "कस गतौ" कसति गच्छति गन्धोऽस्या इति रामाश्रमः। "वसपिशादिभ्य ऊरो सूर्यो"। पा उ ४। इत्यमरः। पृषोदरादित्वात्तुट्। गौरादित्वान्ङीष् च। ५ "खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ" इति का उ ४।६।। ६ नाम्यन्त्योपधाद्गुणिकरणयोर्गुणः" का सू ३।५।१। ७ का सू ३।६।९७।

सत्यम् । उदाहृतो हि बहुलम् तेन—

[1]"क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥"

घनस्येव सारोऽस्य घनसारः । हि गतौ । हिनोतीति हिमम्[2] । [3]इन्धियुधिदघाभ्यो मक् । चन्द्रसंज्ञः । सिताभ्रः । हिमवालुकः ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारो रागे । सम्यक् प्रकारेणालभ्यते [4]समालम्भः । अङ्गस्य रागोऽङ्गरागः । प्रकर्षेण साध्यते मण्ड्यते प्रसाधनम् । विलिप्यते विलेपनम् ।

भूषणाभरणं रूप्यम्—

षड् आभरणे । भूषि भूष अलङ्कारे । भूष्यते मण्ड्यतेऽनेन भूषणम् । आ समन्ताद् ध्रियते शोभा धार्यतेऽनेन आभरणम् । रोचते रूप्यम् । अलङ्कारः । परिष्कारः । मण्डनम् ।

माल्यं मालागुणस्रजः ।

चत्वारः पुष्पमालायाम् । मालैव माल्यम् । चातुर्वर्ण्यादित्वात्ष्यञ् । माल्यते धार्यते माला । अथवा मां लाति पुष्पाणि माला । स्त्रियाम् । गुणयतीति गुणः । "नाम्युपधप्रीकिरः"[5] कः । सृज्यते स्रक् । "ऋत्विग्[6]दधृक्स्रगिति" साधुः ।

मेखला रसना काञ्ची ।

षट् काञ्च्याम् । मेहनस्य खं तस्य मां लातीति निरुक्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति वा मेखला । रसति शब्दं करोतीति रसना । रस कान्तौ (शब्दे) सौत्रोऽयं धातुः । काञ्ची शोभां कचति(काञ्चते) बध्नातीति काञ्चिः । स्त्रियामीः । काञ्ची । तलकी । कलापः । कटिसूत्रम् । सारसनम् । शिञ्जिनी च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमपर्यायात्सूत्रशब्दे प्रयुज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । सुवर्णसूत्रम् । स्वर्णसूत्रम् । कनकसूत्रम् । अर्जुनसूत्रम् । काञ्चनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् । हाटकसूत्रम् । कलधौतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तस्वरसूत्रम् । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

श्रोणीबिम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिषाहितम् ।

षट् पट्टसूत्रे । श्रोण्याः कट्याः बिम्बं प्रच्छादकं श्रोणीबिम्बम् । कट्यां सूचयति वेष्टयतीति

---

१ का सू १।१।१४९। अत्र कारिकारूपेण पठितः । २ हिनोति गच्छतीत्यर्थः । अत्र रसवाद्यस्य धनस्याभावात् । इन्धि आत्मनेपदमिति रामाश्रम । ३ का उ १।५५। ४ आलभ्यते विलिप्यते इत्यर्थः । ५ का सू ४।२।५१। ६ का सू ४।१।७१। ७ मखं गतिं लातीति पृषोदरादित्वान्मेखलेति रामाश्रमः । मुहुः स्खलतीति हेमचन्द्रः । मीयते प्रक्षिप्यते इति घी स्था । मिञ् खलम्बेश्च २।३।१७। सर ५०। ८ मसतुरे वरिम बरनारि अभिधिरं चेति रामाश्रमहेमचन्द्रौ । अरा रम इति भूरप्रयोगेऽपि । ९ काचि दीप्तिबन्धनयोः । "अर्थवाहुल्य इन । १ शिञ्जिनी नूपुरम् । मेखलापर्याये स्वपाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्— 'नूपुरन्तु तुलाकोटिः पादः कटकाङ्गदे । मञ्जीरं हंसकं शिञ्जिनी—अभि चि ३।३३ ।

कटीसूत्रम् । मानं प्रमाणमीमूर्तं सूत्रयतीति मानसूत्रम् । केचिद् रागसूत्रं पठन्ति पट्टसूत्रं च ।

मदिरां मद्यमैरेयं शीधु कादम्बरीमिराम् ॥ १२० ॥

प्रसन्नां वारुणीं हालां मधुवारां सुरां विदुः ।

एकान्या मद्ये । माद्यत्यनया मदिरा । मदिरा च । माद्यतेऽनेन मद्यम् । "यमिकदिगदा" त्युपसर्गे" । इरायां ग्रामणीमावाम् साधु ऐरेयम् । शेरतेऽनेन शीधुः । '[2]शीङो धुक्' । शीधो(धो)रित्यपि पठितत्वात् शीधुशब्दे'[3] क इति व्याख्यात् । अथवा पीतेऽस्य जनः शेते शीधु । उभयम् । तालव्यः । कुत्सितं नीलमम्बरं यस्य स कदम्बरो बलदेवः । तस्येयं प्रिया कादम्बरी । कुत्सितमम्बते यात्यनया वा कादम्बरी । एति परिभ्राम्यत्यनया इरा । आत्मा प्रसीदत्यनया प्रसन्ना । आद्यन्तः । वरुणस्यापत्यं वारुणी । वहति हन्त्यामनया हाला । स्त्रियाम् । मधु वारयतीति मधुवारा । सुनति सुखे भव सुरा । तथा हि स्कन्दपुराणे— 'अतिप्रकाशभावेन समुद्रमथनादिच्छाञ्चिता सुरैः सुरा ।'

'लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ॥
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः शङ्खो विषं चाम्बुधेः
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥'

विदुः कथयन्ति । मधुः । माधव । परिस्रुता । स्वादुरसा । शुण्डा । गन्धोत्तमा । माधवक । माधवः । कल्यं कल्या । कश्य, कश्या । परिस्रुत् । सान्तं स्त्रियाम् । तालव्यदन्त्य । [4]हारहूर । कापिशायनम् । मृद्वीकम् । माध्वीकम् ।

शुण्डामद —

मद्यविशेषौ द्वौ । शुन्ध(न)न्ति शुद्धिं गच्छन्त्यनया शुन्ध (न्ध) ते पवनमभिगच्छते वा शुण्डा[5] । क्षीबो । शुरुण्डा । माद्यते अनयेति मदम् आसवः । पुंसि ।

तद्विधायी शौण्डो गयेत मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्वौ मद्यपायके । शुण्डायां मद्ये भवः शौण्डः[6] । मद्यं पिबति पाययतीति वा मद्यपः ।

सक्तोऽक्षधूतपानेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

सक्ती मद्यासक्ते । अक्षेषु धूतेषु सक्तः अक्षसक्तः । धूतसक्तः । पानेषु सक्तः पानसक्तः । विचित्रा नाना प्रकारा शब्दानां पद्धतिः भणितिः शब्दप्रवृत्तिर्भवति । अक्षशौण्डः । अक्षधूर्त । अक्षकितव । तथा शौण्डौ । व्याहत अभि पटु पण्डित कुशल, चपल निपुण स्तोम्यादि शौण्डादिराकृतिगण ।

सर्पिर्हैयङ्गवीनाज्य—

त्रीणि सर्पिषि । सृप धातवः सर्पन्त्यनेन सान्तं सर्पिः । क्लीबे । अर्चिशुचिहुसृपिच्छादिछर्दिभ्य इसिः । आज्यं गती । ह्यो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम् । इदं हैयङ्गवीनं प्रत्यन्तरदिन गोदोहे । उक्तं च—

'तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् ।'

---

१ का सू ४।२।११। २ का उ सू २।११। ३ शीधुरिति दन्त्योऽप्यन्यत्र पाठः । ४ 'शुण्डा हाला हारहूर प्रसन्ना वारुणी सुरा । अभि चि ३।५६७। ५ शुण्डाशब्दो मदिरावाची पानमदस्थानमपि । तदुक्तम्—"शुण्डा हाला हारहूरम्" अभि चि ३।५६७। 'शुण्डा पानमदस्थानम्" अभि चि ३।५७ । ६ शुण्डायां मदिरापानागारे भव इति रामाश्रम' । शुण्डा मदिरा उपस्थेति वा तस्यादित्वात् इति हैमकोश । ७ पाव्य् २।२।४ । ८ का उ सू २।४४ । ९ अम को २।९।५२।

तथा धाराधरमहाभिषेके—

"आमुः पीयूषकुम्भैः स्मृतिमथितमनिभिः शेमुषीवल्लिकन्दै-
र्मेधासस्याम्बुवाहैर्वरफलतरुभिर्नन्त्ररत्नाधिदेवैः ।
निष्पन्नैर्योगपेयप्रचुरसभुरिमस्नेहभूमोऽपि येषां
कुर्मो दैयङ्गवीनैः स्नपनमपनय व्यान्तमानोर्जितस्य ॥

पीयते द्विपदी पितमनेनाज्यम् । तथा क्षीरस्वामिनि—"आ प्रज्ञमीयमाज्यम्' । 'आस्यूर्वादञ्जेः संज्ञायाम् क्यप् । घृतम् । आधारः । स्युतम् । चाम्यम् । हविः ।

दुग्धं क्षीराऽमृतं पय ॥१२२॥

चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुह्यते दुग्धम् । घस्लृ अदने । सौचीऽम्यम् । घस्यते क्षीरम् । घसेः किच्च' ईरमायः । 'गमहनजनेत्युपधालोप । 'शासीघसिशिरां प्रथमः क. । 'शासिवसि घसीनां च षत्वम् । क्'पूर्वयोगे च' । 'व्यञ्जनमल्प' । उपसौ क्षिणु वसु हिंसायाम् । क्षणोतीति क्षीरम् । क्षीरोशीरगभीरगम्भीरा एते ईरमत्ययान्ता निपात्यन्ते । न म्रियतेऽनेन अमृतम् । अजरामरकारित्वात् । पीयते वा तरलत्वात् पयः । ममृतम् । ऊवलम् । स्तन्यम् । पीयूष पयूषं च ।

उदश्विन्मथितं तक्र कालशेय पिबतु गुरु ।

चत्वारस्तक्रे । उदकेन श्वयति वर्धते उदश्वित् । तान्तस्त्वात्सकारान्तः । मथ्यते (स्म) मथितं घोलं च । तक्नति हसं गच्छति तक्रम् । उभयम् । "तक्रं त्रिभागमिश्रं तु केवलं मथितं स्मृतम्' इति धन्वन्तरिः । कलशयां गर्गयां भवं कालशेयं पिबेत् गुरुः । तत्कालेन परिवृतम् । अरिष्टम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्ण यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥
तारुण्यं यौवनं च

अष्टौ तारुण्ये । प्रकर्षेण परलोकगमनेन प्रायः पुंसि । शाम्बोऽपि प्रायम् । ववत वयः । दशति पुरुषाति दशोमुकं दशा । न ईहते[११] चेहते अनेहा । अनेहतीत्यस्तोऽङ्गिरस[१२] एतेऽन्तु प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । ईह चेष्टायाम् । पूरी आप्यायने दिवादी आत्मनेपदी । अवश्यानां प्राक् दु(ब)दीया परस्मैपदी । पूर्वते कश्चित् पूरयति कश्चित् । इस् चुरादयपवा वा । " 'क्वारित अरितलोपः । उभयथा पूरि क्तम् । पूर्यते स्म पूर्णः । निष्ठाक्तः । शान्तसाध्यपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताश्चेनन्ताः इत्यनेन पूर्णेति निपात्यते । यूनो भावो यौवनम् । स्वार्थे कः । यौवनकम् । 'युवादिभ्योऽण् । युवो । तरुणस्य

१ पा सू ३।१।१९ । वार्तिकम् । २ पा उ सू ४।१९ । ३ पा सू ३।६।४१ । ४ पा सू ३।८। । ५ पा सू ३।८।२७ । ६ पा क पू सू २९९ । ७ 'व्यञ्जनमस्वर परं वर्णं नयेत्' का त १।१।२१ । ८ पा उ सू १।४८ । ९ अत्र प्रायादयोऽनेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचकाः । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनस्तावयदवीत्यनालीति नय । एवं च दश उ वक्ष्ये इति वस्तु युतम् । १ प्रकर्षेण शरीरस्य अमेयावते गच्छति इति हे च । ११ शरीरस्य क्रमेण विकृतिं च वाम्बादीनि दश्यन्ते दशा इति हेम' । १२ नाद्यन्ति मायच्छति वाम्यते नाम्यन्ते वेति रामाश्रम । नम्बाहन एव च इति साधु । १३ पा उ सू ४।१८। १४ पा त ३।६।४७। १५ पा सू ४।६।१ । १६ है श ७।१।६७। युवादेरण् इति सूत्रम् ।

भावस्थारम्यम् । भाग्रार्थे यण् । यूना भावो यौवनम् ।

अन्त्यो वार्द्धिन स्थविरो मत ।

वयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्त्यः । वृद्धे नियुक्तो वार्द्धीन [1] । तिष्ठतीति स्थविरः [2] । गलित भङ्गाम्भसः कथितः । प्रवयाः । यातयामः । दशमीस्थः । जरन् । जरठः । जीर्णः । वृद्धः ।

वंशोऽन्वयोऽन्ववाय स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥ ५

वद् वंशे । उच्यते काम्यते अनेन वंशः [3] । पुंसि । अन्वयते सन्ततिरनयान्वयः [4] । अन्वयेन यन्समवाम्ववाय । आम्नायते आम्नायः [5] । सम् सम्यक् प्रकारेण तनोति विस्तारयतीति सन्ततिः [6] । सन्तननं वा सन्ततिः । कु (को) लति सर्वं अनत्यत्र कुलम् । उभयम् । गोत्रम् । अभिजन ।

ओघो वर्गश्च सन्तान

त्रय समूहे (वंशस्यानन्तरममिदं) । ओघते ओघः । वृज्यते विभागीनेन पृथक् क्रियते १ वर्गः । सन्तन्यते सन्तानः । निकरः । निकाय । निवहः । विसर' । व्रज' । पुञ्ज । समूहः । सन्दोहः । समुदय' । समुदायः । सार्थः । यूथ । निकुरम्बः । कदम्बम् । पूगः । राशि । चय । समवायः । मण्डलम् । चक्रवालम् । जालम् । स्तोमः । व्यूहः ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वौ काव्ये । कवेर्भाव काव्यम् । तथा च यशस्तिलके— १२

"दुर्जनानां [8] विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।
मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदं भवेत् ॥"

कवीनां स्थितिः कविस्थितिः ।

पक्षिवर्गं प्रारभ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

हंसो मरालचक्राङ्ग ७

द्वयो हंसे । हिनं हन्ति गच्छति आत्मना हन्ति गच्छति वा हंसः । हन्तेः सः । मर मर्दं कमलमविच्छिन्नागमिच्छति गच्छतीति मरालः । चक्रमङ्गति चक्राण्यङ्गानि वा यस्य चक्राङ्गः । मानसौका । श्वेतच्छद ।

हंसवाहः सनातन ॥ १२४ ॥

इत्यादयस्तद् वाहनत्वे प्रयुज्यमाने ब्रह्मणो नामानि भवन्ति । हंसवाहः । मरालवाहः । चक्राङ्ग- २५ वाहः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो बर्हिण केकी शिखी भागपिकस्तथा ॥
नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

सप्त मयूरे । महीं रौति मयूरः । मीनाति वा प्रीन् मयूरः । उणादौ । मीम् हिंसायाम् । मवते

१ प्रमाणास्वभावं नीयमानम् । २ यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति है च । अजिरशिशिरेत्यादि पा उ १।५३ इति किरच्प्रत्ययो युगागमो ह्रस्वत्वं च । ३ "वश कान्तौ" घञ् । पुम । कम्यते कम्यतेऽनेनेति स्वामी । ४ अन्वयीति अन्वीयते । अन्वयः । "इण् गतौ" । अच् । इत्यन्वय ५ अत्र प्रमाणम्—"आम्नायः कुल आगमे उपदेशे इति हैम ।३।५।१०। ६ सन्तन्यते सन्ततिविस्तारयतीति रामाश्रम । ७ वा उत्सवे । वक्र वितर्के । स्पर्द्धमानादित्वात् इत्वं च । ८ वा १ श्लो २५।९ का उ सू ४१५। इत्यादिर निमतिक्रमणादिरूपैम्य वः । इति ।

इति मयूरः । 'मयते' करो मौ" । बर्हमस्यास्ति बर्ही । "फल'बर्हाम्यामिनच्' । केका वाणी अस्यस्य केकी । शिखाऽस्त्यस्य शिखी । प्रावृषि वर्षाकाले मयुष्कः प्रावृषिकः । नीलं कण्ठे यस्य स नीलकण्ठः । कलापोऽस्त्यस्य कलापी । शिखण्डोऽस्त्यस्य शिखण्डी । मेघनादी । वर्षोत्सवः । शिखावलः । श्यामकण्ठः । चन्द्रकी । शुक्लापाङ्गः ।

तत्पतिर्गुहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिर्गुहः कार्तिकेयः । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमाने कार्तिकेयपर्यायनामानि भवन्ति । मयूरपतिः । बर्हिणपतिः । केकिपतिः । शिखिपतिः । प्रावृषिकपतिः । नीलकण्ठपतिः । कलापिपतिः । शिखण्डिपतिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

वरटा वारली हंसा—

त्रयो हंसभार्यायाम् । वरं विशिष्टमटति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थेऽपि । वरला च । हन्तीति हंसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

त्रयः दिक कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मृगोऽस्यस्य ईहामृगः । ईहां मृगयते वा [3]ईहामृगः । वृक वृक आदाने । वर्कते [4]वृकः । अरण्यश्वा ।

हरिणो मृगश्च पृषत—

त्रयो मृगे । गीतेन ह्रियते हरिणः । मार्गेषु गच्छते मृगः । पर्षति सिंचति मूत्रेण पृषतः[5] । वान्योऽपि पृषत् । एणः । कुरङ्गः । कुरङ्गम । सारङ्गः । वातायुः । रिश्यः । ऋष्यश्च । रुरुः । न्यङ्कुः । वातप्रमी । शम्बरः । शबलः । कृष्णसारः । कालसारोऽपि ।

तदङ्कः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

हरिणपर्यायादङ्कपदे प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हरिणाङ्कः । मृगाङ्कः । पृषताङ्कः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विषधरो लेलिहानो भुजङ्गम ॥

नागोरगौ फणी सर्प—

नव सर्पे । पन्नपा न गच्छतीति पन्नगः[6] । नभ्राण्नपादित्यस्योपलक्षणत्वात् । अंहस (ऊेऽ) हि । 'अहि'[7]कम्पोर्नलोपश्च नलोपः । विषं धरति विषधरः । लिहेति लेलिहानः । भुजाभ्यां गच्छति भुजङ्गमः । न गच्छतीति नागः । उरसा गच्छतीत्युरगः । [11]'उरो विहायसी स्फणी च' । उरो विहायसोरुपपदयोर्गमश्च संज्ञायां डो भवति तयोश्च उरविही यथासंख्यं भवतः । फणाऽस्त्यस्य फणी ।

---

१ का उ सू १।४७ । २ पा ५।२।१२२ वार्तिकम्— "फलबर्हाम्यामिनच्" । ३ ईहया महताऽभ्यासेन मृग्यते आलेटीक्रियते इत्यन्यत्र । ४ वर्कतेऽजादिकमादत्ते वृकोति वा वृकः । ५ रामाश्रमस्तु— 'पृषता बिन्दवो बिन्दुसदृशलक्षणान्यस्य पृषतः । अर्श आद्यच् स्यात् । पृषती बिन्दुचित्र इति वा स्या' । ६ पद्भ्यां पतितं यथा स्यात्तथा गच्छतीति रामाश्रमः । सर्वपदयोरिति वार्तिकेन डः । ७ का उ सू ४।४। क्विप्प्रत्ययो नलोपश्च । अहि गतौ । अहति वेगेन गच्छति । ८ भृशं लेढीत्यर्थे यङ्लुगन्तात्— 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' पा सू ३।२।१२९। इति चानश् । ९ भुजेन कौटिल्येन गच्छति भुज इव गच्छति वेत्यन्यत्र । गमश्च' का सू ४।३।४५। इति । विङ्गुवक्तू भुजङ्गश्च का सू ४।३।४८। इति खचि डे च भुजङ्गमः भुजङ्गः इति । १० नगे पर्वते भवो नागः । अथवा न गच्छतीत्यगः न अगः नागः इत्यन्यत्र । ११ का सू ४।३।४६।

सर्पति गच्छति सर्पः । पृदाकुः । भुजगः । आशीविषः । चक्री । व्यालः । सरीसृपः । कुण्डली । गूढपात् । द्विरसनः । चक्षुःश्रवाः । काकोदरः । दर्वीकरः । दीर्घपृष्ठः । दन्दशूकः । बिलेशयः । भोगी । विषधरः । पवनाशनः । गोकर्णः । कुम्भीनसः । कञ्चुकी । राजिलः । भुजङ्गभुक् । चक्षुःश्रुतिः ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पन्नगस्य वैरी शत्रुः विनतात्मजः गरुडः । पन्नगवैरी । अहिरिपुः । विषधराराति: । भोगिविदानरिपुः । भुजङ्गशत्रुः । नागद्विट् । भुजङ्गमपलः । फणिद्विट् । सर्पद्विट् । सर्पद्वेषी । इत्यादीनि गरुडनामानि स्युः ।

सुपर्णो गरुडस्तार्क्ष्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।

इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा वैनतेयो विषापहः ॥ १२८ ॥

नव गरुडे । शोभनं स्वर्णमयं पर्णमस्य सुपर्णः । तथा च—"सुपर्णो" हेमपक्षत्वात् । गीर्द् विदारणे गता । गरुत्पूर्व । गरुद्भिः पक्षैर्डयते गरुडः ।

"वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥

इत्यनेन श्लोकेन गरुत्शब्दस्य तकारस्य लोपः । तस्मै गरुडः । गरुडश्च । तृक्षस्यापत्यं तार्क्ष्यः । गरुत् पक्षः तदस्यास्ति गरुत्मान् । शकुनीनां विहङ्गानामीश्वरः स्वामी शकुनीश्वरः । इन्द्रं जितवान् इन्द्रजित् । मन्त्रेण पूतः पवित्र आत्मा यस्य स मन्त्रपूतात्मा । विनताया अपत्यं वैनतेयः । विषं अपहन्तीति विषापहः । काश्यपनन्दनः । विष्णुरथः । पन्नगाशनः । नागान्तकः ।

खमिन्द्रियं हृषीकं च श्रो (स्रो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

षडिन्द्रिये । खर्वमीषत् खनति विदारयतीति खम्[३] । इन्द्रस्यात्मनो लिङ्गमिन्द्रियम्[४] । हृष्यति हर्षं प्राप्नोति विषयेषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु हृषीकम् । श्रूयतेऽनेन शब्दम् स्रोतः[५] । तासम्यादिः । अश्नुते विषयं व्याप्नोति अक्षम् । क्रियते मनोऽनेन विषयेषु करणम् । शेषं [विषयि] । करणम्[६] ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं भागधेयं च सत्कृतम् ॥१२९॥

पञ्च पुण्ये । पुण शोभे । पुणति शोभते पवते वा पुण्यम् । धर्मेऽपुण्यं[७] । भगस्यैश्वर्यादेरिदं [कारणम्] भाग्यम् । भागमेव भाग्यम् । भागधेयम्[८] । सुष्ठु क्रियते सुकृतम् ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इति स्मृतिः ॥[९]

---

१ धी रत्न मा ११।२९ । २ सा सू २। १७२ । अत्र कारिकारूपेण पठितः ।
३ खन्यते सततमिन्द्रियाधिष्ठानस्य तात्पर्यशब्दस्पर्शनात्, खम् । खनु अवदारणे । डः प्रत्ययः इत्यन्यत्र ।
४ इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा । पा सू ५।२।९३ । ५ तासम्यादिशब्दः कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यस्रोतशब्द इन्द्रियवाची शोत्र पठितव्य । तदुक्तम्—'हृषीकमक्षं करणं स्रोतः खं विषयीन्द्रियम्' इ चि स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये इत्यमर ३।३।२११ । ६ नाथाभ्यामप्यधिक्यमुपलक्ष्यम् । क्षिरस्वाम्यादयस्तु—कर्मेति सुखायतनमभ्यम् तस्य कर्म साधनमिन्द्रियमिति । ७ पुनातीति पुणः । 'पुण शुभे कर्मणि । इगुपधेति कः । पुणमर्हतीति पुण्यम् । तदर्हति । पा सू ५।१।६३ । इति यत् । पुनाति पवते वेत्यन्यत्र । ८ का उ सू ३।४ । ९ श्लोकोऽयं विष्णुपुराणस्थलेनोल्लिखितः अत्र धी ची रत्न मा ११।११९ ।

भगस्येदं भागः भाग एव भागधेयम् । नामरूपभागेभ्यो धेयः[1] । स्त्रग्मीर्षाणं किमदं (स्म) सत्कृतम् ।

अघमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किल्बिषम् ।

वृजिनं कलिलं एनो दुष्कृतम्

अघ पापे । न वहाति माखिनम् अघम्[1] । अंहति गच्छति नरकादिकमनेन अंहः । सान्तम् । दुरितम्[2] । दुर् दौर्गत्यं गतम् । पाति सुगतेर्वारयति पाप्मा । पु सि । 'सर्वधातुभ्यो मन्' । पाति सुगते र्वारयति पापम् । [4] 'पातेः पः' । निम्नत्वेन कल्पते मुहुर्मुहुः किरति गच्छति वा किल्बिषम् । 'किल्बिषा'[5] भ्यधिषौ' एतौ निपात्यन्ते । वृज्यतेऽनेनीयतेऽनेन वृजिनम्[6] । कलयति कलिलम् । कलेरिलः । एति गच्छति [दुर्गतम्] अनेन एनः । सान्तम् । दुष्क्रियते स्म दुष्कृतम् । तमः । कल्कम् । कल्मषम् । अशुभम् । प्रतिबिम्बम् । पङ्कम् । किण्वम् । मलम् । अनेकार्थे ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जयी तज्जयी । अघजयी । दुरितजयी । पापजयी । इत्यादीनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सद्म भवनं धिष्ण्यं वेश्माथ मन्दिरम् ।

गेहं निकेतनागारं निशान्तं निभृतं गृहम् ॥ १३२ ॥

वसत्यावसथावासः स्थानं धामास्पदं पदम् ।

निकायं निलयं पस्त्यं क्षयश्च विदुरालयम् ॥ १३३ ॥

चतुर्विंशतिर्गृहे । जना सीदन्त्यत्र सदनम् । क्लीबे । सीदन्ति सुखं गच्छन्त्यत्र सद्म । "सर्व धातुभ्यो मन्" प्रत्ययः । भवति भूतान्यत्र भवनम् । धिष शब्दे । शेषेऽपि शब्दं करोत्यत्र धिष्ण्यम् । "धिषेर्ण्यः" प्रत्ययो भवति । विशन्त्यत्र वेश्म । नान्तम् । माद्यन्ति जना अत्र मन्दिरम् । स्त्री क्लीबे । मन्दिरा । गेह ईहायां निवारणप्रकाशयोः । गहति शीतवातातपादिकं निवारयतीति गेहम् । गच्छति वा गेहम् । 'गेहे' [11] स्वार्थे । सुखं निक्षिपन्ति जनास्तत्र निकेतनम् । अट्टन्ति गच्छन्त्यत्र आगारम् । अगारं च । निशाम्यन्त्यत्र निशान्तम् । निश्चितं आच्छाद्यते निभृतम् । गृह्णाति नरैरुपार्जितं धनं गृहम् । वसनं वसतिः । आवसन्त्यत्र जना आवसथम् । आ समन्तादुष्यते आवासः । स्थीयते अनेनात्र स्थानम् । दधाति धनादि धाम । नान्तम् । आस्पदं च धामम् । क्लीबे । आस्प(द)पदेऽस्पदम्[14] । पद्यते गम्यते पदम् । निचीयतेऽसौ निकायः । [15] "शरीरनिवासयोः कश्चादेः" घञ् । निलीयते आश्रित्यते (अत्र) निलयम् । पति सीदति निवासे । जना वसन्ति वसन्त्यत्र पस्त्यम्[16] । वस्ते वासे साधु वस्त्यम् । पस्ती

१ पा सू ५।४।३५ वार्तिकम् २ अट्यते गच्छति दानादिनान्यम् । अघि गतौ । पचाद्यच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वात् नुम् । ३ दुरमितं गमनमननेति रामाश्रमः । ४ का उ सू २।५५। ५ किल्बिषाभ्यधिषौ का उ सू १।२२। ६ वृजी वर्जने । वर्जे किन्त्यदीनम् । वृज्यते वृजिनमित्यपि । ७ कलयति कलयति दुःखमिति शेषः । ८ का उ सू ५।१८। ९ का उ सू ३।६ । १० "तिमिरधिमस्मिन्दिनधिषधिरुधिमुदिभ्यः" किरः पा उ सू १।२१। ११ का सू ३।२।६ । इति किं यस्य गेह इति निपातः । १२ का अट्टति अदृपत बाध बाहुल्य भारप्रत्ययः । अगि गतौ । आद्युदुर्भः । नलोपश्च । १३ निशाया अन्तो नैऽस्त्यत्र । निशायाम् अन्ते गम्यते रमेति रामा श्रम । 'अम गतौ' क्त । १४ "आस्पदं प्रतिष्ठायाम्" पा सू ६।१।१४६। इति सुट् । १५ का सू ४।५।१५। १६ प्रसरस्तावस्ति उदपीभवन्त्यत्र पस्त्यम् । "स्त्ये शब्दसंघातयोः ।

वासे साधु 'वसथमिति भीमाद । शीर्यते हिंस्यते शीतादयश्च शरणम् । आलीयते अनेनालय । पुंसि । चित्तु बसयन्ति । पुरम् । कुलम् । संस्त्यायः ।

खेयं खात च परिखा

त्रयः परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते खेयम् । "आत्वनोरिच" यप्रत्ययो नकारस्येकार । "[3]यचर्यादयो ए" यकारोकारयोरेकार । खन्यते [स्म] खातम् । परिखायते परिखा ।

वप्र स्याद् लिङ्कुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुष्कादिके वप्यत्यत्र वप्रम् । भूम्या कुट्टिमं भूमिकुट्टिमम् । वप्रभूमिकम् । भूमिकुट्टिमम् ।

प्राकार परिधि साल

त्रयो दुर्गे । प्रकुर्वन्ति तमिति प्राकार [4] । 'अकर्तरि च [5] कारके संज्ञायाम्' घञ् । परि समन्ताद् धीयते परिधि [6] । सलति तत्करोति नगरपर्यन्त शालं सालं च ।

प्रतोली गोपुराकृति ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जन प्रतोल्यते परिमीयतेऽत्र प्रतोली । गोप्यते रक्ष्यते गोपुरं तस्याकृति गोपुराकृति ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

त्रय सौधे । प्रासादश्च सौध च हर्म्यं च प्रासादसौधहर्म्याणि । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनांसीति प्रासाद । 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' । सुधायाः लिप्तायाः भव [7] सौधम् । चन्द्रकरान् हरति हर्म्यम् [11] ।

निर्व्यूहो मत्तवारण ।

द्वौ मत्तभवे । निर्व्यूह्यते निर्व्यूह । मत्ता प्रमादिन पतन्तो वार्यन्तेऽनेन मत्तवारण ।

वातायन मतालम्बम्

द्वौ गवाक्षे । वातस्यायनं मार्गो वातायनम् । उभयम् । मतममीयम आलम्बम मतालम्बम् । वातनम । वातम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राजासनशय्ये द्वौ । आलम्ब्यस्य अवलम्बनस्य सुखम् आलम्ब्यसुखम् । सुखेनास्यते आसनम् ।

सम सवर्ण सन्नाभि सदृश सदृक्ष सदृक् ।

तुल्यः सधर्मरूपश्च तुला कल्पोपमा विधा ॥ १३६ ॥

---

1 यद्यपि मूले वसथशब्दो नास्ति तथापि पाठभेदम् 'निशान्तवसथसदनम्' २।२।५। इत्यमरे वसथशब्दपाठात् टीकाकृता तदपि विवृतम् । २ पा सू ४।२।१२। ३ पा सू १।२।२। ४ प्रक्रियन्ते इति कर्मणि घञ । इति रामाश्रम । ५ पा सू ३।३।१९। ६ परितो धीयते वेष्ट्यते नगरमनेनेति रामाश्रम' । ७ इत्यमरे तु शल्यते शाला । 'शल गतौ' । घञ् । ८ पुरद्वारन्तु गोपुरं भट्टविवृतम् । तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्या सा प्रतोली पर्य । ९ पा सू ४।३।७। १० सुधया लिप्तः सौधः । शेषे तुण् । ११ हरति मनांसि हर्म्यमित्यमर । प्रासादसौधहर्म्याणामभाविशेषापेक्षापाद्यनम् । परं तद्विशेषा न विस्मर्तव्य । तदुक्तम् 'हर्म्यादि धनिनां वास प्रासादो देवभूभुजाम् । सौधोऽस्त्री राजसदनम् । ।१। इत्यमरः ।

[१]एकादश समाने । समानं मातीति समा । समान: सदृशो वर्णोऽस्य सवर्ण । समाना शाति: यस्य सशान्ति । समान इव दृश्यते सदृश । [२]समानान्ययोश्च सद्भ्व्यय । शस्य च पतम् । "पनो [३] क्से" पस्य कत्वम् । 'कत्यागे' [४] च । समान इव दृश्यते सदृश: । [५]"समानान्ययोश्च टक्प्रत्यय । समाश । अनुकम्पत्वाद्गुणनिषेध: । आगुणत्वापवादो पठ्यते । 'टक्' "दृश" इति समानस्य समाय । समान इव दृश्यते सदृक् । समानान्ययोश्च क्विप् । तुल्या तस्मिन्नतुल्या: । समानो धर्मो यस्य सधर्मः । समानं रूपं यस्य स सरूप । [६]ज्योतिर्जनपदनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु इति समानस्य सादेश । तोलनं तुला । [७] तोलेरथ' अच्प्रत्यय । ओकारस्याकारश्च । कल्पति कल्पा । उपमा । विधा । प्रख्य: । प्रकाश: । प्रतिम । प्रतिभ: । प्रकार: ।

चिन्मान्यो विधमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।
सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् योजयेत् । पर्यायं विशेषणम् उपमानेषु । चित्सम । चित्सवर्णः । चित्स शाति: । चित्सदृश: । चित्सदृशा । चित्सदृक् । चित्तुल्या । चित्सधर्म । चित्सरूप । चित्तुल्य । चित्कल्प: । अनेन प्रकारेण मान्यविधमानगुरुस्थानाम्बुजाननसिंहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोक्तव्या: ।

व्यपदेशो निभ व्याज पद व्यतिकरश्छलम् ।
छद्म

छल कैतवे । व्यपदेशनं व्यपदेश[१०] । पुंसि । निर् अतिशयेन भाति निभम्[११] । व्यज्यते [१२]व्याज: । पुंसि । पद्यते गम्यते कैतवेन पदम् । व्यतिकरण व्यतिकर: । छलति [१३] छलम् । क्लीबे छादयति छद्म[१४] । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कपटम् । कूटम् । उपाधि: । मिषम् । लक्ष्यम्[१५] ।

दृष्टान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्य च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

द्वौ वार्तायाम् । दृष्टस्य चरितस्यान्तो दृष्टान्त । उत्प्रेक्षणम् उत्प्रेक्षा । वार्ता । प्रवृत्ति: । उदन्ता ।

---

१ अत्र समानस्य तत्पर्याया नव समाने । तुलाकल्पोपमा विधा इति वक्तारस्तुलापामिति पार्श्वस्थेन वक्तव्येऽपि लक्षणाऽभिप्रायेण उदाहृ । कविविधमिवेति पाठ: । परन्तु प्रकारार्थकविधाशब्दोऽत्र युक्त: । एवं च नवोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे तु "उपमाऽभिधा" इत्यनयोरुपमावाचकत्वे सति "एकादश इति लक्ष्यते । २ मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावात्समानं मातीति विग्रहश्चिन्त्य । सम वैकल्ये समति वैकल्यं करोतीति सम । समः समस्त वैकल्यं करोतीव । पचाद्यच् । ३ 'कर्मण्यु पम ने त्यदादौ दृशेष्टक् सको च' का सू ७।१।७५। अत्र वृत्ति । ४ का सू १।५।४। ५ का क सू २५६ । सू ६ समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम् इति वार्तिकस्येवोपलभ्यते ।२।१ । काशिकायाम् । कातन्त्रसूत्रेषु नैतादृशमुपलभ्यम् । वृत्तिरपीदृशी काऽपि नास्ति । काशिकायां टीकोपवचनवाक्येऽपि प्रत्य यस्वरूपताम्य नास्ति । ७ 'दृग्दृशवतुषु समानस्य स' का सू ४।६।६६। ८ का सू ४।२।७५। वृत्ति । ९ "ज्योतिर्जनपदनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु इति पा सू ६।३।८५। १ वाचनिकं नैतत्, अनुलोपमाभ्यामिति ज्ञापितमिति प्रतिभाति । ११ व्यपदिश्यते व्यपदेशोऽप्युपस्य तात्पर्यम् । १२ भि निर्गतं तदिव भाति निभम् इत्यमर । १३ व्यज्यन्ते विधिवन्ति अनेन व्याज: । "अज गतिक्षेपणयो:" । घञ् । १४ छलति छिनत्ति वस्तुतत्त्वमनेनेति वा । छो छेदने । कल प्रत्यय । १५ छादयत्यनेन छद्म । मनिन् । इस्व: । 'छद अपवारणे' । चुरादि: । १६ लक्ष्य शब्दोऽप्ययम् । १७ एतदोऽनुव यानीयो गवेषणीयोऽन्य: समासिश्चिन्त्येति रामाश्रमा: ।

व्रात[1] पूग[2] समाजश्च समूह सन्ततिर्व्रज[4] ।
व्यूहो निकायो निकरो निकुरम्ब कदम्बकम् ॥ १३९ ॥
ओघ[6] समुदय[7] सङ्घ[8] सङ्घात समितिस्तति ।
निचय प्रकर पङ्क्ति[9]

विशतिस्समूह । वृणोति छादयति व्रात[1] । पूयते पूयते वा पूग[3] । संमीयते समाज[4] । घञ् । समूह्यते सम्यग् दीयते समूहः । सतन्यते सन्ततिः । व्रजन्त्यत्र व्रज । उभयम् । विशेषेण उह्यते व्यूहः । निचीयते ऽसौ निकाय । कायम । निकीर्यते निकरः । समन्तादभिकुरन्ति वदन्ति (छिन्दन्ति) निकुरम्ब । कुत्सितम् कम्यते कदम्बम् । स्वार्थे कः कदम्बकम् । द्वा क्लीबे । उच्यते ओघ[5] । "भदन्तादीनां इश्च ।" समुदीयतेऽत्र समुदयः । समुदायश्च । सहन्यन्तेऽस्मिन्नवयवा सङ्घ । सहन्यते संघात । इन्तेर्घ । इण् गतौ सम्पूर्वः । समयन समितिः । स्त्रियां क्ति । तननं ततिः । निचीयतेऽत्र निचय । उभय । प्रचय । छ्ययः । प्रकिरत प्रकरः । पचि विस्तारवचने । पङ्क्त । इस्त्रुवन्धानां धातूनां नलोपो नास्तीति । पचन पङ्क्ति । स्त्रियां क्ति ।

पशूनां समजो व्रज ॥ १४० ॥

पशूनां व्रज समूह समज कथ्यते । व्रज येरण । अज् सम्पूर्व । समजन समज । "समुदोरज पशुषु" अप् ।

समीपाभ्यासमासन्नमभ्यर्ण सन्निधि विदु ।
अविदूर च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीप । समाप्नोति समीपम्[1] । अभ्युक्त्य आस्यते अभ्यासः । घञ् । आसद्यते सम आसन्नम् । अर्द गतौ याचने च । अर्द अभिपूर्वः । अभ्यर्णोऽस्मिन् अभ्यर्णम् । निपात । सामीप्य उर्णं ।[2] नेद । दाद [3]त्व च' दकारनकारयोर्नत्वम् । 'ग्रह । —धातोर्नकारस्य णत्वम् । तवगस्य निष्ठा नस्य णत्वम् । सन्निधीयत सन्निधिः । अ(न)विदूर्नोतीति अविदूरम् । 'दुगावदीर्घश्च'[10] दुनोतेरक् प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । दूङ् उपताप । निकटति निकटम । (नि) नास्ति कटोऽर्यति च निकट । कट वर्षावरणयो । अवलगति (स्म) अवलग्न । न अन्तरम् अनन्तरम् । सनीडम् । समर्याम् । आरात् । अदूरम् । उपकण्ठ

१ व्रातादयोऽनर्थकसमूहे व्रातादयो विशतिशब्दा प्रयुज्यन्ते । ओघो वर्षादिके सन्तान इति कैश्चिद्व्याख्यातमिदं इति प्रथम । परन्तु व्यवहारे प्रयोगसादृश्यमपि दृश्यते । ३ 'पून धारणे' । व्रातम् प्रचय । अन्यत्र तु व्रत एकस्मिन् राशौ निवसन्त इति मुख्यमिव इति व्यन्ताद्घ्यन्तम । व्रातस्तमेरिति निर्देशाद दीर्घ । ३ पूयते राशित्वेन मन्यते पूयन जनसमुदायात् राशिभावेन निर्मीयते वा पूग । 'छापूखडिभ्य किद्' । उ सू १२८ इति पूङ् पून्यौ वा किद् ग प्रत्यय । पूगयते पूगताद्युन्ते भवति पुगमपि स्थानियद्भावेन णत्वाद्धकृत्व दुस्साध्यम् । ४ अज गतिक्षेपणयो । घञ । ५ 'कुर् शब्दे' । धातु स्वार्थकप्रत्ययः । अर्थान्तरे निकुरम्ब इत्यपि । ६ आप्लुवातुहनपञ् । उद विन्ध । ७ पा सू ४।१।५७ । ८ सम उद्पूर्वक इण् गता "एरच्" । भावे समुदय । अस्मि समुदायः । ९ समुदा गवमेऽपीया वा सू ४।२।६४ इति इत्यन्प्रत्ययो धातोर्भ । १ वा सू १।४।१ । ११ अन्यत्र आसीदनमिमिति विग्रह समास । अभ्यनमासन्न । इकन्तरनशेष्या उप इण् इतीरात । उपनागदधम मपि समीपम् । १२ वा सू ८।२।५७ । १३ वा सू ८।३।१ २। १४ वा सू ४।४।४८ । १५ "वर्गान्त परस्मादयग वा सू ३।८१ । १६ वा उ सू ६१ ।

ष्टाग् । भायमम् । हलिकरम् । भावमम् ।

जित्या हलिर्हलं सीरं लाङ्गलम्

पश्च हसे । जि जये । जि । जीयते जित्या । 'समवोर्हली मयमेव स्वम् । यातो"स्तीऽस्य पानुबन्धे । "³रिजयामान" । हलति हलिः । मदबल हलिम्भ्यते । भूमिं हलति विलिखति हलम् । सीयते बध्यते वरत्रया सीरम् । लङ्गति भूमिं गच्छति लाङ्गलम् ।

तत्करो बलः ।

हलपर्यायवाः करपर्यायेषु बलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकरः । हलिकरः । हलकरः । सीरकरः । लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

भवो बलभद्र । रेवत्या दयितो भर्ता रेवतीदयितः । नीलं कृष्णं वर्णं वसनं यस्य स नीलवसनः । केशवस्याग्रजः केशवाग्रजः । कालिन्दीकर्षणः । बल । प्रलम्बघ्नः ।

अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः श्वेतवाजी कपिध्वजः ।
गाण्डीवी कार्मुकी सव्यसाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥
वृषसेनः सुनिर्मोक्षो दैत्यारिः शक्रनन्दनः ।
कर्णशूली किरीटी च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

समन्तार्जुने । अर्ज अर्ज अर्जने । अर्जति (कीर्तिम्) अर्जुनः । "⁴अर्जुनादयश्च [illegible] उनः फल निष्पत्तौ । फलतीति फाल्गुनः । मिथुनफाल्गुनी एवौ उनप्रत्ययान्तौ निपात्येते । जयतीत्येवं शीलो जिष्णुः । '⁵जिभुवोः स्नुक्' । श्वेता वाजिनो यस्य स श्वेतवाजी । कपिर्वानरो ध्वजे यस्य स कपिध्वजः । गां वीयतीत्येवंशीलो गाण्डीवी । कार्मुकं धनुरस्तीत्यस्य कार्मुकी । सव्ये सचयतीति सव्यसाची । मध्यमश्चासौ पाण्डवः मध्यमपाण्डवः । युधिष्ठिरभीमयोः सहदेवनकुलयोर्मध्येऽर्जुनः तेन मध्यमपाण्डवः कथ्यते । वृषं सिनोति बध्नातीति वृषसेनः । सुनिर्मुच्यते शत्रुभिः सुनिर्मोक्षः । दुःखम्बन्धात् । दैत्यस्यारिः शत्रुर्दैत्यारिः । शक्रस्येन्द्रस्य नन्दनः शक्रनन्दनः अर्जुनः कथ्यते । धर्मस्य पुत्रो युधिष्ठिरः । वायोर्भीमः । इन्द्रस्यार्जुनः । अश्विनीकुमारयोर्नकुलसहदेवौ पुत्रौ । भारतमेवं तत् । कर्णे शूलं विद्यते यस्यासौ कर्णशूली । किरीटं शेखरं विद्यते यस्यासौ किरीटी । शब्दभेदोऽस्त्यस्य शब्दभेदी ।

१ का सू ४।१।२९ । अत्र दुर्गवृत्ति । २ का सू ४।१।१ । ३ का सू २।४।४९ । ४ का उ सू २।६ । ५ का उ सू २।६१ । फल निष्पत्तौ उनप्रत्ययो गोऽन्तम् । फलति कर्मीतिकिमयते इत्यर्थः । ६ का सू ४।४।१८ । ७ गां वीयतीति चोद्यम् । विराट्नगरे पाण्डवानुष्ठानाम भीष्मकर्णद्रोणादीनाम् अर्जुनगोग्रहरक्षणस्य महाभारतोक्तत्वात् । वस्तुतस्तु गाण्डीव गाण्डीवमिति अर्जुनधनुषो नाम तदस्यास्तीति गाण्डीवी इति मत्वर्थीय इन् । तदुक्तं अमरकोषे — गाण्डीवो गाण्डिवोऽस्त्रियाम् । गाण्डीवी गाण्डिवोऽप्यस्त्री इति ११५।४४। मूले गाण्डीवशब्दस्तु गाण्डी ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । 'गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्' पा सू ५।२।११० । इति मत्वर्थीयो वः । तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इन् । ८ सव्येन वामपाणिनापि सचते बाणान् सर्वतीति सव्यसाची ।

केचित् शब्दवेधीति पठन्ति तदपि स्यात् । जि जये । धनपूर्वः । धनं जितवान् धनञ्जयः । 'नाम्नि च' । नाम्नस्तु पुरुषः । "एधमन्" । "कुरुषा वृषोर्मेन्तः ।" धनञ्जयेति कोर्नामाभिधानमपि ज्ञातव्यम् । स कथम्भूत ? शब्दभेदी । यतः परः कोऽपि नास्ति । पाण्डवनाम मिषेण स्वनाम कथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोर्वैरी वायुपुत्रो वृकोदर ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुघ्नः । कीचकघ्नः । कुरुरिपुः । कीचकरिपुः । अनिलसुत । पवनात्मज । इत्यादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । वृकोऽरण्यश्वा तद्वत् उदरं यस्य स वृकोदरः[6] ।

समवर्ती यम काल कृतान्तो मृत्युरन्तक ॥ १४५ ॥

वृत् वर्तने । सर्वेषु सम तुल्यं वर्तते समवर्ती । नान्त । रिपौ मित्रे च सम वर्तते इति वा । यम यति नियच्छति प्रजा यमः । यमस्त्वाकन्यातः । कलयति कल्पत् विनाशहेतुत्वेन कालः । कृतोऽन्तो विनाशो येन स कृतान्त । म्रियतेऽनेनेति मृत्यु । भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ[7] । अन्तं करोतीति अन्तकः । शमन । प्रेतपति । पितृपति । कीनाशः । वैवस्वत । कालिन्दीसोदर । धर्मराजः । दण्डधरः । हरिः । दक्षिणापतिः । श्राद्धदेव ।

तदात्मजो जातरिपु कौन्तेयो भरतान्वय ।

कौरव्यो राजयक्ष्मा ऽसौ सोमवंशो युधिष्ठिर ॥ १४६ ॥

तत युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्तदात्मजः । धर्मपुत्र । धर्मोद्भव । कृतान्तपोत । मृत्युनन्दन । अन्तकदारक । इत्यादीनि युधिष्ठिरपर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । जातस्य स्वगोत्रस्य रिपुः[10] जातरिपुः । कुन्त्या अपत्यं पुमान् कौन्तेयः । भरतोऽन्वयोऽस्य भरतान्वयः । कुरोरपत्यं पुमान् कौरव्यः । राजभिर्नरेन्द्रैर्यज्यते पूज्यते राजयक्ष्मा । ' सर्वधातुभ्यो मन" । राजयज्वा इति केचित्पठन्ति । सोमो वंशोऽस्य सोमवंशः । युधि संग्रामे स्थिरतीति युधिष्ठिरः ।

श्वेतार्जुनो शुचि श्वेतो वलक्ष सितपाण्डुरम् ।

शुक्लावदात धवल पाण्डु शुभ्र शशिप्रभम् ॥ १४७ ॥

श्वितायि श्वेत । श्वेतते श्वेत[12] । अर्जति ऽर्जुन[13] । शोचतीति शुचिः[14] । शुच शोके । श्वायते श्वेत[15] । वलक्षयति वलक्ष । वलक्ष[16] । सिनोति बध्नाति(मन)सित । पण्डते याति मनोऽत्र पाण्डुरः । अथवा 'नगपांसुपाण्डुभ्यः र' पाण्डुत्वमस्यास्तीति पाण्डुर । पाण्डु । पाण्डर । शुक्यति मनोऽस्मिन् शुक्लः । शुक गतौ । अवदायते शोध्यते अवदात । धवति धवल । पण्डते याति

१ 'नाम्नि पुरुषाभिधाविरचितमिश्रे समायाम्' का सू. ४।३।४४ । २ का सू. ३।५।१। ३ का सू १।२।१९ । ४ का सू. ४।१।२२ । ५ धनञ्जयास्य कविग्रन्थस्य भेदता नास्तीत्यर्थः । ६ वृको भीमजठराग्नि च उदरे यस्यसापि । ७ कचायतीत्यस्य स्थाने कालयतीति भवितव्यम् । ८ का उ सू. २।१४ । ९ यस्यादुर्गीत्यन्तयति अन्तवस्यन्तक इति भावः । १० कोशान्तरप्रमाणाभावात् महाभारतादिकथाभावात् महाकविधनञ्जयाय 'अजातरिपुः इतिस्थानेऽत्र युक्तः । न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य 'अजातशत्रु' इति संज्ञा । तदुक्तम्— अजातशत्रु शल्यारिर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिर' । अभि चि ३।३ ८ । ११ का उ सू. ३।२८ । १२ श्विता वर्णे । स्वादि व्याप्त । पचाद्यच । १३ अर्जति तद्गुणतां वने । १४ शुभ्रशुक्लवलक्षपाण्डु सर्वतन्त्रेषु सीयस्य शाकानुमत्सिद्धम् । शोचयति निर्मलीभवति शुचि । शुच दीप्ता । क । १५ श्वेदृ गतौ । श्वायते गच्छति नीलादिवर्णविशुद्धत्वम् । 'परसाभ्यामितन् । पा उ सू. ३।९३ । इतन् । १६ वलक्षयति अव-लक्ष्यते वा अन्यवर्णापेक्षया उभयपक्षेनेति । यदि भागुरिरस्ताप इत्यस्योपक्रमे । १७ अवदायत एम । दैप् शोधने । कर्मणि क्तः । १८ पुनीषिधीभाम् इति हैमधातु । धवति मनोऽत्र । धावु गतिशुद्धयो । वलञ्च हसरचतीति दासायन ।

मनोऽस्मिन् पाण्डु [1] । शोभते शुभ्रः । शशिन इव प्रभा यस्य शशिप्रभम् । गौरः । हरिणः ।

कृष्णं नीलासितं कालम्

चत्वारः कृष्णे । वर्णान् कर्षति [2] कृष्णः । नीलति नीलम् [3] । उभयम् । न सितम् असितम् । कं सुखमालाति कालः । कालयति वा मन [4] कालः । मेचकम् । श्यामलम् । श्यामं च । पालाशम् [5] । हरित् । शितिकण्ठाभ इति दुर्गः ।

धूमं धूम्रमलिप्रभम् ।

त्रिशिष्ट [6] कृष्णे वर्ण । धूनाति धूमः । धूनोत्यभिभवति रागं धूम्रः । धूमलश्च । अलि वत्प्रभा यस्य सोऽलिप्रभम् ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतमसं तमम् ॥ १४८ ॥

ताम्यति मन्दीभवति जनुरत्र तमः । तामसम् । क्लीबे । अन्धं द्रष्टृ प्रधानं करोतीति अन्धकारम् । तिम्यते मन्दायतेऽनेन तिमिरम् । ध्वान्तम् । ध्वन्यते ध्वान्तम् । सम् सम्यक् प्रकारेण तमः सन्तमसम् । ताम्यतीति तमिस्त्रम् । क्लीबे । अवतमसम् । अन्धतमसम् । तमिस्रम् । भूच्छाया । भूच्छायम् । विगम्बरम् ।

लोहितं रक्तमाताम्रं पाटलं विशदारुणम् ।

षड् रक्ते । रोहति जायते शोभाऽत्र लोहितः । रज्यते रक्तम् [7] । आताम्यते काङ्क्ष्यते वर्णेषु आताम्रं । पाटयतीति पाटलः । पाटलः । विशीर्यते विशदः । ऋच्छति इयर्ति अरुणः (वि शदऽ) अरुणः ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

हरिद्रारक्तवर्णे त्रयः । पीयते मनोऽनेन पीतम् [8] । गायते गच्छति वर्णविशेषं गौरः [10] । तथा च नाममालायाम् [11]—'गौरः श्वेतेऽरुणे पीते विशुद्धे चन्द्रमस्यपि । विशदः' । हरिद्रावत् आभा छविर्यस्य हरिद्राभः ।

पालाशं हरितं हरित् ॥१४९॥

हरिद्वर्णे त्रयः । पलाशस्य वर्णस्यायं पालाशः । पलाश इत्याह [4]—'राक्षसे । किंशुके पर्णे पलाशाख्या । हरितस्यपि' । हरति चित्तं हरितम् । हरित् ।

---

१ पम्यते लूयते पाण्डु । 'पाण्डुश्पीत' इति यु । इति हेमचन्द्रः । २ कर्षति मन इति रामाश्रम । दूर्वावर्णे इति मक । ३ नीलि वर्णे । नाम्नुपधेति का सू कः । ४ कालयति मन इत्यन्यत्र । ५ अयं पाठोऽत्र न युक्तः । 'पालाशं हरितं हरित्' इति पदस्य शीराश्रमे दृश्यः । ६ कृष्णा मिश्रितवर्णा ते धूम्रधूमलशब्दाविति वैशिष्ट्यार्थ । तदुक्तम्—'धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते इत्यमरः । १।५।१६ । काव्यामरेशाविष्टैः ममसी विष्क्रिमनिवेशालयात्—'काम्यते ध्वन्यते इति । सर्वरीगहरलथा ध्वान्तं ध्वान्तमिति हेमचन्द्र । ८ अत्र रक्त प्रभा विशदारुण इति स्तवक्रम । विशद च तदरुणं श्वेत विशिष्टमिति मध । नवेन पाटलम् । तदुक्तम्—श्वेतरक्तस्तु पाटलः इत्यमरः । ९ 'षड् नीलवर्णानि प्रा आहे । [illegible] ५ । ६ । इतीमन् [illegible] । ९ [illegible] रम रमते रम वा रम मिरथ मा । ११ गायते वर्णान् पीरः । गौर् धातु । रि । इत्यत्र । १२ गूयते उद्यन्ते ममाऽस्मिन् गः । [illegible] । [illegible] । गुप्यते गौः । इति हेमच । [illegible] नरसेन । १३ [illegible] ५ । १४ [illegible] ५२ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्ग्यपि ।

पद् रक्तवर्णे[1] । "श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः[2]" अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारश्च । हरिणी । तथा च हलायुधे[3]—"शुकाभा हरिणी स्मृता ।" हरिता च । रोहति जायते रोमाञ्च लोहितः । रक्तमीरकम् । श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः' अनेन ईप्रत्ययस्य च नकारः । लोहिनी जाता । हलायुधे[4]—

"जपाकुसुमसङ्काशा लोहिनी परिकीर्तिता"

शोणते शोणी । गावे गौरः । नदादित्वात् ङीः । गौरी । श्यायते गच्छति भिन्नं श्येनी । हलायुधे—"श्येनी कुमुदपत्राभा ।[5]" श्येना च । पेशति पिशङ्गः । ईप्रत्यये पिशङ्गी ।

सारङ्गी शबरी काली कल्माषी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

पद्[6] पञ्च वर्णे । सारयति गमयति [बहुवर्णान्] सारङ्गः । ईप्रत्यये सारङ्गी । शबति याति वर्णान् शबरः शबलश्च । ईप्रत्यये शबरी । कालयति कालः । ईप्रत्यये काली । कलयति वर्णान् कल्माषः । ईः कल्माषी । नील वर्णे । नीलयति नीलम् । ईप्रत्यये नीली । पिञ्जयति पिञ्जरः । ईप्रत्यये पिञ्जरी ।

परागं मधु किञ्जल्कं मकरन्दं च कौसुमम् ।

पञ्च कुसुमरसौ । परं मकरमगच्छते समाश्रयते पुष्पेषु परागः । उभयम् । मन्यते समाश्रयते पुष्पेषु मधु । उभयम् । किं जलति किञ्जल्कम् । मकरपदे मकरपदे पुष्पमनेन मकरन्दम् । कुसुमस्येदं कौसुमम् ।

उपचाररजः पांसुरेणुधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । रंज रागे । रज्यतेऽनेन रजः । "उपिरञ्जिभ्यां नन्तः" । नाम पशू परिणामने । पंशयते पांसुः । "अविरीतिपिभ्यश्च उप् ।" रीङ् स्रवौ । रीयते रेणुः । "धामादिभ्यो मुः" । धूयते धुनोति इति वा धूलिः । उपचारात् पुष्परजः । कुसुमपांसुः । पुष्परेणुः । तथा पुष्पधूलिः । प्रसवरजः । प्रसवरेणुः । इत्यादीनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्कमथ मलिनं किल्बिषं लक्ष्म लाञ्छनम्
निरोधममथ पङ्कं मलीमसमपि त्यजेत् ॥१५२॥

---

१ अत्र पद्लोहितादिवाचकं वर्णविशिष्टे इति मतम्, न तु रक्तवर्णे । तद्वर्णभेदा यथा—हरिणी शुकाभा लोहिनी जपाकुसुमच्छाया शोणी कोकनदच्छविः, गौरी हरिद्राभा श्येनी कुमुदपत्राभा पिशङ्गी पीतरक्ता । २ 'श्येतैतहरितभरितरोहिताद् वर्णान्तो नः' है श २।४।३६ । ३ 'श्येनी कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमच्छाया रोहिणी परिकीर्तिता ।' इति पूर्णः श्लोकः । ३ हलायु ४।५३ । ४ हला ४।५१ । ५ हला ४।५२ । ६ अत्र पद् लोहितादिवाचके वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तद्भेदो यथा—सारङ्गी शबरी कल्माष्यश्चित्रवर्णाः । काली नीलावलिः । पिञ्जरी पीतरक्ता । ७ अत्र परागकिञ्जल्कशब्दौ पुष्परजोवाचकौ मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परसवाचकौ, कौसुम शब्दस्तदुभयवाचकः, इति विवेकः । ८. परागच्छति परमुत्कर्षमगाति वैति विग्रहः उत्तः । ९ किञ्चिज्जलति 'जल घातने' । बाहुलकात् । किञ्चिज्जलति जडीभवति इति धी स्वा । १ मकरमपि यति कामजनकत्वात्मकरम् । 'दो अवखण्डने' । कः । मकरमपि मन्दति मन्नातीति वा । 'मदि मन्दने' । कर्मण्यण् । पृषोदरादिः । इति रामाश्रम । ११ का उ सू ४।९९ । १२ का उ सू १।१। १३ का उ सू २।७ ।

दश ध्वजे । मल्यते कलङ्केन कलङ्कः[१] । न वर्णं समीचीनम् अवर्णम्[२] । मल्यते वार्यतेऽपवर्गो-ऽनेन मलिनम् । किं कुत्सितं, कल्पति किल्बिषकम् । कलयति परं नाम्नम् कल्मषम् । लाञ्छ्यतेऽनेन लाञ्छनम् । नियुज्यते नियोगम्[३] । नञ् पूर्वो वाऽन् । न वर्णादीरयमाः । "कर्मणीमानीमानमाः"[४] । पच्यते पङ्कम् । मलिना कलंकेन मल्यते[५] परिमार्जीक्रियते मलीमसः । तं त्यजेत् सत्पुरुष ।

अनोदाहरणं कीर्तिं साधुवादं यशो विदुः ।

यशो गुणाधर्लि स्यातिं

इस यशसि । जनानां लोकानामुदाहरणं जनेन लोकैर्मोदाक्रियते वा अनोदाहरणम् । कृत संशब्दे । कृत्—"पुरादिभ्यः" ।" इन् । कृत कारिते इर् । किर्ति जाता । नामिनोर्वा । कीर्ति जातम् । कीर्तनं कीर्तिः ।'कीर्तीयोः क्तिन्' क्तिप्रत्यय । कारितलोप । शिषु व्यञ्जनेषु स्वरादेषु स्वरादीनां मध्ये एकव्यञ्जनलोपः । एकत्वकारो लुप्यते । ति । रेफ । साधूनां सत्पुरुषाणां वादः साधुवादः । कुशलो योग्यो हितस्य साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते यशः । 'अस् शिरस' अस्मादसन् प्रत्ययो भवति स च धस्मात् । अस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । कथ्यति साधुजनैः यशः । गुणानामभवति भेकि गुणावलिः । ख्यायते ख्यातिः । श्लोकः । अभिख्या । समाख्या ।

अवधान तु साहसम् ॥१५३॥

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवधानं च । सह्यते [१२]साहसम् ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगा शासनं तथा ।

षडादेशे । प्रेष्यते इति प्रेष्यः । आ समन्ताद् दिश्यतीत्यादेशः[१३] । निदिश्यते निदिशतीति वा निदेशः । आज्ञानातीत्याज्ञा[१४] । नियुज्यन्ते नियोगाः । शास्यते प्रतिपाद्यते शासनम् । शासु अनुशिष्टौ ।

सन्देश प्रियपयोः

स्त्रीपुरुषयोः गुप्तवार्तापि सन्देशः । सन्दिशति[१५] सन्देशः । अमरसिंहनाममालायाम्[१६]—'सन्देशवाग्वाचिकं स्यात् ।'

वार्ता प्रवृत्ति किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिरुपलक्षणं विद्यतेऽस्या वार्ता । [१७]"प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चावृत्तिभ्यो ण"

---

१ कं प्रमाणमपि कलयति हीनतां गमयतीत्यर्थः । २. न भवितुं योग्यमित्यवर्णं वर्णम् । "अवर्णपक्षवर्णगर्गपरिवादव्यानिरीक्षु" इति पद् । ३ भाव प्रमाणान्तरमुपलभ्यम् । नियुज्यत निश्चयेन ज्ञायते कर्तादिधनीभ्येति करणे घञ् । कर्त्रादिना राजशासनमिति लक्ष्यदर्शनात् । ४ का उ सू १।४१ । ५. पच्यते दुःखमनेन । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् । ६ 'मली मली परिमाणे' । पुंसि तकारो वा । यद्वा मलाऽस्त्यस्तीति मलीमसस्तमिदं रजादिना अस्त्यर्थीय ईमस् प्रत्ययः । टीकाविग्रहभिन्नः । तत्र मलिनमेव इत्यादयः । ७ का सू १।२।११ । ८ कीर्तीयो क्तिपेति निर्देशात् इतः कारिते इर् । ९ "नामिनोर्वोऽकुर्छुरोर्व्यञ्जने" का सू ३।८।१४ । १ का सू ४।५।८९ । ११ का उ सू ४।६ । १२ सहति घटे सर्व साहसम् । १३ आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४ अजानाति आज्ञायते आज्ञानं वेति विग्रहः । १५ सन्दिश्यते इति कर्मणि घञ् न्याय्यः । १६ अम को १।६।१७ । १७ पा सू ५।२।१ १ ।

स्त्रीक्लीबे वार्ता च । प्रवर्तते कर्णोऽनया प्रवृत्तिः । लिङ्गाम । किं कुत्सित वदत्यस्य किंवदन्ती[1] । वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

कठ् कृच्छ्रे । कठति कृच्छ्रेण जीवति कठोरः[2] । कठति कठिनम् । स्तभ्नोति स्म स्तब्धः । कक लौल्येऽस्य धातुः । कर्केति करोति निर्दयत्वं कर्कशः । परुष्यति कृष्यतीति परुषः[3] । कुष कुष स्न दीप्तौ । दृह दृहि वृद्धौ । दृहति स्म दृढः । "[4]परिवृढदृढौ प्रभुबलवतोः । क्रूरः । खक्खटः । खरः । कर्कः । निष्ठुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एधितम् । त्रयो त्रिषु ।

अश्लीलं काहलं फल्गु

निस्सारे वर्तते चर । न श्लीयते न श्लिष्यते तथां विलम अश्लीलम्[5] । वचनम् । कं शिरः आ समन्तात् हलति जगोममान करोतीति काहलम्[6] । लोहलम् । लुड लौल्ये । फल निष्पत्तौ । फलति फल्गु[7] । फल्गुवल्गुवल्गुफल्गुशिग्रुरिपुगुरुपथ ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

कमः कोमले । कौ पृथिव्यां मलते कोमलम्[8] । मृद क्षोदे । मृद्नातीति मृदु[9] । पिशति पेशलम्[11] । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

पद् गतौ । प्रत्यग्रगति प्रत्यग्रम्[12] । सम्प्रति भवं साम्प्रतम् । नूयते नव्यम्[13] । नौति नवम्[14] । नूयते नूतनम्[15] । अग्रे भवम् अग्रिमम्[16] । "पृथ्वादिभ्य इमन्वा" । अभिनवम् ।

---

1 कोऽपि वाद । विष्णुर्वाद् भवेरौणादिको झच् प्रत्यय झस्यान्त । गौरादित्वान्ङीष् । इति रामाश्रम । 2 "कठिचकिभ्यामोरः" का उ सू ४।६४ । 'कठ कृच्छ्रजीवने' । 3 परि-भागुरिरल्लोपमिच्छतेरत्वोपो मलपत्येति टीकोक्तविग्रहभिन्नः । रामाश्रमस्तु— पिपर्ति पूरयति कर्णं तुष्टि करोति । 'पृ पालनपूरणयोः' । 'पृनहि' इत्यादिना उ सू ८।७५ । उषच् । इत्याह । पृणाति पूरयति पर कोपेनेति हैमचन्द्रः । 4 का सू ४।२।१५ । 5 न श्रियं लातीति अश्लीलम् । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । इति रामाश्रमः । न श्रीरस्यास्तीति सिध्मादित्वाल्ल-त्वयोर्वा लः । 6 काहलोऽकुटवागिति हैमचन्द्रः । 7 फलति विशीर्यते इत्यन्यत्र । 8 का उ सू १।९। इत्युप्रत्ययः गम । 9 कौ पृथिव्यां मलते धारयति भियम् इत्यर्थः । मल मल्ल धारणे पचाद्यच् । परमेष कुमल इत्येव सिध्यति । वस्तुतस्तु 'कोमल' शब्दस्य सिद्धिः मकारान्तरेणैव साधनीया । कौतीति कोमल इति विग्रहोऽभिधानचिन्तामणौ । काम्यते कमेः इत्यन्यत्र । 10 मृद्यते इति कर्मणि कु प्रत्ययो न्याय्यः । 11 पिशत्येकदेशेन तर्वं करोतीति औणादिकोऽलच् । रामाश्रमस्तु— पिश समाधौ पेशनं पेशः समाहितचित्तता सोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वाल्लच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दक्षार्थो मुख्य कोमलार्थो गौण' । तदुक्तम्— 'दक्षे चतुरपेशलपटवः सूत्थान उष्णश्च इत्यमरः । २।१० ।१९ । दक्षस्तु पेशलः ।" इति अभि चि ३।४८ । 12 अग गतौ" । कः । प्रतिक्षणमग्रमस्येति क्षीरस्वामि रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हैमचन्द्रः । 13 णु स्तवने । यतो यत् । 14 नूयते नवम् । अबीरप् । एवं कर्मणि विग्रहो युक्तः । 15 नवमेव नूतनम् । "नवस्य नूआदेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्ययाः" वा ५।४।३ । इति तनप् प्रत्ययो नूआदेशश्च । इत्यत्र । 16 अग्रादिपश्चाडिमच् वा इति डिमच् । मात्र पृथ्वादिभ्यः इमन् तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथ्वादौ पाठाभावाच्च । तथापि । अभिमन् इत्य निरुपपद्यते ।

मूलम् । सर्वे त्रिषु ।

पुराणे जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् पुराणम् । जठ इति सौत्रोऽयं धातुः । जठतीति जठरम्[1] । जीर्यति जीर्णम् । प्राक् पूर्वं भवम् प्राक्तनम् । सुष्ठु चिरं भवं सुचिरन्तनम् । प्रत्नम् । प्रतनम् ।

मो रे हं हो इत्यामन्त्रे

एते शब्दा आमन्त्रणार्थे वर्तन्ते । मू बन्धने । मोः[2] । रेपृ गतौ । रः । हनु हिंसागत्योः । हं । हु दाने । हो । हि गतौ । हे ।

कच्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देहार्थे[3] द्वौ शब्दौ वर्तेते । अविशेषाभिधाने चिच्चनशब्दौ प्रयोक्तव्यौ । तथा चोक्तम्—'किम सर्वविभक्त्यन्ताच्चिच्चनौ ।' कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि । स्त्रियां काचित् काचन इत्यादि । नपुंसके किञ्चित् । किञ्चन । इत्यादि ।

"प्राक्सत्यो"ऽह्नाय[4] "सपदि[5]

शीघ्रार्थे त्रयः शब्दा वर्तन्ते ।

निषेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

निषेधे चत्वारः शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुङ्गमुच्चमुन्नतमुच्छ्रितम् ।

षड् दीर्घे । उच्चीयते उच्चैस् । अव्ययः । उच्चं च अवचं च उच्चावचम् । तुङ्गति दैर्घ्यमारभते तुङ्गम् । उच्चीयते उच्चम् । उन्नमत्युन्नतम्[6] । उच्छ्रीयते उच्छ्रितम् । प्रांशु[7] तालम्बः । उदग्रम् । दीर्घम् । आयतं च ।

नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर् ह्रस्वं नयेत्स्वरम् ॥१५८॥

षड् ह्रस्वे । निचीयते नीचम् । न्यञ्चतीति न्यक् । आतन्यते आतनम् । कौति ध्वानिं कुब्जः ।

---

१ यद्यपि जरठशब्दो जीर्णे प्रसिद्धो जठरशब्दस्तूदरे तथापि क्वचिज्जठरशब्दोऽपि जीर्णे पठितस्तदाशयेनाह—जठरीति जरठमिति । यदुक्तम्—'जठरः कुक्षिकठिनयो मने ह ३।५५१ । २. भातीति भोस् । डोस्प्रत्ययः । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । डिच् । यथा रे चेटाः । हं हो इति पृथक्शब्दोपन्यासमयुक्तम् । परन्तु माघकादौ 'ह हो' इत्येकमेव सम्बोधने प्रयुज्यते । हं जुहोतीति हंहो । यथा हंहो स्निग्ध सखे । हिनोति हे । हि गतौ वृद्धौ"। डिच् । यथा हे हेरम्ब । ३ अविशेषार्थे इत्याशयः । ४ प्राति प्राक् । 'प्रा कुस्याथां गतौ' । बाहुलकादक्प्रकार इत् । स चासौ सत्यो प्राक्सत्यः । ५. आह्ननम् आह्नाय 'ह्नुङ् अपनयने' । घञ् । पृषोदरादित्वाद् यस्य न । ६ सम्पद्यते सपदि । 'पद गतौ' । इन् । पृषोदरादित्वात्सम्योऽन्त्यलोपः । ७ तुङ्गति दैर्घ्यं पालयतीति । घञ् । कुत्वम् । ८. उन्नमति स्म उन्नतम् । ९. ऊर्ध्वं श्रयते उच्छ्रितम् । १० प्रस्नुते दैर्घ्यं प्रांशु । "अशूङ् व्याप्तौ" । ११ निम्नभावो वाच्यो चिनोतीति । डः । इति रामाश्रम । निम्नमञ्चति नीचैरल्पस्य वा । यद्वा आदित्वाद् । अव्ययानां भमात्रे टिलोप । १२ मानप्रमाणमुपलक्षणम् । १३ कौति ध्वनिविशेषं मूले सूचयति । कौ पृथिव्याम् उब्जति आर्जवं जहाति । "उब्ज आर्जवे" । घञ् । शकन्ध्वादि । कुः ईषद् उब्जमार्जवमस्य चेति रामाश्रम ।

ग्पुम्बरथ । निधीयते नीचैस् । इसति इस्व ।

अमा सह समं साकं मार्द्ध सत्रा सजूः ममा ।

अष्टौ सार्थे । अमति अमा[1] । सह हन्ति गच्छति सह । सह मिनोति समम् । सह अकति गच्छति साकम् । सह ऋध्यम् साध म । सह त्रायते सत्रा । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुष् सहपूर्वं । सह जुषते सजूः । क्विप् वेर्लोपः । सि । मा ङ[2] । तिलोप । समस्ति समा[3] । सह मान्ति वर्तन्ते अत्रार्थो वाची वा । स्त्रीलिङ्गे ।

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं सदा ॥१५९॥

षट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले सर्वदा । काले किं[4] सर्वदेकाप्येभ्य एव दा । सतन्यतेस्म सततं सन्ततम् वा । नियच्छति नित्यम्[5] । शश्वतीति शाश्वतम् । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपात । सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य समादेशश्च । सर्वस्मिन् काले सदा । सना तनं[6] सनातनम् । ध्रुवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनश्वरम् । अविनश्वरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनावस्था विरहः पल्लकं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोजनं वियोग । मन्मथस्य कन्दर्पस्यावस्था मदनावस्था । विरहयं विरह । मल मल्ल धारणे । मल्लशयाने कचिल्लकं इति पठन्ति । पल्लत पल्लः । स्वार्थे कः पल्लकः ।

प्रेमाभिलापमालम्ब्य रागः स्नेहमतः परम् ॥१६०॥

पञ्च स्नेहे । प्रियस्य भाव कर्म वा प्रेमा । प्रिय[9] स्थिरेति प्रादेशः । अभिलप्यते ऽभिलापः । लष श्लेषणक्रीडनयोः । आलम्बते आलम्ब्यम्[11] । [12]वकिशदिपवर्गान्ताच्च" । रञ्ज रागे । रञ्ज् । रञ्जनं रागः । भावे घञ् । [13]"रञ्जेर्भावकरणयोः" पञ्चमलोपः । अस्त्री दीर्घ । "चजो कुघौ घुद् ण्यतोः" कारागकार । प्र वि । रेफः । अथवा रज्यतऽनेन रागः । "भावकरणयोः[14]"। करणे घञ् । प्र [15]"रञ्जेर्भावकरणयोः पञ्चमलोप । अस्त्री दीर्घः । चजो कुघाविति ककारगकार । स्निह्यते स्नेहः ।

संहितं सहितं युक्तं सपृक्तं समृतं युतम् ।

मस्कृतं समवेतं च प्रागुन्वीतमन्वितम् ॥१६१॥

---

१ न माति सह मा[इ]नामनेकमाम्येयता न गच्छति । अव्ययः । अमत्ययो वा । २ भाष्कनाथ का सू २।१।४९ । ३ "अती समी परिमाणे । सम धातुः । पचाद्यच् । समिति मान्तम् व्ययम् । सार्थकमभीकम् । तद्भिन्न समा शब्दो वर्णवाचको न तु सहायवाचक । तदुक्तम्— हायनोऽस्त्री शरत्समा इत्यमरः । अतोऽस्मिन्नर्थे एतस्य प्रामाण्यं चिन्त्यम् । सह मान्ति वर्तन्ते भावा भावामिति विग्रहान्यि वर्णावाचकसमाशब्द एव समुद्धृत । तत्रैव प्रभूना समानान् । ४ का सू २।१।१८ । ५ तनु विस्तारे" । क्तः । तमो वा हितत्वयोः इति मलोपः । ६ स्वम्नेमु[इ] नित्यमिति वा नियम्यादम् । नियच्छति नियतं भवतीत्यर्थं । ७ सन सनतीति वा युतम् । सना लुप्तगतो । बाहुलकादत् । ८ सनातनादिशब्दानां विशेष्यनिघ्नानां यथोक्तशब्दादिशब्दकमामार्थतया लीकृत्योपिर्न सद्गच्छते । ९ महतापत्ताभ्याम्बीभिर्वार्थसे प्रमाणाभ्यां नीचत्वम् । १ पा सू ६।४।१५७ । १० प्रादेश । इमनिच्प्रत्यय । पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा इति । ११ आलम्बशब्दस्य रागार्थे कोशान्तर संवादो नोपलभ्य । १२ का सू ४।२।११ । १३ का सू ४।१।६६ । १४ का सू ४।६।९९ । १५ का सू ४।५।९९ ।

इण् गतिरे। संहीयते संहितम्[1]। सहितम्।

"लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि।
समो वा हितततयोर्मांसस्य पचि युड्घञोः॥"

पीवर्न पुक्तम्[3]। पृची सम्पर्के। पृच्। सम्पृणक्ति स्म सम्पृक्तम्। "गत्यर्थाकर्मक[4]" इति कर्तरि क्तप्रत्ययः। "चजोः कुघि[5]"—यत्न कः। तत्रिभ्रयते स्म सम्भृतम्। यौतिस्म युतम्। संक्रियते स्म संस्कृतम्। समवेयते स्म समवेतम्। अन्वीयते स्म अन्वीतम्। अन्वितम्।

वर्त्माऽध्वा सरणि पन्था[7] मार्गः प्रचरसञ्चरौ।

सप्त मार्गे। वर्तन्ते प्रतिपद्यन्ते जना येन तत् वर्त्म। नान्तम्। 'सर्वधातुभ्यो मन्'। अध्वति गच्छति अनेन नान्तोऽध्वा[8]। सरत्यनया सरणिः। वस्त्रावत्रमः। सृतिश्चास्त्रियाम्। द्वौ। पतन्ति गच्छन्ति अनेन पन्था। नान्तः। इकारान्तोऽपि। पथिः। पथ। पथान। पन्था इत्यपि। एते पु सि। मार्ज्यते मार्गन्त्यनेन वा मार्गः[9]। पु सि। प्रकर्षेण चरत्यनेनेति प्रचरः। सञ्चरत्यनेनेति सञ्चरः। पद्धतिः। एकपदी। वर्तनी। अयनम्। पदवी। पथा। निगमः।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने गङ्गानामानि भवन्ति। त्रिपथगा। त्र्यध्वगा। त्रिसरणिः। त्रिपथा। त्रिप्रचरा। त्रिसञ्चरा।

घोषो गोमण्डलं व्रज ॥१६२॥

घवी गवां स्थाने। घोषन्ते गावोऽत्र घोषः। गवां मण्डलम् गोमण्डलम्। गावो। व्रजन्त्यत्र व्रजः। गोकुलम्। गोष्ठम्।

भृङ्गो रविहरिर्नाथहरिस्सिर्यत्क्व भृङ्गिराः।

पञ्च महिषादिके। परं भृणाति हिनस्तीति भृङ्गः[11] (म)। त्रिषु। हन्। हरवे। इ इति पूर्वः। रवि चर्मलेपकं कलमाप्ते हरति वहति रविहरिः। "हरतेर्दृतिनाथयोः[12] पशौ" इन्प्रत्ययः। नान्यस्तुकः। नाथं स्वामिनं हरतीति[13]नाथहरिः। 'हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ'। सिरोऽस्यास्तीति

---

१ उहीयते इति विग्रहो न युक्तः। सम्पूर्वस्य धाञ्चत्वाभावेऽस्यासम्भवात् अप्रतीतेः। अतः सन्धीयते स्म संहितम्। सम्पूर्वात्तुधातुः कर्मणये धाञ्चो हिरिति आदेशः। २. ६।१।१४४ का सू। ३ पृच्यते स्म पृक्तम्। ४ का सू. ४।६।४ । ५ का सू. ४।६।५६। ६ का उ सू. ४।२८। ७ अतति सततं गच्छति अनेोऽत्र अध्वा। "अत सातत्यगमने"। "पथिमथ्यृभुक्षामात्" का उ सू. ६।५९। इति इनिप्रत्ययः तकारस्य थकारश्च। "अपि अर्थ पथिकानाम्। अतेर्थ भेति इनिप् थभावस्तादेश। इति रामाश्रमः। ८. 'पत्लृ पतने'। पतेस्थश्चेतीति पोऽन्त्यादेशश्चेति प्रत्ययाश्रयः। पथन्तेऽनेन। 'पथ गतौ'। पथन्तोऽनेन। पथे गतौ। पथिमथिभ्यामिनि। इति रामाश्रम। ९. मृज्यते निवृत्तीक्रियते पादैः। मृजू शुद्धौ। घञ्। इति। कुत्व च। मार्ग्यते इति वा। 'मार्ग अन्वेषणे'। १० वाश्यते शब्दायते इत्यपि 'वाशृ शब्दे'। ११ "भृङ्गपृङ्गाङ्गन्यनि" का उ सू. १।४।४८। भृ हिंसायाम्। गन्प्रत्यये निपातः। भृङ्गा गवादीनां हिंसायामिति तथैव दुर्गः। तत्र 'शृङ्गमस्यास्तीति अर्शआदिभ्योऽच्। एवं सति महिषादिसंज्ञा संगच्छते। अश्वमाचे हिंसाया मेवार्थं स्यात्। १२ का सू. ४।३।२९। १३ नाथ नाथारन्तु हरतीत्यपरः।

त्सपश्चः[1] । श्वयतीति श्वशुरम् । "श्वशुरश्वशुराणि" एतेऽशुरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । श्वशुरानि विद्यन्ते येषां ते श्वशुरिणः ।

गौश्चतुष्पात्पशु

भयो[2] गवि । पुंसि गच्छतीति गौः । चत्वारः पादा यस्यासौ चतुष्पात् । स्यात् इति सौत्रो धातुः । स्यते [बाध्यते] इति पशुः । "अशूरस्ता—"अस्फुरम्भरुच्छरिशुभिद्कुशासुरांकुशम् कुशुरेणुमुद्गकुमारकुरुगवाः एते शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र यस्मिन् महते[4] महिषः । नद्यादित्वात् ङीप् । महिषी । दिग्धा उपचीयते तुषेन देहिका[5] ।

कृता नदीष्णो निष्णात कुशली निपुण पटु ।
क्षुण्ण प्रवीण प्रगल्भ कोविदश्च विशारद ॥१६४॥

एकादश कुशले । कृतार्थं इतं कर्मास्य कृती । नद्यां स्नातीति नदीष्णः । 'निनदीभ्यां[6] स्नातेः कौशले' इति षत्वम् । नितरां स्नाति स्म शुचित्वमाप्नोति स्म निष्णातः । कुशान् रक्षति कुशलः । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति निपुणः । शोभनकर्मत्वात् । पठति वाना तीति पटुः । क्षुणत्ति स्म क्षुण्णः । क्षुदिर् सम्पेषणे । प्रकृष्टा वीणास्य प्रवीणः इति मुख्यार्थं परित्यज्य निपुणे रूढः । तथाहु —

' निरूढा लक्षणाः केश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत् ।
क्रियन्तेऽसाम्प्रतं केश्चित्केश्चिन्नैव त्वशक्तितः ॥'

प्रगल्भते प्रगल्भः । गल्भ धार्ष्ट्यें । कौ वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते कोविदः । विशेषेण पापं शृणाति विशारदः । चेकाः । कृतहस्ताः । कृतमुखाः । कृतकर्मा । दक्षः । शिक्षितः ।

विदग्धश्चतुर

द्वौ चतुरे । विदह्यते[9] विदग्धः । पुरुषार्थान् चतते याचते चतुरः ।

धूर्तश्चाक्षकृत् कितव शठ ।

---

१ 'शिर्भम्भ' इत्यकारान्तपाठभिन्नस्य । बहुत्यमात्मेऽन्यतायेव "शिरवस्त्रिर्भलोप" इति शिवादित्य इति वकारान्तस्यैव युक्तत्वम् । वकारान्तत्वे चाथाधस्ताद् एकाकारीनत्वेन मुखे कुर्वीभवत्यम् । न चाका रान्तशिर्भसम्य कनाऽस्मभ्यनोपकारेण परवर्गेऽभिमत । तदुक्तम्—'पशुरित्रिर्भद्वरि च शि भार८१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वादेवा पर्यायत्वाभावात्स्वी भवतीति पाठश्चिन्त्य । गोशब्द पशुविशेषे बलीवर्दी । चतुष्पात्पशुशब्दयोः सर्वपशुवाचकत्वात्पर्यायत्वमिति विवेकः । ३ का उ सू० १।१५ । ४ "महिद् वृद्धौ" । महते वर्धते वा विशालकायत्वात् । औणादिकष्टिषच् । आगमशास्त्र स्यानित्यत्वात् नुम् । इत्यस्यार्थ । ५ आम कोपा-तरत्वात् । ६ पा सू ८।३।८९ । ७ अस्य पूर्वार्ध अभ्याससोद्घोषणे ११ कारिकाटीकायामेवमुपलभ्यते 'निरूढालक्षणाः काश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत्' इति । उत्तरार्धस्तु न समुपगत । ८ कौति प्रतिपादयति धर्मादि कौविदः । कुवातोर्विन् । वेत्तीति विदः । इगुप- धति कः । कविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येते सामासमा । ९ विशेषेण शारदोऽधृष्टः प्रत्यक्षो वा विशारदः । इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति रामा । १० विशेषेण मैर्दवित्व वहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्ते । धूर्वति स्म हिनस्ति स्म सदाचारं धूर्तः । चाटु करोतीति चाटुकृत् । कितवाऽस्त्यस्येति कितव । शठयतीति शठः । दाम्भिकः । कुहकः । कार्पटिकः । वाणिकः । कौसृतिकः[1] । वञ्चकः । मायावी । मायी ।

क्वापि नागरिको ज्ञेय

क्वापि कुत्रापि ज्ञेय ज्ञातव्यः । नगरे भवो नागरिकः ।

गोत्रसंज्ञाह्वनाम सत् ॥१६५॥

चत्वारो नाम्नि । गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रक्षति पालयति गोत्रम्[3] । संज्ञानं संज्ञा[4] । आह्वा च नाम च समाहारस्त्वारेकवचनम् । आहूयते लक्ष्यते आह्वम् । नमनं नाम[6] ।

मुग्धो मूढो जडो नेडो मूको मूर्खश्च कद्वद ।

दश मूर्खे । धर्मकार्येषु मुह्यति वैचित्त्यं गच्छतीति मुग्धः । मुह वैचित्त्ये । मुह्यति स्म मूढः । गत्यर्थेत्यादिना क्तः । ढो ढः[8] । । तवर्ग । ढ ढो लोपे । दीर्घः । रेफः । जडति न पुण्यं गच्छति[9] जडः । डलयोरैक्य । न ईड्यते न स्तूयते केनापि[10] नेडः । मूड बन्धने । मूयते मूकः । [11]मूकादय — 'मूकमूक धर्मकपुष्पकमूका' एते अव्युत्पन्ना निपात्यन्ते । मुह वैचित्त्ये । मुह्यति कार्येषु मूर्खः । मुर्छे[12] मूर्छे । कुत्सितं वदति कद्वदः । विधेयः । बालिशः । वालिशः । बालः । [14]बर्बरः । यथिता । [15]नालीकः । पशुः ।

स देवानां प्रियोऽप्राज्ञो मन्द

त्रयो मन्दे । देवानां प्रियः[16] । प्रथि (मि)व इत्यर्थः । न प्राज्ञः अप्राज्ञः । कार्येषु मन्दत्वे स्थिरत्वीनेति मन्दः ।

---

१ कुसृत्या चरतीति कौसृतिकः । तेन चरतीति ठक् । २ धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थः । ३ वचसा आचारेण च स्वस्य कुलं रक्ष्यते । नामाऽपि स्वानुरूपाचारवचोभ्यामात्मानं प्रतिष्ठापयति । रामाभ्रमस्तुरगुरुते ज्ञाप्यते उपार्यते इति व्युत्पत्तिमाह । "गुङ् शब्दे" । ४ तदुक्तम्—संज्ञा स्यात्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना इति । अम को १।१।११ । ५ अन्यत्रकृतेऽनेनेति योगः । ना ना स्त्रीलिङ्गी भवति । ६ नमनं नामेत्यशुद्धम् । भावे यदि प्रत्ययस्तदा दन्त्यनामधेयस्यानुपपत्तेः । अत मनिन् प्रत्यये मनिन्प्रत्यये उच्यतेऽभिधीयतेऽर्थो अनेनेति विग्रहः न्याय्य । नामन् सीमन् इति निपातित । ७ अत्र मुहादीनां वा का सू ४।१।८९ । इति तकारस्य ढकारः । ८. "तवर्गस्य चटवर्गाट्टवर्गौ" का सू ३।८।५। इति परस्य दः । ९ "ढ ढलोपे दीर्घश्चानणः" । का सू ३।८।९। इति पूर्वस्य दीर्घः । १० जडति तीव्रो न भवति । डलयोरैक्य जड इति हैमचन्द्रः । ११ नेडयन्दः बोधान्तर नीरसश्च । एडमूकस्तु जडमूकशब्दो वा वाग्ग्रुतिवर्जितार्थे वर्त्तते । तदुक्तम्—"एडमूकस्तु वक्तुं श्रोतुमवर्जिते" इति । अम को ३।१।३८ । 'एडमूको वाक्श्रुतिवर्जितो अभि चि ३।१२। यो वक्तुं श्रोतुं च न शक्नोति स एडमूक इति कथ्यते । तदभिप्रायमुपलभ्येऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण अत्र प्रयोग अनेकार्थो वा अधिकार्थः सामान्याभिप्रायस्य प्रयोगः । १२ का उ सू २१५८ । १३ का उ सू ५।१३ । १४ नाय व्याख्यानान्तरमुपलभ्यम । १५ क्वापि नाल्पममस्याम् । १६ मनाऽस्मि वाचस्पत्यः ३।५४ । व्याख्याम । तदुक्तम्—नालीकोऽस्त्र शरे न च नालीकं पद्मसद्मनि इति । १७ देवानां प्रिय इति च मूर्खे" अम ३।१।२१ । षष्ठ्या अलुक् इति पाणिनिः ।

धीनामवर्जित: ॥ १६६ ॥

धीवर्जित: । बुद्धिवर्जित: । प्रतिभावर्जित: । प्रज्ञावर्जित: । मनीषावर्जित: । धिषणावर्जित: । मतिवर्जित: । संख्यावर्जित: । इत्यादीनि मूर्खनामानि भवन्ति ।

पाटिका कलमः शालिर्व्रीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वार: शालिभेदे । परिपाकेण पच्यन्ते पाटिका[1] । पटिर्दिवसैस्तथा इत्यर्थ: । कलयति पुष्टिमनेन कलम: । शालते धान्येषु शालि: । अथवा सह शालिना भ्रमरेण युत: शालि: । वहति वर्धते व्रीहि: ।[2] स्तम्बकरि: ।

वत्सः शकृत्करिर्जातः पोतकः षड्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्ष्णं वदति वत्स: । शकृत् करोतीति शकृत्करि: ।(३)। "स्तम्ब[3]शकृतोरिनि" व्रीहिवत्सयोरुपलक्षणानामिन् । पद् दन्ता यस्य स पोतक: । "वयसि दन्तस्य दतृ" षट् दशना यस्य स षड्दशन: ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।

उद्ग्रीव उद्धुरो दृप्तः

नव गर्विते । शौण्डतीति शौण्डीर: । "[4]कर्पूरादिभ्य ईरः" । गर्वोऽहंकारः संजातोऽस्य गर्वित: । तारकादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । स्तम्भते स्म स्तब्ध: । मान: पूजासत्कारयो गर्वो विद्यते यस्य मानी । अहम् अहंकारोऽस्त्यस्य अहंयु: । "ऊर्णाहंशुभमो युस्[5]" । उद्धन्यते रूपेण उद्धत:[6] । उद् ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स उद्ग्रीव: । उद्धरति गर्वेणात्मानम् उद्धुर: । दृप्यते दृप्त: ।

नीचस्तु पिशुनोऽधमः ॥१६८॥

षण्मो दुर्जने । नितरां पापं चिनोति नीच:[7] । मैत्रीं पिंशति मैत्रीं पेशयति वा पिशुन: । तालव्य: । पिनष्टि वा पिशुन: । "पिशुनफल्गुनौ" मम्पूर्वो धातु: । न श्वादिरधम: । "[1] अवमंधमौ अधमाः" । दुर्जन: । क्रूर: । कर्णेजप: । दोषभाषी । छिद्रवित् ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।

निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥१६९॥

[11]नव चौरे । चोरयतीति चोर: । स्वार्थेऽपि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्येत्यैकागारिक: ।

---

१ "पाटिका: परिपाकेण पच्यन्ते" पा ५।२।९ । इति कन् प्रत्ययो रामशाल्योरिव ।
२. स्तम्बं करोतीति स्तम्बकरि । "इः स्तम्बशकृतोः" । का सू० ४।३।५५ । इति कृञ इप्रत्ययः । ३ का सू ४।३।२५ । ४ का उ सू ३।४८ । ५. "ऊर्णाहंशुभमो युस्" इति है श ७।२।१७ । ६ उत्कर्षं हन्ति गच्छति हिनस्ति वा उद्धत इति हेमचन्द्र: । ७ इत्यर्थेऽपि शब्दो गतः । तत्र न्यञ्चतीति विग्रह उक्त: । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेद: । निपूर्वकाच्चिनोतेर्बाहुलकाड्डः । उपसर्गदीर्घश्च । मन्दस्तु विग्रहमाहतोति विग्रहः । ८ पिशतेर्बहुलेन वृत्तमति क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्" उ सू ३।५५। इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । "अपिस्थति कण्टकयतीति मीच: इति हेमचन्द्र: ।
९. का उ सू २।११ । १० का उ सू १।५६ । ११ चौरादयो निशाचरान्ता: षट् चौरे । गूढ चारेः प्रणिधिस्त्वारको गुप्तचरे । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्– हेरिको गूढपुरुषः । प्रणिधि:"– अभि चि ३।३९७ ।

स्तेनयति स्यायति वा स्तेनः[1] । उभयम् । तस्यति परार्थं स्वयं नयति तस्करः । "तसेः[2] कर" । अथवा तम् तत्पूर्वं । तत्करोतीति तस्करः[3] । त्यापकः । नाम्मन्त्युवाः । स्तिव्या तस्य तकारः । प्रतिस्वबति मार्गे प्रतिरोधकः । निशां चरतीति निशाचरः । गूढचारी नरः गूढचरः । हिनोति परराष्ट्रं सम्पद्यति हेरिकः । प्रकर्षेण निवरां गुप्तो चीयते भियते वा प्रणिधिः । वसुः[4] । परास्कन्दी । मलिम्लुचः । मोषकः । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपाषाणदृषदश्मसु शिला घनः ।

प्रस्तृणात्याच्छादयति "प्रस्तरः । काठिन्यगुणधारि "उपलम् । उभयम् । पिनष्टि सर्वं "पाषाणः । पाषाणम् । दृणाति चूर्णयति भिनत्ति भिद्यते वा कार्यार्थं दृषत्[8] । शिलाम् । दृणाति "धातुः । शिनोति तनूकरोति[10] शिला । शिली च[11] । शिलाम् । हन्यते[1] घनः । अश्मन् । मावन् । पुरुकम्[13] ।

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् तज्जातम् । प्रस्तरोद्भवः । उपलोद्भवः । पाषाणद्भवः । दृषदुद्भवः । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । भवते सर्वोपकार साध्यम् अय । लुनाति सर्वं लोहम् ।

शातकुम्भं नवेस्परम् ॥ १७० ॥

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं क्षान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् ।
क्षीणविसानं दून च

नव कृशे । क्षायति स्म क्षामम् । शाम्यति स्म शान्तम् । कृशम् । क्षीणम् । हीनम् ।

---

१ "स्तेन चौर्ये" । चुरादिः । पचाद्यच् । २ का उ सू ६।१ । ३ "तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च" इति कात्यायनः ... नान्दीकिलिपिलिबिविरविभक्तिक्षेत्रजङ्घावन्तरकसर्वसाहु च" का सू ४।३।२१ । इति कम्प्रत्ययः । ४ वसुम्बत्यः मतिभाषकस्याभीरपर्यायो न तु गुप्तचरपर्यायो । गुप्तचरपर्यायास्तु—यथार्हवर्णः । चारधर्मः । मन्त्रवित् । चरः । वार्त्तिकाः । स्पशः । चारः । ५ "स्तृञ् आच्छादने" । पचाद्यच् । ६ अथवा पलतीति पलः । वीः शम्भोः पलो वोपल । ७ "पिष्लृ सञ्चूर्णने" । बाहुलकादानच् । पृषोदरादित्वादिकारस्याकारः । "षप सामे समवे च" । इत्यश्नेति पम् । पषत्यमेनेति । अपाठीत्पण । "अश शम्ने" । अप् । पापम्भाततमश्नेति निपातोऽस्य त्वन्त प्रत्यय । ८ "दृणाते पुग् ह्रस्वश्च" इति वाच् । ९ "धातुस्तु गैरिकम्" अमि वि । "धातुर्मन शिलाधातुर्गैरिकस्तु विशेषतः" अम की । इत्यादिकोषप्रमाणात् सामान्यप्रस्तरपर्यायेऽस्य पाठोऽयुक्त । १ शिनोतीति तालव्यशिकाद्यर्न कश्चिदुच्चारणवते । "शो तनूकरणे" । तस्य श्यतीति रूपम् । तनूकरोतीत्यर्थ । तत्र शिलेति निपातो बाहुलकादौणादिकार्येण समायाति । सामासमतिम्लुप्तविकारेऽत्र "शिल उञ्छे" शिलतीति शिला । इगुपधेति कः इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्य सुधीभिर्विचारणीयम् । १ उदुम्बरस्याव शिली शिला चापि शिलिः स्मृता इति कल्पद्रुकोषवाक्यमपीयोऽप्यक्तम् । १२ "मूर्तौ घनिष्ठ" का सू ३।३।७७ । इत्येतेन घनादेशश्च । १३ तदुक्तम्—"पुरुकः कृमिभेदे स्यात् पाषाणे शिलाजतुनि शिलाम्बरे । गवान्नपिण्डे दौमान्ये गन्धर्कहरिताश्रयो । मि की का न ११९ ।

शीर्यते स्म शीर्णम्। शीर्यते स्म शीर्णम्। अवस्यते अवसानम्[1]। कृत्यते स्म कृत्तं च। हे राजेन्द्र तव वैरिणां शत्रूणां भवतु इति प्रयोजनीयम्।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः[2] पौरुषे। धीरस्य भावो धैर्यम्। शूरस्य भावः शौर्यम्। पुरुषस्य भावः पौरुषम्। युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्यम्।

क्षिप्राशुमङ्क्ष्वरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम्।
तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघु ॥१७२॥

षोडश[3] वेगे। क्षिपति[4] निरस्यति क्षिप्रम्। रक्प्रत्यय उणादौ ज्ञातव्यः। अश्नुते आशु। कृवापाजीति उण्। मज्जति माद्यति वा मङ्क्षु[5]। इयर्ति मान्तमव्ययम् अरम्। अदन्तं च अरम्। शेते कार्ये शीघ(शिघ्र) ति व्याप्नोति वा शीघ्रम्। सहते सहसा[6]। अव्ययम्। झटति संघातीभवति इत्यव्ययम्। झटिति। द्रवति स्म द्रुतम्। त्वरते स्म तूर्णम्। जवन जवः। जु गतौ। स्यन्दते स्यदः। "स्यदो जवे[7]" इति साधुः। रंहत्यनेन रंहः। रमते धावति वाऽनेन रयः[8]। वीज (विज्) ते वेगः। तरत्यनेन तरः। [9] लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च। लङ्घते भूमिं लघु। इति वेगः। गतिविषयमी जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदः।

सदागतिमत्त्वाबाह—

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्ठु वै भृशम्।

अस्य सर्वे। साधुभ्यो हितः साधीयः[11]। ईयसुन्। अतिक्रान्तोऽर्थं वेलां मात्राम् अन्तं च अत्यर्थम्। अत्यन्तम्। अतिवेलम्। अतिमात्रं च। नितान्यति स्म नितान्तम्। सुष्ठेति सुष्ठु।

---

१ अवसानमिति अष्टावपि शब्दा विशेष्यनिष्पाद्येन कुत्स्नमिति विशेषमध्याहार्य हे राजेन्द्र तव वैरिणां कृत्स्नं नाशं भवतु। एवं शब्दे कृशामित्यादापि बोध्यम्। अवसानशब्दस्य भावस्तु कल्पत्वात् तव वैरिणामवसानं नाशो भवत्विति विवेकः। अवस्यते ऽवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्त्वयुक्त। अवपूर्वस्य "षो ऽन्त कर्मणि" इत्यस्य भावकर्तरि अनवीयते इति कसम्, भवत्यस्ते इति। कर्तरि यदि विचारो अवस्यतीति परस्मैपदमेव। नापि कतु कर्मणो ऽवसानशब्द। अस्मये 'अवसित' इति रूपस्यैव सर्वसम्मतत्वात्। तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः। २. कोपान्तरप्रमाणावली अवसायम्य वैभार्धिशब्दानां परस्परकर्मभिधानतानामर्थस्येऽपि वलसामान्यविषयता अतः पौरुषे इत्युक्तम्। ३ गतिवनो अवी कर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदस्य अवस्मायत्वात् विमायवसूर्णान्वा नव शीघ्रार्थे जवादयो सप्तम्यास्तस्य वेगार्थे इति सुगमम्। "प्राक् प्रयोऽहान भर्तृशिति" एतत्तदैवारस्य शीघ्रार्थतया पाठे कर्तव्येऽपि पुनरस्य पाठो अर्थविशेषप्रमवत्त्विस्य बोध्यः। ४ क्षिपति क्षिप्तमिति शेषः। ५ "टु मस्जो शुद्धौ"। बाहुलकात्कुः। मस्जिनशोरिति नुम्। स्कोरिति सलोपः। मज्जति कालात्यये मङ्क्षुः। ६ "षह मर्षणे। अथ सहसा पद्य सहस्यति। "षोऽन्तकर्मणि"। आमन्त्री क्विप्। विभक्त्यन्तप्रतिरूपकमव्ययम्। उदाहरणम्—"सहसा विदधीत न क्रियामित्यादि"। ७. "स्यद सद्भावे"। औणादिक इति। ८ पा सू ४।१।११। स्यन्देर्भजि नलोपो दीर्घाभावश्च। स्यन्दनं स्यद इति भावविग्रहो न्याय्यः। ९ "री गतौ मयबलनयोः"। १० पा च सू ७।५९। ११ अतिशयेन साधु बाढं वा साधीय इति। साधुभ्यो हित इति टीकोक्तविग्रहस्तु न युज्यते। अतिशयार्थे ईयसो विधानात्। साधीय इति मूलोक्तपदस्य अतिशयेन हित इति पुंविग्रहोऽपि तथैव।

'अपन्नुस्त्वाः—अपन्नु पुष्ट प्रभु परिग्रु मितद्रु अतद्रु शङ्कु मनु इत्यादयः । नै अव्ययम् । बिभर्ति भृशम्'।

स्फुटं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

स्फुट निर्मले । स्फुरत्यभिप्रायोऽस्मात् 'स्फुटम् । साध्नोतीति साधु । खलतीति खलु'। स्पशते स्म स्पष्टम् । विशति चित्ते विशदम् । पुष्णातीति पुष्कलम् । न मलमस्मिन् अमलम् । प्रकाशम् । प्रकटम् ।

चित्रमाश्चर्यमद्भुतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽप्यहो ।

चद कौतुके । चिञ् चयने । चिनोतीति चित्रम्' । आचरतीत्याश्चर्यम्' । पारस्करादित्वात्सुट् । भू सत्तायाम् । अद पूर्वः । अद विस्मितो भवत्यनेनाद्भुतः । "अदि भुवो डुतच्" । चोद्यते इति चोद्यम्' । विस्मीयते इति विस्मयः । कुतुकस्य भावः कौतुकम् । अहो शोभा आश्चर्यम् इति प्रोक्तोक्तम् ।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मत ॥१७४॥

युजोपमे । अभियोजनम् अभियोगः । यमु उपरमे । यम् उद्पूर्वः । "पुरादेश्च' –घञ् । "अस्योप ' "–दीर्घः । उद्यामि इति वाक्यम् । "आतुम्भानां ''" इस्वः । उद्यमि वाक्यम् । उद्यमनमुद्यमः । भावे घञ् । "कारितस्य० ' ।" उद्योजनम् उद्योगः । उत्सहनमुत्साहः । विक्रमणं विक्रमः ।

रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च मिनक्ति कः ।

चत्वार एकान्ते । रहति भवति जनः यत्र शान्तं रहः । क्लीबे । अव्ययं च । अनुगतं रह अनुरहसम् । " अव्ययसमेभ्यो रहस्" । उपांशुके अव्ययमुपस्यम् उपांशु । रहसि भवं रहस्यम् । कः पुमान् मिनक्ति विचारयति । अप्रकाशम् । एकान्तम् । । निर्जनस्थानम् । उपह्वरम् । विजनम् । विविक्तम् । अनभिज्ञम् ।

कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्नुर्दीनोऽमितम्पचः ॥ १७५ ॥

षट् कृपणे । लोभेन विचारयति नाम्यते 'कीनाशः । की वाणी याचकानां नाशयति विनाशयतीति कीनाशः । कृपते रक्षितुं न तु दातुं कृपणः । लुभ्यति स्म लुब्धः । गृध्यति गृध्नुः । गृध्नुरित्यपि स्यात् । लोभेन दीयते क्षीयते (क्षीयते भवति) दीनः । दीङ् क्षये । कश्चिद् दमः इति पठन्ति । अप मात्रो । अभिपूर्वः । अमितपचत्येनशोषं अमितम्पचः । 'अमितमपचमपचत्पचतुत्स्याद्धत्यनपमुचः''' ।

---

१ भा उ सू. ११६५ । इति कृपसत्वम् । २. मधातौ शप्तत्वम् विविलसौ । मन्यतीति मन्य वा । "मद्रु म ग्रु मप पतने" । दिवादि । युपधाति कः । मधिरत्वान्मर्भावित्वम् । ३ खल्वीति कद्रु विमदो न्याय्यः, मलपानानकः तस्य पमि स्फोट इत्यापदेः । अमेगुपपेति च । ४ 'चक्ष तृप्ते' । दाद्रुवाद्रुः । तद्रुराम्यो नानार्थे । तदुक्तम्— 'निषेधवाक्याऽलङ्कारे जिज्ञासाऽनुनये खलु' । अम को १।१।१२५ । ५ "चित्र चिन्ताऽसये । चित्रयतीति चित्रम् । पचाद्यच् । इत्यन्य । ६ मा इति चरति ऽमिनीयते इति विग्रहोऽस्याम । 'आश्चर्यमनित्ये' इति सुट् । ७. का उ सू ४।२५ । ८. चोदयाम्य आश्चर्यम् । तदुक्तम्—"चोद्यमु प्रेर्ये प्रश्नेऽद्भुतेपि च' अमे त २।१६२ । ९. का सू १।२।११ । १० का सू १।६।५ । ११ का सू १।७।१५ । १२ का सू १।६।४७ इतीनी लोप । १३ का सू १।७।७१ । अप राजादिगणि २९ । १४ क्लिन्द् विभाजने । "क्लिशोरीचोपधाया कन् लोपश्च लो नाम् च' पा उ सू ५।६६ । १५ का सू ४।७।३४ ।

कदर्यः । किम्पचान । मितम्पच । क्षुद्र । क्षुद्रकः । मलीम । क्षुद्र । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः स पानीतो नियन्त्रितः ।
नियामितः शृङ्खलितः पिनद्धः पाशितो रिपुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः पाशनीतः । सीयते स्म सितः । बध्यते स्म बद्धः । तत्र प्रविश्य नीतः प्रापितः सम्पानीतः । नियम्य यन्त्रमस्य नियन्त्रितः । नियामो जातोऽस्य नियामितः । शृङ्खला सञ्जाताऽस्येति शृङ्खलितः । तारकितादिदर्शनादित्वम् । पिनह्यते स्म पिनद्धः । पाशः संजातोऽस्य पाशितः । रिपुः शत्रुः ।

कान्त च कमन कम्रं कमनीयं मनोहरम् ।
अभिरामं र(रा)मणीयं रम्य सौम्य च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिसुन्दरे) । काम्यते कान्तम् । काम्यते कमनम् । कामयते इत्येवंशील कम्रम् । काम्यते काम्यते कमनीयम् । "[1]तव्यानीयौ" । मनोहरति मनोहरम् । मनोहारी । मनोरमम् । अभिरमत्वम् अभिरामम् । रमणस्य (भाव) हितं रमणीयम्[2] । रम्यते रम्यम् । सोमस्य भावः सौम्यम्[3] । सुन्द सौष्ठव सुष्ठु नन्दयति इति निरुक्त्या सुन्दरम्[4] ।

चारु प्रलक्ष्णं च रुचिरं प्रशस्तं हृद्यबन्धुरम् ।
दर्शनीय मनोज्ञं च

प्रष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र चारु । श्लिष्यते पुष्यतेऽनेन श्लक्ष्णः[5] । रोचते सर्वेभ्यो रुचिरम् । प्रशस्यते स्म प्रशस्तम् । हृदयस्य प्रियम् हृद्यम् । चित्तं बध्नाति बन्धुरम् । दृश्यते दर्शनीयम् । मनो जानातीति मनोज्ञम् ।

चित्तपर्यायहारि च ॥१७८॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि ज्ञातव्यानि ।

अवश्याय तुषार च प्रालेय तुहिन हिमम् ।
नीहारम्

षट् हिमे । अवश्यायते अवश्यायः । "[6]दिहिलिहिश्लिषिश्वसिव्यध्यतीणश्याऽऽतां च" णप्रत्ययः । तुष्यन्त्यनेन तुषारः । प्रलयादागतं प्रालेयम्[7] । तोहयत्यर्दयति तुहिनम् । तुहिर् अर्दने । हिनोति वर्धते जलमनेन हिमम् । निह्रियते नीहारः । मिहिका । धूमिका । वेरजाम् ।

१ का सू. ३।७।९ । २. रमणाय हितमिति विग्रहो युक्तः । तस्मै हितमिति चतुर्थ्यन्तात् । मूले सन्दीपनृषीपयानवत् रमणीयमेव रामणीयम् इति स्वार्थिकोऽप्यपि कार्यः । ३ सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्तः । "प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भावः" इति सिद्धान्तात् सौम्य इत्यस्य सोमत्वमित्य र्थापत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति अनुपपत्तिः 'सोमाट्ट्यण्' । इति सूत्रात् । अथवा सोम इव सोमः । तत्रभवार्थीदित्वात्स्वार्थे इति रामाश्रमः । ४ सुष्ठु स्रियते आद्रियते । सुपस्तोरत् । पृषोदरादित्वान्नुम् । सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोतीति चित्तं वा । पृषोदरात् "उन्दी क्लेदने" उन्दधातोर्बाहुलकादरः । शकन्ध्वा दित्वात्पररूपम् । इति रामाश्रमः । ५ मेरं मनो येति शेषः । 'श्लिष आलिङ्गने' । 'श्लिषे रपोश्चाकारः' उ. सू. ३।१९ । इति क्स्नः । उपधाया अकारश्च । ६ का सू. ७।२।४८ । ७. प्रलीयन्ते पदार्थां अनेनेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागतं प्रालेयम् । अण् । केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः पा. सू. ७।३।२ । इति यादेरियादेशः ।

तत्कर विद्धि मृगाङ्क रोहिणीपतिम् ॥ १७९ ॥

तस्य करस्तत्करस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । प्रालेयकर । तुषारकरः । प्रालेयकरः । तुहिनकर । हिमकर । नीहारकरः । मृगाङ्कः । रोहिणीपति । एतौ नामानि विद्धि जानीहि ।

पुन्नागं समर माहु

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नाग श्रेष्ठः पुन्नागः । वरश्चासौ नरः समरः । माहुः ब्रुवन्ति ।

तिलक च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्वबाहं तथा द्रुमम् ॥१८०॥

षट् तिलके । तिलकाकृतिः तिलकः । तिलतीति तिलकम् । विशिनष्टीति विशेष । स्वार्थे कः । विशेषकः । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये ललाटिका । लल्यते ललामा । पूर्वं वाहयतीति पूर्ववाहः । द्रवति दूरिं गच्छति द्रुमः । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नाग गजपाटलमारुणाम् ।

षट्[2] कज्जले । अज्यतेऽनेनेत्यञ्जनम् । कपति शैत्यकैरूप्य कज्जलम् । न शोभाम् अगति गच्छति नागम् । गजति शोभया माद्यति गजम् । पाटलाया इदम् पाटलम् । अरुणति गच्छति शोभाम् आरुणम्[3] ।

सालं परिधि वृक्ष च

त्रयः प्रकारे । सरति गच्छति प्रकाशन्तरं सालः । परिधीयते वेष्टयते अनेन परिधि वृणोति नगरमाच्छादयति वृक्षम्[4] ।

कुल्यां स्त्री सारणीं विदुः ॥१८१॥

द्वयः[5] पानीयनिर्गमनमार्गे । कुले पदे साधुः कुल्या । सूसरति वैसम्यमाश्लिनति स्त्री । सरस्कमया सारणी । तां विदुः कथयन्ति धनञ्जयकवयो माघकवीरीअमरकीर्त्याचार्यादयः ।

चारोऽवसर्प[6] प्रणिधिर्निगूढपुरुषश्चर ।

पञ्च[7] चारे । चरति शत्रुमध्यके चारः । अवसर्पति अवसर्प । प्रणिधिर्यस्य । प्रकर्षेण

१ अत्र तिलकविशेषके टीकोक्ततमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाद्यलङ्करणे । तदुक्तम्—"तिलकं तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषकाः" । अभि चि ३।३१७ । ललाटिका पत्रलम्बितललाटभूषणम् । तदुक्तम्— 'पत्रपाश्या ललाटिका' अभि चि ३।३१९ । ललामा तु सीमन्ताग्रे मकरमयीभिरिव धर्मभाव रत्नादिरचितभूषणम् । तदुक्तम्— 'पुरोन्यस्तं ललामकम्' अभि चि ३।३१५ । पूर्ववाहद्रुमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलभ्यः । २ षट् कज्जले । इत्यविचारणीयम् । अञ्जनकज्जलौ समानार्थौ । नागगजपाटलारुणा श्रीखण्डोशीरमसूर्योदितदृग्विशेषवाचकाः । तदुक्तम्—अनेकार्थसङ्ग्रहे—"नागो मतङ्गजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे" २।३४ । "पाटलस्तु कुसुमसौरभ्यौ" ३।७ १ । "अरुणोऽव्यक्तरागे स्यात्सन्ध्याराग बुधे कुष्ठे नि शब्दाऽव्यक्तरागयो ३।१९८ । ३ अस्त्वयेष पाठः । ४ वृक्षस्य धावार्थे कोषान्तरवादी नोपलभ्यः । ५ अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । श्रीयन्त्रोम्न कुल्या सारणी श्रीविनयोपकः, तत्पर्याया । ६ पूर्वमुक्तेऽपि सिंहावलोकनन्यायेन चारेऽर्थेऽस्यामपि शब्दान् समुच्चिनोति । ७ चरति शत्रुमध्यके चरः चरेरच् । तत स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुप्तौ भीरुत्वे प्रणिधिः। निगूढश्चासौ पुरुषः निगूढपुरुषः। चरतीति चरः। स्पशः। [1]यथार्थवर्णः। मन्त्रज्ञश्च।

सहस्राक्ष सहस्राक्ष

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं वान् इति प्रयुज्यमाने सहस्राक्षनामानि भवन्ति। निगूढपुरुषवान्। चरवान् इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

सत्यार्थे सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थे द्वौ। सु सुष्ठु नृतं नर्म सूनृतम्। पृषोदरादित्वाद्दीर्घागमः। ऋच्छति गच्छति क्त ऋतम्। तथा चामरकोषे[2]—"सत्यं तथ्यमृतं सम्यक्।"

निस्तल वर्तुल वृत्तम्

त्रयो वर्तुले। निर्गतं तलं प्रतिष्ठाऽस्य निस्तलम्। अथवा निर्गतं तलादधोभागान्निस्तलम्। भूमौ न तिष्ठति वा। वर्तते भ्रमति वर्तुलम्। वृत्यते स्म वृत्तम्। वर्तं त्रिषु।

स्थपुट विषमोन्नतम्।

विषमोन्नते स्थपुटम्। स्थापयत्यात्मनो विषमोन्नतत्वे स्थपुटम्। प्रायः क्लीबे।

दीर्घ प्रांशु

द्वौ[3] दीर्घे। दृणाति दीर्घम्[4]। प्राश्नुते व्याप्नोतीति प्रांशु[5]।

विशाल च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णे। विस्तारं विशति विशा[6]लम्। बहून् लातीति बहुलम्। प्रथते वर्धते पृथुलम्। गुणमात्रवृत्तेर्लं। प्रथते पृथु। बृहत्। उरुः। गुरु। विस्तीर्णं।

उल्बण दारुणं तिग्मं घोर तीव्रोग्रमुत्कटम्।

सप्त घोरे। उल्बणमुल्वणम्[7]। पृषोदरादित्वात्पदे लः। दारयति दारुणम्। तितिक्षतीति तिग्मम्[8]। घुरति घोरम्। तीव्यति तीव्रम्। तीव स्थौल्ये रक्। उच्यति उग्रम्[9]। उत्कटयते उत्कटम्। प्रतिभयम्। भीमम्। भयानकम्। प्राभीतम्। भीषणम्। भीष्मम्। भैरवम्।

धीसलं तिमिरं याथ मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

---

१ यथार्थं यथा अर्थं प्रमाणं वर्णो जाति प्रतिविशिष्टं यस्येति तस्य। २. अम को॰ १।७।२२। ३ वस्तुतस्तु प्रांशुर्दीर्घौचित्यमिदं। दीर्घविस्तृताय तत्राप्य पर्यायः। प्रांशुरुन्नतः। तदुक्तम्—'दीर्घमायतम्' अम को १।१।७ ।४ दृ विदारणे। बाहुलकाद्घक। दृणाति ह्रस्वत्वमिति दीर्घं। ५ प्रपूर्वा अशधोःऽस्मस्यपि। ६ विश प्रवेशने। बाहुलकात्कालन्। रामाश्रमस्तु—'वै शालच्छङ्कटची' इति वा सूत्रेण विशाल्मात्प्रत्ययमाह। ७ उल्बणतीति उल्बणम्। पृषोदरादित्वादुकारोऽस्ति इति पाठोऽत्र शुभः। "वण शब्दे"। अच्। उल्बणशब्दो वस्तुतः स्पष्टार्थकः, न तु दारुणार्थकः। तस्य मुख्यार्थो भवति स्पष्टानाम्। अत उद्रेकस्पष्टतया पाठयति। ८ तितीक्षतीति यमार्थकत्वादत्र म प्रत्ययम्। तिज निशाने। निशानं तीक्ष्णीकरणम्। तेजयतीति तिग्मम्। व्यङ्कुरत्वम्। ९ 'घुर भीमार्थशब्दयोः'। घोरयतीति घोरम्। पचाद्यच्। १० उच्यति कुचा समवयते उग्रम्। उच समवाये। दिवादिः। 'ऋज्रेन्द्र' इत्यादिना रक गत्वाग्रत्वादेशः।

पञ्च कार्यविलम्बे (मिथे) । शीतं करोति मन्दो भवति कार्ये शीतलम् । तावदपि स्तम्भनं तिम्यति तिमिरम्[१] । स्तिमितं स्तिमितं वा पाठः । यथा मन्दं यायम् । मन्यते मन्दम् । विलम्ब्यते स्म विलम्बितम् । चिरमिति चानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विस्रसो निजः ।

पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकृष्टा प्रकृतिः । शील्यते शीलयति वा शीलम् । निसृज्यते निसर्गः । विस्रस्यतीति विस्रसः[२] । विस्राव्यश्च । विस्रम्भः ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । युज्यते योग्या[३] । गुण्यते पुनरिदं गुणनिका[४] । अभ्यसनमभ्यासः ।

स्यादभीक्ष्णं मुहुर्मुहुः ॥ १८५ ॥

मुहुर्मुहुर्वारं वारं स्यात् भवेत् । अभीक्ष्णम् । अभीक्ष्णम् अभीक्ष्णम् । अभिमुखमीक्ष्यते वा अभीक्ष्णम्[५] । नित्यम् ।

मृषालीकं मृषा मोघम्

चत्वारो[६] अलीके । मृष्यते सह्यते नारकं दुःखमनेन मृषा । आदन्तमव्ययम् । अलति स्वस्मात् (स्वर्गात्)विचारयति अलीकम् । मुष्णाति लपति निमित्तं मुषा । आदन्तमव्ययम् । मुह्यतेऽत्र चित्तं मोघम् ।

वितथं वितथं मृषा ।

निष्फलवचने त्रयः । विगतं फलं विफलम् । विगतं तथा सत्यं यस्मात् वितथम् । मृषो स्यात्प्रकारवति मृषात् मृषा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत् ॥ १८६ ॥

पञ्च कष्टे । कष्टेन विधुनोति शरीरं विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कष्यते (कषति) कष्टम् । कृन्तति छिनत्ति दुःखेन कृच्छ्रम्[७] । गाह्यते गहनम् । उद्धरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

षट् समस्ते । समस्यते एकीकरोति समस्तम् । समं सर्वे समम् । समानं कलयतीति[८] सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति भेदयति व्याप्नोति कृत्स्नम् । विशति विशति सर्वत्र विश्वम् । नास्ति खिलं शून्यमस्याखिलम् । निखिलं च ।

---

१ "तिम आर्द्रीभावे" । तिम्यति आर्द्रीभवति तिमिरः । विलम्बशीलो जन आर्द्रवार्द्र इव शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति । २. विस्रसाशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति । एवं विस्रावो विस्रम्भोऽपि । विस्रसाशब्दोऽप्यस्यानमपि व्याकरणासम्मतम् । अतोऽत्र विस्रसापि मूलार्थक एव प्रमाणम् । ३ योग्ये चिरेकाग्ये चाप्नोति योग्या 'तव साधु'रिति यत्प्रत्ययः । ४ गुण्यते गुणना । चुरादिविकल्पात् भावे 'ण्यासश्रन्थेति युच्' । तथा स्वार्थे कः । गुणनैव गुणनिका । ५ अभिक्ष्णौति अभीक्ष्णम् । "क्ष्णु तेजने" । बाहुलकात्प्रत्ययः । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रमः । ६ अत्र मृषाऽलीकशब्दौ नपुंसकौ वितथशब्दश्चाव्ययवाचकः । मृषामोघशब्दौ विकल्पनाशब्दौ च नपुंसकौ अव्ययवाचका इति विवेकोऽत्र । तदुक्तममरे—"मृषा मिथ्या च वितथे" १।८।१५ । 'अलीकं त्वप्रियेऽनृते" ३।३।१२ । 'मोघं निरर्थकम्' ३।१।८१ । अव्ययं तु मृषा मुधा' ३।४।४ । "वितथं त्वनृतं वचः १।८।२१ । इति । ७. कर्षति कृन्तति भेति वा रूप । ८ समस्यते सम समस्तम् । "असु क्षेपणे" । कर्मणि क्तः । ९ तत्पुरुषसमस्तं समम् । १ सह कलाभिर्वर्तते सकलम् ।

शकल विकल खण्ड शल्क लेश लव बिंदु ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे। शक्नोति कार्ये शकलम्। शल्कं च। विगता कला यस्मात् तद् विकलम्। खण्ड्यते खण्डः। लिश्यते लेशः[1]। लिश विच्छ गतौ। "अर्धर्चादयः पुंसि च" इति [2] इति शल्कं करोति [3]लवः। बिन्दुः कणमस्ति। अर्धम्। भेद। सामि। असम्पूर्णम्। दल च।

मर्म कोप च

द्वौ मर्मणि। म्रियतेऽनेन मर्म। नान्यम्। कुप्यते कोपम्[4]।

कलह परिवाद छल नयेत्।

कलेः हननम् कलहः। परिवदनं परिवादः। छलयती (त्यर्थी)ति छलम्।

शोणित लोहित रक्त रुधिर क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षट् रुधिरे। शोण्यते वर्ण्यते येनाऽनेन शोणितम्। लालम्य। रोहति देहे जायते लोहितम्। रज्यति रज्यते रक्तम्। रुणद्धि रुधिरम्। क्षतात् व्रणात् जायते क्षतजम्। असृज्यते क्षिप्यते असृक्।

सन्ततानारताजस्रान्वह कन्यापतिर्वरः।

चत्वारः (चत्वार) सन्तते। सन्तन्यते स्म सन्ततम्। न आरतम् अनारतम्। न जस्यतीत्यर्थशीलम जस्रम्। अन्वहम्। कन्यापतिर्वरः नम्प्त इति प्रतीकनीयम्।

उद्वाह परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

चत्वारो विवाहे। उद्वहनं उद्वाहः। परिणीयते परिणयनम्। विवाह्यते विवाहः। निवेश्यते निवेशनम्।

शुषिर विवरं रन्ध्र छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे। शुष्यति कालमन [5]शुषिरम्। उषतुषीति च। विव्रियते मूलमनेन विवरम्। रध्यति वातेन रध्यति हिनस्ति प्राणिनः वा रन्ध्रम्। छिद्यते तत् छिद्रम्। कुहरम्। बिलम्। निर्व्यथनम्। रोकम्। श्वभ्रम्। गर्ता। शुषि।

गर्ता च गह्वरम्।

गर्तायां द्वौ। पतिन प्राणिनं गिरति गर्ता। गर्तः। गृह्णातीति गह्वरम्।

श्वभ्र रम्य च पाताल नरक मान्त्यमेधस ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके। श्वसन वर्धते भोजरि चरतो शुद्धा श्वभिर्भ्रमते वा श्वभ्रम्। रसानां भवं रसयम्। पतन्त्यस्मिन् पातालम्। नराः कायन्त्यत्र नरकः। नारकः। पुतिः। अमधस बुद्धिरहिता

---

१ लिश अल्पीभावे" । दिवादि । तत्रै पश्यन्मिनानमर्थानुरूप्यम्।। २ पा सू ४।५।४। ३ लूयते छिद्यते लवः। प्रदोरप्। टीकाम विमर्दस्तु न लवनार्थोऽभिप्रायो। ४ कोप शब्दः पतीवाचक। मलिम्ना लभ्यते। पेशोनो ममरुयानम्प्रमाणुर्वे सम्मतम्। अत उरचारात् कोपाऽपि मर्मेत्सम्प्रुल्लेषन्। तदुक्तम्– कोपोऽस्त्री कुप्यते पाने दिव्ये कक्षुपिपानक। जातिरोपेऽर्थतद्वाते पश्चा शब्दादित्पषु। पा मत १।५ "खिमिरुषिमदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुदिभ्यः किरच्" पा उ १।२१। मुषिररत्वालीति विमर्दे तु "उषकुषिगुधिकृषिभ्यः कन्" पा सू ५।२।१ ७। इति ९। अन्यत्तत्र दन्त्यादिरयम्। उषकुषीति पा मूले दृश्यतेऽपि पाठः। परिम्याभ्यपि दृश्यमत पराग।

सम्यक्त्वादिभिरहिता यस्मिन् गच्छन्ति नरकम् । निरयः । दुर्गतिः ।

अदभ्रं भूरि भूयिष्ठं बहिष्ठं बहुलं बहु ।
प्रचुरं नैकमानन्त्यं प्राज्यं प्राभृतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

अदभ्र प्रभृते । न दभ्रमदभ्रम् । भवति भावुर्भवद् भूरि, भूरिं च । अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् । "बहोर्लोपो भू च बहोः" "इष्टस्य यिट् च" इति सूत्राभ्यां सिद्धमेतत् । अतिशयेन बहुलो बहिष्ठम् । बहति प्राप्नोति बहुलम् । प्रचुरति "प्रचुरम् । न एकं नैकम् । अनन्तस्य भाव आनन्त्यम् । प्राज्यते प्रकर्षेण दीप्यते येन वा प्राज्यम् । प्राभवति स्म प्राभृतम् । प्रभूतं च । पुष्यति पुष्कलम् । पुष्कं च । पुरुम् । पुरम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।
तत्त्वज्ञचतुरो धीरस्त्वयजेन्द्रन्माजव उक्षम् ॥ १६२ ॥

भवो संसारे । भवतीति भवः । भवतीति भावः । "भा व्यवहारेर्दीप्तौ वा" । संसरन्ति अस्मिन् संसारः । संसिरन्त्यस्मिन् संसरणम् । संसरणं संसृतिः । अजवतीति जन्म । आजवतीति आजवम् । वदति चतुर्गत्यां भ्रमति (भ्रम) जवः ।

ऊर्जस्वी ऊर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्व्यपि ।

चत्वारः (पञ्च) तेजोयुक्तपुरुषे । ऊर्ज ऊर्जं बलमस्यास्तीति ऊर्जस्वी । ऊर्जोऽस्यास्तीति ऊर्जस्वी । तरोऽस्यास्तीति तरस्वी । तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी । मनोऽस्यास्तीति मनस्वी ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो भटः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते रत्नेभ्योऽसौ भास्वरः[6] । भासुरः । "भिदि" भातिभ्यां घुरः । शूरयति शूरः । शूर वीर विक्रान्तौ । प्रवीरयते प्रवीरः । सुष्ठु भटः सुभटः । विक्रान्तः ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

पञ्च कवचे । तनु शरीरं त्रायते रक्षति तनुत्रम् । वृणोत्यङ्गं वर्म । कच्यते बध्यते शरीरमनेन कवचम् । आव्रियतेऽनेनावृतिः । बाणानां वारणं निषेधनं बाणवारणम् ।

कूर्पासं कञ्चुकम् ।

द्वौ कञ्चुके । करोति शोभां कूर्पासम् । कर्पासं च । कञ्च्यते बध्यते कञ्चुकम् ।

छत्रमातपत्रोष्णवारणम् ॥ १६४ ॥

चत्वारः (त्रयः) । छादयति छादयतीति छत्रम् । सितु । छत्रः छत्री । आतपात् त्रायते आतपत्रम् । उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् । सपत्रकम् ।

केशं शिरोरुहं वालं कचं चिकुरमीरयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेते केशः । शिरसि रोहति शिरोरुहः । वल्यते संवियते वालः । मस्तके बध्यते कचति वा कचः । चीयते मलेन चिकुरः । चिकुरश्च । मूर्धजः । शिरसिजः ।

---

१ पा. सू. ५।३।१५८ । २ पा. सू. ६।४।१५६ । ३ प्रचोरयति प्रचुरम् । चुर स्तेये । चुरादीनां णिजनित्यः । इगुपधेति कः । प्रगतं चुराया प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४ प्राज्यते प्रकर्षेण "अज् व्यक्त्यादौ" अत्यो संज्ञायामिति क्यप् । अथवा प्रनीयते "अज गतिक्षेपणयोः" क्यप् । शोभायो नेति टीकाकारः । ५ का. सू. ४।२।५५ । इति वा । ६ "कपिपिशिभासिभ्यामरच्" का. सू. ४।४।८७ । इति वरः । ७ का. सू. ४।४।४१ ।

वृजिन[1] । कुन्तलः ।

चूडापाशश्च धम्मिल्लः कबरी केशबन्धनम् ॥ १६५ ॥

चत्वारः केशबन्धने । चुड् संवरणे । "कुपरेरच"[2] इन् । नामिनो[3] गुणः । चोदनं चूडा । 'ऊन[4]चूडपीडमृगवतिभ्य इनन्नेभ्य तदायाम्" अङ् प्रत्ययः । कारिकालोपः । निपातनात् ऊपधाया ह्रस्वत्वम् । डस्य डत्वम् । चूडाया शिखाया पाशः बन्धनं चूडापाशः । धम्मिः रोगः । धम्यन्ते केशा बध्यन्ते धम्मिल्लः । कं मस्तकं वृणोति कबरो नद्यादित्वात् । कबरी । ह्रस्वोऽपि कबरिः । बध्नन्ती वा कबरा । केशस्य बन्धनं केशबन्धनम् । वेणी । प्रवेणी । वीणा च

उररीकृतमूरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

अङ्गीकारे । ऊरीप्रभृतीनां कृञा सह समासो वा भवति । तथाहि—ऊरी उररी अङ्गीकारे विस्तारे च । प्रतिश्रुतम् । प्रतिज्ञातम् । उपगतम् ।

अस्तुकारोऽभ्युपगमे

अभ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुकारः कथ्यते । अस्तु करोतीति (करणम्) अस्तुकारः । "कर्मण्यण्" अण् प्रत्ययः । अस्लोपः इति । अङ्गनम् । "अस्त्वागमाद्यन्ता कारे"[5] । मकारागमः ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १६६ ॥

सत्यापणे सत्यं करोतीति सत्यङ्कारः ।

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।
मैत्री मैत्रेयिकासर्यं सहाग्यं संगतं मतम् ॥ १६७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदो भावः सौहार्दम् । सौहृदम् । हार्दम् । सौहृद्यमेकमेव वाच्यम् । सख्युर्भावः सख्यम् । सुरभेर्भावः (मेरिषि) सौरभम् । मित्रस्य भावो मैत्री । मैत्र्यां निपुणो मैत्रेयिकः । न वीयते साङ्गर्यम् । सहावो (त्व) ते साहाय्यम् । संगमनम् संगतम् ।

क्षेमं कल्याणमभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।
भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १६८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षियोति अशेषान् क्षेमम् । कल्यते शाप्यते कल्याणम् । कल्यं नीरुक्त्वमनिति वा कल्याणम् । अतिशयेन प्रशस्तं श्रेयस् । शास्तम् । भदते ह्रादते सुखीभवत्यनेन भद्रम् । मं पापं गालयतीति मङ्गलम् । भवनशीलं भावुकम् । 'गमभवमवलम्बपतमृस्थानलपतपशामुकञ्'[6] । प्रशस्तो भवोऽस्यास्तीति भविकम् । पुण्यवतो भवितव्यं भवति भव्यम् । श्व शोभनत्वं वसीयः श्वोवसीयः । श्वोवसीयत्व च । क्वचो 'वसीयस्' । शीयते समुच्छिते दुःखमनेन शिवम् । माध्यविभाषयो अभिधमर कोशोनां शिवं भद्रं ।

---

१ वृजिनशब्दो भङ्गुरवाची । तदुक्तम्—"वृजिनं भङ्गुरं शुभमराल विभ्रमृत्यमित् अभि चि ३।९१ । तद्यथा भङ्गुरत्वेऽपि वृजिनशब्दप्रयोग । २ का सू ३।२।११ । ३ का सू ३।५।२ । ४ का सू ४।५।८२ । अत्र दुर्गवृत्ति ऊनचूडपीडमृगमयतिभ्य इनन्तेभ्यो वा प्राप्त वचनम् ह्रस्वश्चासां । ५ अस्तुकरणमस्तुकार । ६ का सू ४।३।१ । ७ अव्ययनमस्कारं परतर्क नवेत् का सू ३।१।२१ । ८ का सू ४।१।२१ । ९ सत्यस्य करणं सत्यङ्कारः । मारे मम् । कथं विभक्तीलोपत्वमुक्तः । १० का सू ४।४।१४ । ११ का सू २।६।४१ । वृत्तिः २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।
शब्दपारायणस्यान्तं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १९९ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमव्याख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय सूचितम् ।
बोधयेत्कियदुत्तिष्ठो मार्गेण सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया धनञ्जयकविना सूचितं कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उत्थितो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गेणः किं सह याति गच्छति अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

एतद्रत्नत्रयमपश्चिमं नवीनमपूर्वं वर्तते ।

कवेर्धनञ्जयस्येयं सत्कवीनां शिरोमणेः ।
प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्वयम् ॥ २०२ ॥

धनञ्जयस्य कवेः सत्कवीनां शिरोमणेः इति अमुना प्रकारेण इयं नाममाला श्लोकानां शतद्वय २ प्रमाणमस्ति ।

ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुषाराचल-
स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।
अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो
फूत्कुर्वन्ति धनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥२०३॥

अहो लोकाः धनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिताः सम्यक् प्रकारेण पीडिताः फूत्कुर्वन्ति । किं कृत्वा पूर्वं वेदनिनदव्याजात् मिषात् ब्रह्माणं समुपेत्य प्राप्य ईश्वरं तुषाराचलस्थानस्थावरं सुरनदीव्याजात् प्राप्य केशवं श्रीविष्णुं किं विशिष्टं अम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशात् समुपेत्य सुगमोऽयं श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन
श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां
धनञ्जयनाममालायां प्रथमं काण्डं
व्याख्यातम्

श्रीमद्धनञ्जयकविविरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—•—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च कैलासार्यं चिदायतनम् ।
अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विधुणोम्यहम् ॥ १ ॥
गम्भीरं रुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् ॥
शास्त्रं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोज्ञं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् । सुगमव्याख्यातोऽस्ति ।

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू

शम्भू इति द्विवचनान्तं पदम् ।

जिनावर्हच्चयागतौ ।

जिनौ कथ्येते ।

वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ

वेदश्च सूर्यश्च वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ सूर्यौ कथ्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषाकपी ॥ ३ ॥

विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेन्द्रः, शार्ङ्गी च विष्णुः शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूतौ तु करिक्रोडौ पर्जन्यौ शक्रवारिदौ ॥ ४ ॥

वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽम्भसि ।

सुगमव्याख्या ।

---

१ शं कल्याणं भवतीति शम्भुः । पुत्रकः । केशवप्रशमनाथौ च । तदुक्तम् —"शम्भु स्याद् ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे । इति वि श्री भा न ९ । हैमे च — 'शम्भुब्रह्मार्हतोः शिवे । २१६ । इति च । २ विष्णु, अतिशय जितवर इत्येतेष्वपि जिनः । तदुक्तम् — 'जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजितवरयोर्जिनुः" वि को मा न ८ । हैमे- 'जिनोऽर्हद्बुद्धविष्णुषु २।२६९ । ३ विवस्वान् देवदर्शी अने स १।११७ । अत्र देवशब्दपाठाभ्यसुनेऽपि देवशब्द एव युक्तः । ४ अग्निश्च । तदुक्तम्- वृषाकपिर्जनार्दने शिवेऽग्नौ च" अने स ४।२१६ । ५ अनन्तविरप्यनन्तार्थः । अनन्तः केशवे शेषे पुमानन्तर्था त्रिषु इति मेदिनी । ६ जीमूतो वासवे मुद्दे । पीवरस्त्रो भर्तरि" इति अने सं । ७. पर्जन्यौ मेघशब्देऽपि । तदुक्तम्— पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुद शक्रयोः इति मेदिन्याम् ।

घृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
तल्पं दारेषु शय्यायां ज्योतिर्भसुपि तारके ।
धवले सुन्दरे रामो धामो पक्षे मनोहरे ॥ ६ ॥
नक्षत्र मन्दिरे धिष्ण्यम्

भेवेषि शब्दं करोत्यत्र अतो धिष्ण्यम् । नपुंसकम् । धिष शब्दे ।

वसने गगनेऽम्बरम् ।

वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्बं शब्दं राति ददातीति अम्बरम् ।

परिधौ पादपे साल

परिधौ पादपे सालो वर्तते । सां लक्ष्मीं लातीति सालः ।
'सालः शालवरौ वृक्षमात्रप्राकारयोरपि' इति हैमः ।

सिन्धु स्रोतसि योषिति ॥ ७ ॥

स्रोतसि योषिति सिन्धुः । स्यन्दते सिन्धुः ।

सारस शकुनी धूर्ते

सरसि तडागे भवः सारसः ।

केतन वीथिती ध्वजे ।

केतयति ज्ञानत्वेन केतनम् । तथा च—
"कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।"

मयूख कीलके दीप्तौ

मयते विस्तारं यातीति मयूखः ।

पतङ्ग शलभे रवौ ॥ ८ ॥

पततीति पतङ्गः । पत्लृ गतौ ।

अञ्जन कज्जले नाग

कज्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिषु । विकसेन भजते मकरी-क्रियत अञ्जनः ।

सारङ्ग पृषते गजे ।

सरतीति सारङ्गः ।

सरल प्रगुण द्रुमे

अनुस्वारसरलः ।

पुन्नाग सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥

पुमांश्चासौ नाग श्रेष्ठः ।

---

१ मत न २९२३ । २ पूर्वगद्य ▪ भरतेन हैपेक्ष वहित मयन इति विशेषः । ३ गमनेऽपि विरमश्च मावन वज्जनोऽपि विरमणवशेन प्रवदन । ४ ना/ हम्माद्य वरसवति । वतीवसव स्थान वा वर्तते पुनम । ५ 'पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीफले नरश्रेष्ठे पाण्डुनाग द्रुमान्तरे' इति मेदिनी ।

पाथअन्योऽनल शद्धे

पयसो पाताले भव पाथःअन्यः ।

कम्बु: शङ्खे मतङ्गजे ।

कम्बुः शोभ कम्बते कायेन कम्बु । कम्ब वा कम्ब गतौ उणादिकात्प्रत्ययेन नकारागमश्च ।

घस्मरो घुमये घुम्ने

घुमय स्वर्गोदये घुम्ने सुवर्णे क अद । कुत्सितं भवति कस्मरः ।

स्यन्दन शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यन्दते स्यन्दनम्[1] ।

अद्रिर्गिरिवनस्पत्यो

गिरिश्च वनस्पतिश्च गिरिवनस्पती तयोर्गिरिवनस्पत्योः । अत्ति भक्षयति आदृणातीत्यद्रिः ।

शिखरी तरुभूधयो

शिखराणि सन्तीति शिखरी ।

राजा चन्द्रमहीपत्यो ।

राजते इति राजा ।

द्विजो दशनविप्रयो ॥ ११ ॥

द्विर्जातो द्विजः ।

मोचामरस्त्रियो रम्भा

रम्भीति रमतीति रम्भा ।

कदली ध्वजमोचयो ।

कं वायुना कम्पनं विदार्यते कदली ।

अशोक सुमनस्तरौ

न शोको यस्मादस्य वा अशोकः ।

सुमना सुरपुष्पयो ॥ १२ ॥

सुष्ठु पुष्पं च सुपुष्प तयो सुरपुष्पयो । शोभनं मनो यस्य सुमनाः ।

मुक्ताग्रजनयोस्तार

तरति तारः ।

भूरि भूय सुवर्णयो ।

भूयस्तु भवतीति भूरि । वर्णाद ।

पानापद्मपयो क्षीरम

पयः सलिलदुग्धयोः ॥ १३ ॥

पीयते पयः ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालस्य मुहूर्तादिलक्षणः ।

"स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥"

अथवा— "सर्षपस्य प्रयत्नेन छिन्नस्य पततोऽम्बरात् ।
छिद्यते यावदध्वानं कालः स (च) त्रुटिः स्मृतः ॥"

प्रकर्षः प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षौ तयोः कालप्रकर्षयोः काष्ठा कथ्यते । काशते भास्यते काष्ठा । हान्तोऽयम् ।

कोटिः सङ्ख्याप्रकर्षयोः ।

कुट्यतीति कोटिः ।

"कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षा च कोटिरपि कियती ।
औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती ॥"

रन्ध्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धानं सन्धिः ।

'सन्धिर्योनौ सुरङ्गायां नाट्याङ्गे श्लेषभेदयोः" इति हैमी[1] ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्यन्दते सिन्धुः ।

निषेधदुःखयोर्बाधा

बधनं (बाधनं) बाधा । बाधृ प्रतिघाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुह्यते व्यामोहः[2] ।

कौपीनाम्बरयोर्गुह्यम्

गुह्यते गुह्यम् । गुहू संवरणे । "गुह्यमुपस्थ रहस्ये च" इति हैमी[3] ।

कीलालं रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीलां लातीति कीलालम्[4] । "कीलालं रुधिरे नीरे" इति हैमी[5] ।

मूल्यसत्कारयोरर्घः

अर्घ्यते पूज्यतेऽनेनेत्यर्घः । [6]"हलश्च" इति घञ् । हलन्ताद्धातोर्घञ् । "न्यङ्क्वादीनां कुश्च"[7] ।

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

1 अने० स० २।२५७ । 2 व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूर्ख मुग्धम् । 3 अने० स० २।१५८ ।
4 कीलाः ज्वालामालाः लाति आदत्ते । अग्नेः पर्यायवाची । इति अने० विग्रहः । रुधिरार्थे तु टीकोक्त । 5 अने० स० ३।६८१ । 6 जै० सू० ४।३।११ । 7 जै० सू० ४।३।२१ ।

मेघकुम्भीनयोर्भ्रास्यः । भ्रास्यं भषी भ्रास्य ।

मेघवत्सरयोरब्द[1]

अब्दतीति अब्दः । कुम्भावच[1]—"कुम्भकुम्भमनाभ्याः । "अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि[२] ।"

तार्क्ष्यो हयगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

तृक्षस्यापत्यं तार्क्ष्यः । पुंसि ।

स्तम्भतास्थूणयोः स्तम्भ

स्तम्भु इति सौत्रोऽस्य पाठः ।

चर्चा चिन्ताविचर्कयोः ।

चर्चनं चर्चा ।

हरकीलकयोः स्थाणु

तिष्ठतीति स्थाणुः ।

स्वैरं स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वस्य ईरः स्वैरः । [३]स्वस्वाद ऐरूर्मीरेरियोरपि वक्तव्यम् । यथा भाष्यकारे—

"स्वैरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति ।
भिक्षुरेकः सुखी लोके राजचौरभयोज्झितः ॥"
"स्वैरो मन्दे स्वतन्त्रे च" इति हैमी[४] ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।

सस्यायाम्

शं करोति कुरुते वा [५]शङ्कुः ।

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दुनोतीति दवः । दावः । वा[६] ज्वलादिदुनीभुवो णः ।

कीनाशः कृपणे मृत्यौ कृतान्ते पिशिताशिनि ।

तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥१९॥

लोभेन क्लिश्यते नाश्यते कीनाशः । तालव्यः ।

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुजन्मनि हुताशने ।

विरोचते इत्येवंशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रह्मे यताश्रम सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हंसः ।

सोमश्चन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा मृगादिम् ।

सोमः प्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिक्पतिः ॥ २१ ॥

---

१ का उ सू ३।९४ इति समस्यया । २ अने स २।२२१ । ३ स्वस्वैरेरिण्यौरितु का क पृ १८।४ अने स २।४८२ । ५ शङ्कवे ऽस्मात् शङ्कुः । 'शकि शङ्कायाम । चौरा दिक उः । ६ का सू ४।२।५१ इति समस्यया "टुदु उपतापे" ।

पुम् अभिधये। अनेन सर्वेषां सामनिका ज्ञातव्या।

अजो विधिरजो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः।

अजश्छैवार्षिको मीहिरजो रामपितामहः॥ २२॥

न जायते नोत्पद्यते अजः।

शुद्धेऽनुपहते शङ्खौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे।

आषाढेऽप्यात्मसचिवो ब्रह्मचर्ये शुचिर्मतः॥ २३॥

मतः कथितः। एतेष्वर्थेषु शुचिशब्दः। शोचति जनो देहान्तेऽत्र शुचिः। तथा च यश-स्तिलकचम्पूकाव्ये–

"न स्त्रीभिः सङ्गमो यस्य सर्वारम्भविवर्जितः।

तं शुचिं सर्वदा प्राहुः मारुतं च हुताशनमिति॥

अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु।

अर्थशब्दः पठ्यते। अभिधेयश्च शब्दो वाचकः शब्दमध्ये योऽस्त्यर्थः स वाच्यः अभिधेयश्च कथ्यते। रा सुवर्णम्। वस्तु—अस्त्यादिसौहित्यादिर्वा। गैरिकाभिधं (विज्ञं च) वस्तु। प्रयोजनं कार्यम्। निवृत्तिश्च मुक्तिः। तासु। ऋ गतौ। अर्यते इत्यर्थः।

भावः पदार्थचेष्टास्वसत्ताभिप्रायजन्मसु॥ २४॥

एतेष्वर्थेषु भावः पठ्यते। भवतीति भावः। 'भू'[1] धातोर्विनुतीभूतो घञ्।

प्रायो भूम्नोपमातर्प्यप्रभृत्यनिवृत्तिषु।

एतेष्वर्थेषु प्रायः[2] शब्दः।

अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्त्वव्यतीतिषु॥ २५॥

एतेष्वर्थेषु अन्तः।

अक्षो द्यूते शकटाङ्गे नयनादौ विभीतके।

द्यूते शकटाङ्गे रथचक्रावयवे नयनादौ विभीतके पूतनानाम अक्षो वर्तते।

सारः श्रेष्ठे बले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे॥ २६॥

श्रेष्ठे बले वित्ते कोशे कोशो वा पाठः। जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते। सरत्यनेनेति सारः। [3]"शसमस्त्यवीरन" इति परस्मैपद घञ्। स्मर्यते "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्[4]" इति घञ्। "सारो मज्जास्थिरांशयोः बले श्रेष्ठे च" इति हैमी।

वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि रवौ दिवि।

विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः॥ २७॥

पूर्वा गच्छतीति गौः। गमेर्डोः।

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे हये।

मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्वपि हरिः स्मृतः॥ २८॥

हरतीति हरिः।

---

१ का सू ४।२।५५। २ प्रत्ययमर्न प्राय। 'इण गतौ। इण्। ३ "र्वेःस्थिरत्यादि मत्स्यसारे" ३ शा ५।३।१७। ४ का सू ४।५।४। ५ अमरे त २।७७८।

पद्मे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड्गफले गदे ।
वाद्यभाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २९ ॥

पुष्णातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कषायादौ घृतादौ च विषे जले ।
निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इष्यते ॥ ३० ॥

शृङ्गारादौ–
"शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥"

कषायादौ—तिक्ताम्ललवणकटुकषायेषु । घृतादौ—दुग्धदधिघृततैलजलेक्षुरसेषु । विषे जले निर्यासे द्रवरसविशेषे पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इष्यते ।

तीर्थे प्रवचने पात्रे लब्धाम्नाये विशारदे ।
पुण्यारण्ये जलोत्तारे महासत्त्वे महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्[1] ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।
पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

पञ्चसु लोहेषु सुवर्णरजतताम्ररीतिकांस्येषु । शरीरस्य रसादिषु रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रेषु । पृथिव्यादिचतुष्के च पृथिव्यप्तेजोवायु (वनस्पति) षु स्वभावे वातपित्तश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु धातुः पठ्यते । दधातीति धातुः ।

प्रधानभूषणाकल्पभूपापुण्ड्रप्रभावना ।
ध्वजलक्ष्मतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

एतेष्वर्थेषु [2]ललामः । ललामम् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।
माल्यानुलेपने चैव वर्णः षट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृतौ अक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु माल्यानुलेपने च वर्णो[3] निगद्यते ।

अकारादावुदात्तादौ षड्जादौ निस्वने स्वरः ।

एतेष्वर्थेषु स्वरः कथ्यते । अकारादौ—अ आ इ ई उ ऊ, ऋ ॠ, ए ऐ ओ औ । उदात्तादौ— "उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः," "नीचैरनुदात्तः" "समाहारः स्वरितः"[4] । षड्जादौ—
"निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥"

निस्वने शब्दे ।

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः[5] स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते समयः ।

---

1 तरति तीर्यते वाऽनेन तीर्थम् । 2 लड विलासे" । ललयोरभेदात् ललतीति ललामः । 3 'वर्ण शब्दे' । वर्णयति वर्ण्यते वा वर्णः । घञ् कर्मणि अच्‌ वा कर्तरि । 4 तारस्य सू. २ । 5 अम को १।७।१ ।

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छदे ।

तन्यन्ते प्रमुखतायन्ते शब्दा अनेनेति तन्त्रम् । क्रमस्तव ।

सत्त्वमोऽप्रसि सहायायामुत्साहे स्वेऽसि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।

रूपादौ तन्तुषु व्यायामप्रधाने नये गुणः ।

गुणयतीति गुणः ।

[1] ज्ञानचारित्रमोक्षात्मभुविषु प्रवचाग्वरा ॥ ३७ ॥

वरा विरिक्ता ।

अवकाशे क्षणे वस्त्रे बहिर्योगे व्यतिक्रमे ।

मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

एतेष्वर्थेषु अन्तरः ।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने भुतौ कण्ठसमीकृतौ ।

आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ॥ ३९ ॥

इष्यते कथ्यते । अथ एष्वर्थेषु ।

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४० ॥

प्रकीर्तितः कथितः इतिशब्दः एतेष्वर्थेषु । इण् गतौ । इ । क्ति इत्यमादिकमर्थमिति । "इति [2]प्रमुर्वंति मप्रतिम्पो वच्म्यद्" इत्यनेनेतिप्रत्यय । इति भावम् । प्रव ति । "[3]...चान्" विशेषः ।

धर्मो मनुष्याहिंसादावुत्पादादावये नये ।

द्रव्यक्रियाश्रये चित्ते जीवादौ दात्म्यैकृते ॥ ४१ ॥

एतेष्वर्थेषु धर्मः । चरतीति धर्मः ।

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।

एतेष्वर्थेषु पुद्गलः ।

अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म पुद्गलस्कन्धाः) कर्म-ज्ञानावरणादि नोकर्म—शरीरादि । जातिर्गोत्वादि । एतेषु वर्गणा वर्तते ।

ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्यावबोधस्य षण्णां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

भजन्त्यस्मिन्निति [4]भगः ।

प्राहुः कैवल्यमार्हन्त्ये विविक्तं निर्वृतामपि ।

---

१ कातन्त्रेऽस्य सूत्रस्य रूपं नोपलभ्यम् । २ का० ल० २।६।४ । ३ पूर्वन्ते पुनः पुनः नश्यन्ते इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च पुद्गलाः । पृषोदरादित्वात्सम् ऋ० । ४ भज्यते सेव्यते चार्यते वा भगः ।

केवलस्य भावः कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधाद्यविष्टासौ नियतौ श्रियाम् ॥ ५४ ॥

लम्भनं लब्धिः ।

अनेकान्ते च विधातौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

[1]स्यात् भवेत् एतेष्वर्थेषु निपातः ।

भ[2]ट्टारको धर्मचन्द्रस्तत्पट्टे धर्मभूषणः ।
तत्र देवेन्द्रकीर्त्तिः श्रीकुमुदचन्द्रस्ततः परम् ॥ १ ॥
धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तत्पदेऽभवत् ।
तेन पुस्तकमेतद्धि दत्त (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

---

१ स्यात् इत्याकारको निपात एतेष्वर्थेषु इति सम्बन्धः । २ इतः परं मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलभ्यते तद्यथा— 'पर्यन्तादौ मतो पर्व मतः शाले प्रसेत्स्यपि ॥५५॥ परमात्मा जिने सिद्धे पर मेरुपर्वतादिषु । सिद्धाः सिद्धनिरयानामर्हल्लिङ्गभिधामपि ॥५६॥ अर्हल्लिङ्गमिति [illegible] ॥ अर्हदादीनपि [illegible] ॥५७॥ इति । ३ अत्रायुक्तिर्दोषात्किञ्चित्पाठभेदः च शोधित इत्यर्थः संगृह्यः ।

अनेकार्थ निघण्टु

गम्भीरान् रुचिरांश्चित्रान् विस्तीर्णार्थप्रसादनान् । कष्टशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥
नानार्थभूरिशब्देषु प्रसिद्धिस्वर्थचारिषु । नवस्वर्थेषु मेधावी योजयन्नुपलक्षयेत् ॥२॥
कः प्रजापतिरुद्दिष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्दः स्वर्णमात्रस्यापि क इत्यात्मा मतः क्वचित् ॥३॥
सलिलं कमिति ज्ञेयं शिरः कमिति चोच्यते । देवानामनिमिषानाहुर्मत्स्यानामनिमिषास्तथा ॥४॥
अग्निश्च बर्हिणः चैव वृक्षः कुक्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिताः सत्त्वाः पृथुकश्च मतः शिखी ॥५॥
हंसो नारायणः प्रोक्तः क्वचिद्धंसो दिवाकरः । अश्वश्चापि स्मृतो हंसो हंसश्चापि विहङ्गमः ॥६॥
सारसस्तरसितोऽन्यो मतश्चापि च सारसः । राजाऽपि नृपतिर्ज्ञेयो राजा प्रोक्तो निशाकरः ॥७॥
विभावसुर्हुताशः स्यात्सूर्यश्चैव क्वचिद्भवेत् । हिमारातिः स्मृतो वह्निः हिमारातिश्च भास्करः ॥८॥
धनञ्जयोऽग्निराख्यातः पार्थश्चापि धनञ्जयः । बीभत्सश्च मतः पार्थो बीभत्सो विकृतः स्मृतः ॥९॥
अग्निर्विरोचनः प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचनः । विरोचनश्च चन्द्रः स्यात्स्वर्विदैत्यो विरोचनः ॥१०॥
पाञ्चजन्यः क्वचिदग्निः क्वचिच्छङ्खो निगद्यते । कम्बुश्च वलिता मत्स्यः कम्बुरिष्टश्च कुञ्जरः ॥११॥
भास्करोऽग्निः समुद्दिष्टः सहस्रांशुरपि क्वचित् । पतङ्गो विहगो ज्ञेयः पतङ्गः शलभः स्मृतः ॥१२॥
कौशिको देवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिकः । धन्वुर्वृक्षा च विज्ञेया धन्वश्चैव मरुस्थलः ॥१३॥
धूमकेतुर्मतः शक्रः केतुः चोल इहोच्यते । जम्बुको वरुणो ज्ञेयः शृगालश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
अर्क इन्द्रस्तु मघवान् वनीमूरके उच्यते । मन्थी राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्थी निगद्यते ॥१५॥
केतवो रश्मयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोनुदः सहस्रांशुरग्निश्चापि प्रकीर्त्यते ॥१६॥
मयूखाः किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कीलकाः । सप्तार्चिस्तस्य प्रोक्ताः सप्तास्ये बहवः क्वचित् ॥१७॥
वसवः शंबरा उक्ता देवाश्च वसवो मताः । नाकं विश्वमित्युक्तं पेहं विश्वं मतं क्वचित् ॥१८॥
वासोऽम्बरमिति ख्यातमम्बरं च नभस्थलम् । पयः सलिलमुद्दिष्टं पयः क्षीरं मतं क्वचित् ॥१९॥
शिवं पानीयमुद्दिष्टं शिवं मेघः शिवं सुखम् । शिवं व्योमपतिं प्राहुः शिवं मोक्षं प्रचक्षते ॥२०॥
सारं बलं विजानीयात्सत्वपिमेयं स्थिरं धनम् । स्तनितं चाम्बु निर्दिष्टं स्तनितश्च महारवः ॥२१॥
कृष्णं तमः समाख्यातं कृष्णश्चापीश्वरस्तथा । अमृतं क्षीरमित्युक्तं क्वचिन्मोक्षं समुद्गमम् ॥२२॥
सर्वं च सलिलं प्रोक्तं भूतमप्यु सर्वं तथा । तोयं घृतमिति प्रोक्तं घृतं सर्पिः क्वचिद्भवेत् ॥२३॥
पानीयं च विषं प्रोक्तं क्वचिद्धालाहलं विषम् । हस्तिहस्तः करः प्रोक्तः करी हस्ती प्रकथ्यते ॥२४॥
कीलालं रुधिरं प्रोक्तं नीरं चैव प्रकथ्यते । भुवनं सलिलं प्रोक्तं आकाशं भुवनं स्मृतम् ॥२५॥
प्रवालं कोमलं पत्रं कोमलं स्याज्जलायकम् । तमालं च स्मृतं तोयं तमालं वेशम उच्यते ॥२६॥
तोयं तपति नदिस्तं निर्झरं तथा निगद्यते । शंवरं च जलं प्रोक्तं शंवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
शंवरश्चाऽसुरः ख्यातो यो बिभर्ति रतां प्रियाम् । स्वरवाक्स्यात्तिरिकां प्राहुरिकां चाम्बरेश्वराम् ॥२८॥
पत्नी चर्मोरिका प्राहुरिका तत्समस्ता मता । अदितिः पृथिवी ज्ञेया देवमाताऽदितिः क्वचित् ॥२९॥
अम्बुजा भार्या परित्यक्ता स्याद्भूरितिश्च निगद्यते । वृषो धर्मः क्वचिज्ज्ञेयो पयसामपि पतिश्च ॥३०॥
वृषा कर्णश्च पतितो वृषा प्रोक्तः शतक्रतुः । रौहिणेयो बलः प्रोक्तो रौहिणेयो बुधः क्वचित् ॥३१॥
बलदेवो मतः शेषो नागो वा शेष उच्यते । रामस्तु जामदग्नी ज्ञेयो रामो दाशरथिः क्वचित् ॥३२॥
रामश्च मुक्तो वर्णो रामश्च बलनायकः । वराहः केशवः ख्यातो वराही जलदः क्वचित् ॥३३॥
वराहः सूकरो ज्ञेयो विष्णुर्ज्ञेयो हरिस्तथा । अजारात्स्मरारेश्चापि ज्ञेयाशिवनेत्रश्चाप्यजो मतः ॥३४॥
अज पशुश्च विख्यातो तथाजो ब्रह्मकेशवौ । शरीरजः स्मृतो रोगः पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

मर्म पुष्करमब्जं च भाजनासारमेव च । कर्क मम: समाख्यातं कर्क रोम प्रचक्षते ॥३६॥
खं चानन्तमिति प्रोक्तमनन्तं च वदन्ति क्वचित् । विष्णुः क्वचिदनन्तः स्यान्नागश्चानन्त उच्यते ॥३७॥
प्रजापतिः स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापतिः । प्रजापतिः स्मृतः त्राता धाता च वर उच्यते ॥३८॥
वामः पयोधरः प्रोक्तो वामः स्यात्प्रतिमं हरः । वामश्च मदनः प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
भागीरो योधको ज्ञेयः क्वचित्त्वामोघकी ध्वजः । उरश्चापि समाख्यातः स्यात्मजुः स्मृतस्तथा ॥४०॥
वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । निशाचतुर्निशा ज्ञेया धन्यर्थश्च क्वचिन्मतः ॥४१॥
शर्वर्यो रात्रयः प्रोक्ताः शर्वर्यश्च स्त्रियो मताः । सान्त्वं धनमिति प्रोक्तं स्त्रियां सान्त्वं निगद्यते ॥४२॥
स्वः स्वर्गस्य मतं नाम स्वः सुखं क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निर्दिष्टः स्वः प्रोक्तो गृहमुच्यते ॥४३॥
ककुद्मत्यौविशेषतो मतः प्राच्योऽपि वा ककुप् । ककुद्मतीप्सुः प्रोक्तो ज्ञेयास्तु ककुभो दिशः ॥४४॥
सद्म वेश्म समुद्दिष्टं सद्म रोगं प्रचक्षते । कलशस्तु घटो ज्ञेयः घटो ज्ञेयस्तथोद्गमः ॥४५॥
प्रासादो मण्डप प्रोक्तो विहारश्चापि कथ्यते । धर्म धर्मं विजानीयाद् धर्म विपुलमुच्यते ॥४६॥
प्रयुज्यते च कस्मिंश्चिद् धर्म सद्भावचारयोः । वक्त्रं स्यन्दनार्थं स्याद्वक्त्रं वेश्म उच्यते ॥४७॥
चमूश्च धर्म सहसा प्रवदन्ति मनीषिणः । असुराश्च सुरा ज्ञेया क्वचिद्देवारयोऽसुराः ॥४८॥
नागाश्च द्विरदा ज्ञेया पन्नगाश्च क्वचिन्मताः । गन्धर्वश्च तथा वायुः क्वचित्स्याद् देवगायनः ॥४९॥
तार्क्ष्यो हयः समुद्दिष्टस्तार्क्ष्यश्चापि पतत्त्रिराट् । वाल्मीकमसुरनागुरुसिंहावपि क्वचित् बराम् ॥५०॥
तृणी वनस्पतिः प्रोक्ता क्वचिद्वल्लीश्च कथ्यते । शिखरी वृक्ष उद्दिष्टः शिखरी पर्वतः स्मृतः ॥५१॥
द्विजो विप्रश्च दन्तश्च द्विजः पक्षी निगद्यते । चौरो मलिम्लचो ज्ञेयो वातश्चापि मलिम्लुचः ॥५२॥
मात्सर्यं रतमुद्दिष्टं सुतः कामस्तथैव च । कीनाशो मृत्युको ज्ञेयः कीनाशश्चापि राक्षसः ॥५३॥
कीनाशोऽग्निः कृतघ्नश्च कृपणो यम एव च । कीनाशः कर्षको ज्ञेयः कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
अम्बरं प्रधानं स्याद्व्यक्तं च पाण्डुरम् । ज्योतिस्कौघमुद्दिष्टं ज्योतिर्नक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
ज्योतिश्च गदितो वह्निः काव्येषु मनिपुङ्गवैः । प्रधानं सत्त्वं ज्ञेयं प्रधानं श्वेतमुच्यते ॥५६॥
अब्दः संवत्सरो ज्ञेयो मेघश्चापि क्वचिन्मतः । बलाहका महामेघा शिखरी च बलाहकः ॥५७॥
तोयं च जलं प्राहुस्तोयं कथ्यते घृतम् । जीमूतश्च मतो नागो जीमूतः क्वचिदम्बुदः ॥५८॥
पौलस्त्यं तु मतं पुष्टं पौलस्त्यः पौरवं विदुः । धुन्धिहाजनकश्चैव प्रोक्तो नित्यं सुखं रतः ॥५९॥
पर्जन्य अम्बरं प्राहुः पर्जन्यं तु घनाम्बु । शितीमुखाः स्मृता बाणा भ्रमराश्च शितीमुखाः ॥६०॥
मेखला सीमेति विज्ञेया ज्ञेया चित्रमनो मता । अम्बरोपं क्वचित्पृथ्व्यां क्वचिदुदं निगद्यते ॥६१॥
पुंस्त्वं चापि मतं शुक्रं पुंस्त्वं पौरुषमुच्यते । विद्यासोऽरिमयो ज्ञेया विद्वासस्तत्सदो मताः ॥६२॥
मायाप्रवियोति विज्ञेया क्वचिन्मायाम्बु शाम्बरी । मधु द्राक्षेति विज्ञेया क्वचित्स्यान्मधु माक्षिकम् ॥६३॥
मधु चाम्बु प्रकाशयन्तं सुरा च मधुरलता । खं इत्यपितिरि विशेषं खं पुष्टं नग एव च ॥६४॥
नभिनिद्धमिति स्याशं खं च नभसमुच्यते । पार्तराष्ट्रा महाहंसा धृतराष्ट्रसुता क्वचित् ॥६५॥
प्रभाकरो मतः सूर्यो वह्निश्चापि प्रभाकरः । सितं शुक्लमिति ज्ञेयं सितं बद्धं प्रचक्षते ॥६६॥
असितं कृष्णमित्युक्तं असितं असितं स्मृतम् । यमस्तु सद्भूतो ज्ञेयः माण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
विषदुकुमाहुर्माध्यरमृषिश्चापि तथोच्यते । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यमः प्रेताधिपस्तथा ॥६८॥
यमनं सारदं विद्यात्तथा यमरथारमथम् । कलमं धान्यस्य कार्म्यं स्यात्तलक्ष्यः केतुः प्रकीर्तितः ॥६९॥
केतुश्चापि मतः कार्ये लक्ष्मीति मुनिपुङ्गवैः । मातङ्गेयः स्मृतो हस्ती हलधरश्चेतरः क्वचित् ॥७०॥
मातुलानी भवेद्द्रक्षः स्यात्सा तोमरः स्मृतः । आदित्यं च रविं विद्याद्दैत्याश्चाप्यदिते सुताः ॥७१॥
रोषो रसस्तथा रेणू रजो लोहितमुच्यते । रक्ष्यो निशाचरश्च स्यान्नित्यं च बजे तटम् ॥७२॥
हेम वसुमिति विशेषं वसु तेजो निगद्यते । सारङ्गं चातकं प्राहुः स्वर्णं चापि सितासिती ॥७३॥
रम्भाश्च कदली प्राहु रम्भा स्वर्गाङ्गना मता । पाषाणो गिरिजा प्रोक्ता मेघाश्चापि मनीषिभिः ॥७४॥

निगद्यते । औषधं रसमुद्दिष्टमुक्तं सत्यमपि क्वचित् ॥७५॥
मत्ता मालेति विज्ञेयः मैथिलाद्विनीतकम् । लेपनमिन्द्रियमक्ष च प्रात्यं कर्य एव च ॥७६॥
मत्तं च पात्रकं विषयग्राम्यहारिकमेव च । पयमित्यमिमुक्तं पयं तामरसं विदुः ॥७७॥
चैत्यमायतनं प्रोक्तं नीडमायतनं तथा । पुष्पं लोहितमुद्दिष्टं पुष्पं च कुसुमं तथा ॥७८॥
वाजी तुरङ्गमो ज्ञेयो वाजी श्येनो विहङ्गमः । विविधमाहितुमञ्जूषयगारावित्यौस्तु वानराम् ॥७९॥
मधुशिवादिमहुवाम् हरीमित्युच्यन्ति कोविदाः । पुरुषस्त्रनसिङ्गेषु हयमूषणकस्म ॥८०॥
रामणीयकमीम्प्रेषु ललामं नमसु स्मृतम् । मुधा स्मृताऽतिशोयोक्ता लम्पती मञ्जरी तथा ॥८१॥
वसन्तस्य सुतो ज्ञेयः कोकिला वचनप्रिया । पुलिनं जलविच्छेद पङ्कजं स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
रतं पापमिति ज्ञेयं सत्वरं शीघ्रमुच्यते । पिञ्जरं रोचनार्थं स्याम्मेचकस्तिलको मतः ॥८३॥
ललाटेऽवस्थिते चिह्ने विहङ्गस्तिलकं मतम् । परिचर्यं च तल्पं निवासस्तु कयो मतः ॥८४॥
नानारत्नरचिता मञ्जूषा रागिणी स्मृता । विश्लाङ्गासितहेतु केसरित्वं विभीयते ॥८५॥
मन्मथो मधुरः शकः कल इत्यभिधीयते । अकालमुत्सुकं ज्ञेय छेदो नाम भयङ्करः ॥८६॥
भावः शृङ्गारमाधुर्यं भावो वस्त्राभरणम् । विलासः कामजो दोषस्तथैव ललितं मतम् ॥८७॥
उत्तमाङ्गं शिरो देहं कवचं चेति शस्यते । शिरसी वेष्टनं यहं तदुष्णीषं निगद्यते ॥८८॥
आहतं समरीयं स्यात्मिलितं पीडितोन्नतम् । मण्डूको भेकसंज्ञः स्याद्वर्षाभूश्चातको मतः ॥८९॥
प्रिया पिङ्गलती ज्ञेया विशालं सकलं मतम् । कुरुवर्मा त्रिपिविष्टः स्यात्कर्णकस्तु हतीवता ॥९०॥
कल्याजातस्य वानीनो वस्त क्लीब इति स्मृतः । उत्कृष्टः कुरः स्यात्तु निकृष्टमस्त्वतवाचकम् ॥९१॥
रदनो हस्तिदन्तः स्याद्दानं कटकर्णितम् । तोदनं चाङ्कुशं विद्यादालानं हस्तिबन्धनम् ॥९२॥
घनाघन इति स्याद्धः शाक्रस्याभिकथीयते । अपाचीनं जनोर्न च बुद्धिर्मेधा तु धेनुकी ॥९३॥
मर्कस्तु वारवे ज्ञेयो भषो स्यात्तेनवाहिनी । मन्दरोहो मरुखानोऽवनाली हृदये स्वनि ॥९४॥
भास्कर इति विज्ञेय सुराज्य शङ्कसीमिता । आममात्रं मधैस्वर्ण वक्त्रं विपिनमुच्यते ॥९५॥
तूलं तु विरलं ज्ञेयं मूर्खं सरलमुच्यते । शाङ्गं मुनित्रं चैव वाराहं तिमिमीतिनाकम् ॥९६॥
चंद्रावालीविद्यान्नागारवीभूताश्च तथाष्टमम् । लोकतो हस्तिनो शशी दक्षिणस्य गुरुः स्मृतः ॥९७॥
कानने तु वने विद्यात्कण्टकं गहनं वनम् । आननं वाङ्मुखे तथे त्रिपुरं चापि शस्यते ॥९८॥
पारः श्याम इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मतः । स्यविष्टं स्थावरे चैव दविष्ठं दूरमुच्यते ॥९९॥
परमेष्ठी मतः श्रेष्ठः प्रम प्रियमुदाहृतम् । प्रकाशः स्त्रीपुंरेतस्तः मैथुन इति शब्दितः ॥१००॥
मदनस्त्वमीश्वरः स्यात्माविनारकमस्मृतः । लावण्यमाधुर्यमिति वित्तं च धनकर्मजम् ॥१०१॥
व्यापनश्चापनः प्रोक्ता पानीयं तु तमुच्यते । आपगा तु स्मृता ग्रामरिक्ततीर्थस्था उच्यते ॥१०२॥
रंहो वेगः समाख्यातः जवं तरलितं स्मृतम् । आलवालं स्मृतं तद्दिरदो वैणविकारकम् ॥१०३॥
चटर चर्मविन्दुः स्यात्तुषं तपुष्पमुच्यते । विज्ञानं चापरं ज्ञेयं वीणा प्रेङ्खोति शस्यते ॥१०४॥
भ्रमरं मधुरं भवं निमतं चापि भास्वरम् । तत्स्मयमनोऽसादि प्रथमं कुसुममुच्यते ॥१०५॥
पयसो हरितो वस्तो मैथुनो मीनविसर्जनः । उत्तानं कुन्थनं विद्यात्मनसो नाविको मतः ॥१०६॥
उत्ता कायः वना देहम् पुरतोहितो दक्षिणी हि मा । व्याघ्राणो मात्तरो वेणुस्त्वविसार वरिवर्तनी ॥१०७॥
दिन दाम तन चैव रोमहर्षणीति च । कम्भोऽगस्तो माथ वेष्मनं चालितं मतम् ॥१०८॥
वसितं वसिम विद्यादच्छा राज च भूपतो । रम्भं वलाः विज्ञानीयात्पिपासा कमला मता ॥१०९॥
दोष वाम विज्ञानोऽयं द्वन्द्वं भीवकमुच्यते । अरि प्रज्ञानर्हदुष्टमभिनः सर्वचाचरम् ॥११०॥
वलतवातिनो भय वचनस्वापको मतः । प्रियवाक्यो मधेशायं स्यानरस्य वरिवर्तीनः ॥१११॥
आरम्भरस्य च हो नन्दनं वोधनं मतम् । विरवी कम्पनी स्याता वीणा चैव निगद्यते ॥११२॥
मानसी पुत्रका ज्ञेया पुत्रका दक्षिणो मतः । कम्पनी कञ्जली स्याता प्रभा ज्योत्स्ना प्रकीर्तिता ॥११३॥

मायुर्निरस्यते लोके तेन जीवति यथाक्रमम् । तस्य यमादिमानेन रामो राजीवलोचन ॥११४॥
यत्तस्य कवचं देहात्सुवर्णं च यशुरा । इत्याम यत्तवाक्यर्थस्तेन वैकर्तन स्मृतः ॥११५॥
तीक्ष्णत्वेन प्रचण्डश्च वृको नामाग्निको मत । स पाण्डवस्य उदरे तेन भीमो वृकोदरः ॥११६॥
यस्य श्रुतिसुखा वाणी पुण्य-श्लोक स उच्यते । यः कोपी चानिवर्ती च युद्धशौण्डः स उच्यते ॥११७॥
महासंसर्गसम्भूतं महेष्वासं प्रचक्षते । स्वविक्रमैस्तापयेच्च परं यूपं तापयेत् ॥११८॥
यूपं तापयेद्यस्तं विशेषेण स यूपप । तस्मादपि च यो धर्मे स तु यूपमयूपप ॥११९॥
सिंहाग्नितान्तशौर्यैः स नृसिंह इति स्मृत । ये हि स्वप्नप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिन ॥१२ ॥
यो मर्मितत्वं च नाम्नापि स कीनाश इति स्मृतः । योऽप्रबुद्धो ऽल्पबुद्धिश्च स तु मन्द इति स्मृत ॥१२१॥
उपकारं तु यो हन्ति स कृतघ्न इति स्मृतः । हर्षे गर्वे सुखे चैव भृशी च प्रतिभाषते ॥१२२॥
स्नेहमात्मनये चैव मन्दगामी निगद्यते । नातीव वर्तते यश्च स्वस्थात्मं प्रचक्षते ॥१२३॥
वेतसश्च समाचारं समधविरिति पठ्यते । सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृत ॥१२४॥
निर्मलो निष्कलुषो विलेप छिन्नसंशय । प्रयाता वेदकालश्च समाविष्टः स उच्यते ॥१२५॥
मुक्तरोऽस्त्यमतिर्यस्तु सखेदत्वेन कीटकः । वृत्तिर्यन्त्र तु युक्तानां परोक्षे बहिः तरिष्या ॥१२६॥
साहारव्यवहारेषु या प्रीतिर्निरपस्करा । परस्परं स्वकारेषु सता मैत्री प्रकीर्तते ॥१२७॥
विषम्यमात्मनवाद्यापि सा प्रीतिर्निरपायका । यथा स्यात्तिरिति प्रोक्तं तथोपायप्रकुरुस्यते ॥१२८॥
कीर्तिस्यात्स्निग्धयोगात् गणकमिति चोच्यते । प्रियवाक्येषु यः शुद्ध स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
एकस्वक्ता तु या नारी सा चोभव्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्माधिविषे स्वपरकतांकिणितम् विद्युम्?॥१३ ॥
तेजो रेतसि वीर्यो तपो हि स्यात् वृषार्थकः । योऽन्यथात्मो भूतो योग स परात्म इति स्मृत ॥१३१॥
निष्प्रवृत्तिरहंमानी नास्तिक सः प्रकीर्तितः । कामः क्रोधश्च वै पूर्वं लोभोऽसत्यं च मध्यमे ॥१३२॥
मन्दौ मोहो विषादश्च यस्य क्षेम स यद्वत । अमृते चारच कुम्भो मृते भर्तरि गोलक ॥१३३॥
ममवीर्योऽनमनाति स व्यवहारी निगद्यते । भूतस्थी गर्भिणी बाला वाङ्गणी च कुशीविनी ॥१३४॥
परविरते यवीयान् यो ज्येष्ठपत्नी वरामुखम् । यः परिवर्तनम् ज्येष्ठोऽपि परविता स उच्यते ॥१३५॥
पुष्पं सौरभं सर्वजीवनं जन्मनं तथा । भूजनं च समुद्दिष्टं सदूपेता वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
विस्तारस्तवपरा या स्त्री बिम्बोष्ठी तां विनिर्दिशेत् । या स्यात् संबीजनपरा लक्ष्मी तां विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
पूर्वाकाशप्रतीकाशा पूर्णी यस्यास्तनू कृशी । सर्वकर्मविचित्राङ्गी सा मधेन्द्ररूपिणी ॥१३८॥
लावण्ययुक्ता या नारी ललिता तां विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवत्स्पोतिः सा ज्ञेया मत्तकाशिनी ॥१३९॥
भूरिश्च भूरिमुद्दिष्टं अन्नं बल इति स्मृतम् । भूरि यशो यस्यात्तिह तस्मात् भूरिश्रवो हि स ॥१४ ॥
चतुष्पार्श्वविसर्पितमुखो लोहितग्रीव एव च । निसर्गाद्दिव्यासकूपादयनात् रावणः स्मृत ॥१४१॥
रोचना या मदेमारी भामिनी तां विनिर्दिशेत् । स्वयोषकवर्णं विज्ञातृबाला परिसम्पदम् ॥१४२॥
ताम्यामुपेता वनिता स्वप्नोदर्परिसम्पदा । तत्तुल्ये चासिनी यस्याः सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
मर्धप्रमाणनिर्वोपोऽधिकार्धपर्णानिरन्वितः । राजीवमध्ये धौतमित स्निग्धवर्णं सितासितम् ॥१४४॥*
किञ्चिदुत्तरतथोपात्तीता राजीवलोचना । अतिविमर्यतिक्षभिर्मुक्ता सद्गुरूष्ठी यथाहृता ॥१४५॥
वरत्कराकारं स्यन्दनादभिवाचत । वसन्ते ति तज्जोयं तस्येवार्थं ॥१४६॥
तं मर्मसंयुक्तं ततनाविमुच्यते । बहूने भारत्वे तामे वाहने पर्वसंयुता ॥१४७॥
रत्नवे पीडने सज्जे भार्या नाम प्रवर्तते । मुक्तायां तस्मिन्नायां सप्तासवसर्वभूतानिभि ॥१४८॥
विषमाक्षवरा एते ज्ञेयार्थं तैः विसीस्थिताः । कोठरस्था इति ज्ञेयाः सर्पकीटगणादयः ॥१४९॥
मातामयात्मको यस्तु भूतानामाधिरोहणम् । ॥१५ ॥
सौकुमार्य किसलयं कोमलत्वं च तत्स्मृतम् । पत्राणां च चतुर्दलं सर्वं तदिहसंस्थितम् ॥१५१॥

---

* नोट—मूल प्रतिमें १४४ से १४८ तकके पद्योपर उनके नम्बर नहीं पड़े हैं।

कुम्भौ बाहु प्रस्थः समं नस्य इति विपीयते । त्रिपिनं मृत्यमित्युक्तं त्रिपिनं गृहमेव च ॥१५२॥
वल्मं वर्म्म च वासं च वर्लमीयार्थवाचकः । तर्वार्थत्वात्पुनर्वत्व चान्तेमं शीतमुच्यते ॥१५३॥
नीहारं शीतमित्युक्तं प्रबोधात्तो निशीथकः । ॥

इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णे अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेदः ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वाभिधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाष्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
अः कृष्णः आः स्वयंभूः स्यात् काम ई श्रीधरीश्वरः । ऋ रक्ष ॠ ॠ भवी देवमातृमातरी ॥२॥
लृर्देवसूर्नारसी मशोर्वैश्चिम्नुरे शिवः । ओर्वेधा औरनन्तः स्यादं ब्रह्म परमुम्जः शिवः ॥३॥
को ब्रह्मात्मप्रकाशार्के कः स्याद्युमयमाग्निषु । खं शीर्षे सुखे खस्तु भूमौ शब्दे च खि पुरं ॥४॥
स्यात्स्वेपनिन्दयोः प्रश्ने क्षितौ च शमिमिथे । स्वर्गे व्योम्नि मुखे सूर्ये सुखे दक्षिरि को रवी ॥५॥
गस्तु गातरि गन्धर्वे गा गीतौ गो विनायके । स्वर्गे दिशि पशौ वज्रे भूमावित्थी जले गिरि ॥६॥
घस्तु घुघ्वौसे ना किङ्किण्यां च घुर्घरी । ङं मन्मथे ङो वृष भैरवः जनृदीरयो ॥७॥
च सूर्ये कच्छपे चं तु निर्मले चस्तु चोररि । शिखने तेजसि चापि चित्ताख्या चि चकोऽपि च ॥८॥
झो नष्टे रवे वायौ ञो गायने घर्घरध्वनौ । टं पृथिव्यां करटे च ठो ध्वनौ ठो महेश्वरे ॥९॥
शून्ये बृहद्ध्वनौ चन्द्रमण्डले ठं शिवे ध्वनौ । डो भये निर्गुणे शब्दे ढक्कायां चस्तु निस्वने ॥१ ॥
ज्ञाने तस्तस्करे क्रोडेपु ज्ञायोसता पुच्छका । थो भीतार्थे थहीये दं पत्न्यां दा वासुदारयोः ॥११॥
धात्र्यां च धा पुरुषे वेधो धातरि धीमती । पूर्णाधिकंपवित्रासु नो नरे बन्धुबुद्धयो ॥१२॥
पिस्तु पेतरि पुः स्तुत्यां पो पूर्णे पस्तु पातरि । पावने वस्थाने च फो झंझावातकोणयो ॥१३॥
फाः कालौ भूर्भुवः स्याने फोर्षध्ये फः शिवे शिवौ । बीजे शिरसि ना चाने भीसाधेर्भारवेऽम्बकम् ॥१४॥
मुः तु लिङ्गं वनै मस्तु मातरिमस्ति च यशः । यास्तु यातरि चच्चापि याने लक्ष्म्यां च रो भूवी ॥१५॥
तीक्ष्णे वैश्वानरे कामे रा स्वर्णे लवने ध्वनौ । री भये दर्पये सूर्ये ल इंद्रे वरुणेऽपि च ॥१६॥
लं देहे ली पुनः श्लेषे वी भये वो महेश्वरे । वः नीतिमतिशास्त्री च इयार्थे स्मरेऽव्ययम् ॥१७॥
शं सुखे शा तु शोभायां शी शयने षु निशाकरे । षः शिखण्डे पुष्पधर्मे विमोक्षे वः परोक्षके ॥१८॥
सा लक्ष्म्यां हो निपाते च हुसे वाचपि भूमिनि । क्षं क्षेत्ररक्षसीत्युक्ता माला प्राकसूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥छ॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक
धम्मिल्ल	९१	१९५
धरणी	३	६
धरा	३	५
धरित्री	३	६
धव	४	७९
धर्मचक्रभृत्	५८	११६
धर्मात्मज	७१	१४९
धव	१४	२८
धवल	७१	१४७
धातु	८२	१७
धात्री	३	५
धानुष्क	७	१४
धामन्	२३	४६
	६६	१३३
धिषणा	५५	११
धिष्ण्य	६६	१३१
धी	५५	११
धनी	१२	२४
धर्म	२७	५१
धूम	७२	१४८
धूर्जटि	३५	६८
धूत	७९	१६५
धूलि	७३	१५१
धूलिधूद्गम	६७	१३४
धन	५२	१ ५
धैर्य	८३	१७१
ध्वजा	४३	८४
ध्वजिनी	४३	८६
ध्वान्तारि	३६	५
न		
न	७६	१६७
नगनम	२५	४८
नक्षत्र	०५	
नग	५	११
नदी	६८	७
नर	१२	२४
नरी	१२	
नर्तकी-नर्तकर	३६	७१
नर्तन	७	१६४
ननान्दृ	२१	४१
नन्दन	२	४
नभस्	२८	५१
नमस्कृत्	३२	६१
नम्राट्	८	१८
नमुचिद्विष्	३	५८
नयन	४९	९९
नर	११	२८
नरक	८९	१९
नलिन	१	२
नव	७५	१५६
नव्य		,,
नाक	३	५६
नाग	४५	८९
	६४	१२८
नागरिक	८	१६५
नागारि	४५	९
नाथ	५	१
नाथहरि	७८	१६३
नाभाग्निम	५८	११५
नाभिज	५७	११४
नाम	८	१६५
नारद	३७	७३
नाराच	३९	७८
नारायण	३७	७४
नारी	१४	१
नाला	५	१ २
निकष	६९	१४१
निकर	६९	१३६
निकाय	६६	१३३
	६९	१४
निकुरम्ब	९	
निकेतन	६६	१३२
निकृष्टपुरुष	८९	१८९
निचय	६९	१४
निज	८८	१८५
निदाघ	४	९
	५१	१ ३
निद्राविनी	६५	३१
निधान	८३	१७३
नित्य	७७	१५९
निदेश	७४	१५४
निपुण	७	१६४
निबोध	७३	१५२
निभ	६८	१३८
निम्नगा	१२	२४
निमन्त्रित	८५	१७९
निमामित	८५	१७९
नियोग	७४	१५४
निर्घात	९	१९
निर्व्यूह	६७	१३५
निकम्प	६६	१३३
निवसन	५९	११७
निवृत	६६	१३२
निवेशन	८९	१८९
निशा	२५	४८
निशाचर	८१	१६९
निशान्त	६६	१३२
निषाद	७	१४
निषादिन्	४५	८९
निष्णात	७९	१६४
निसर्ग	८८	१८५
निस्त्रिंश	८७	१८३
निम्निम्नग	४३	८५
नीच	७९	१५८
	८१	१६८
नीचैस्	७६	१५८
नीर	७	१५
नील	७२	१४८
नीलकण्ठ	६२	१२६
नीलविकुजरी	७१	१५
नीलजोहित	३५	६९
नीलवसन	■	१४१
नीलाम्बरस्वन्	११	९२
नीहार	८५	१७९
नूतन	७५	१५६
नूपुर	५१	१ ७
नृ	११	९८
नृप	४	७
	१४	९८



अनेकार्थनाममालास्थशब्दानुक्रमणिका



नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

भाष्यगता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

सङ्केतविवरण

अ चि अभिधानचिन्तामणि
अनेका सं अनेकार्थसङ्ग्रह
अम को अमरकोष
अम को क्षी भा अमरकोष क्षीरस्वामी भाष्य
अमर अमरकोष
अ सं अनेकार्थसंग्रह
उ सू उणादिसूत्र
कल्प को कल्पद्रुकोष
का उ कातन्त्र उणादि
का रू उ कातन्त्र रूपमाला उत्तरार्ध
का रू पू कातन्त्र रूपमाला पूर्वार्ध
का रू पू सू कातन्त्ररूपमाला पूर्वार्धसूत्र

का सू कातन्त्रसूत्र
क्षी भा क्षीरस्वामिभाष्य
क्षी स्वा क्षीरस्वामी
गण समु गणपाठसमुद्देश
जै सू जैनेन्द्रसूत्र
त सू तत्त्वार्थसूत्र
नीतिसा नीतिसार
नी वा समु सू नीति वाक्यामृत समुद्देशसूक्ति
प प पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका
पा उ पाणिनि उणादि
पा गणसू पाणिनि गणसूत्र
पात भाष्य पातञ्जलमहाभाष्य
पा सू पाणिनिसूत्र
भो उ भोजउणादि
मे को ना व मेदिनीकोष नानार्थवर्ग

यश ति आ क यशस्तिलक आश्वास कल्प
वि को का विश्वलोचनकोष कान्तवर्ग
वि लो विश्वलोचन कोष
श च शब्दार्थचन्द्रिका
श च सू शब्दार्थचन्द्रिका सूत्र
शा कारिका शाकटायन कारिका
शा सू शाकटायन सूत्र
सर क सरस्वतीकण्ठाभरण
सार समा सू सारस्वत समास सूत्र
हे च हेमचन्द्र
हे श हेमशब्दानुशासन

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पं०	अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठ	पं०	अशुद्धयः	शुद्धयः
७	१४	सर्व	सर्वं	६५	९	विपाशय-	विपाशयः
५१	२	स्तमितं	स्वमितं	६९	२	भिकुटी	भिकटी
५४	२१	मुक्तीषा	मुक्तोषा-	७१	२१	यशोती	यशोतो